

॥ जय गुरुदेव ॥

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

जबलपुर



विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) उपाधि
हेतु प्रस्तुत

केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय
तुलनात्मक अनुशीलन

शोध-प्रबंध

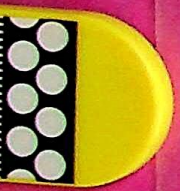
अगस्त - 2005

अनुसंधात्री
श्रीमती अर्चिता (तिवारी) पेंडसे

शोध निर्देशक
ईजी. श्री गणेश ताम्रकार

सह निर्देशिका
डॉ. श्रीमती लता श्रीवास्तव





॥ जय गुरुदेव ॥

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर



विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) उपाधि
हेतु प्रस्तुत

केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय
तुलनात्मक अनुशीलन

शोध-प्रबंध

अगस्त - 2005

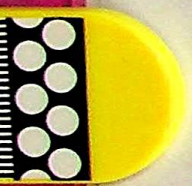
Valued
12 Doney
7/6/07

—: अनुसंधात्री :—

श्रीमती अर्चिता (तिवारी) पेंडसे

शोध निर्देशक
इजी. श्री गणेश ताम्रकार

सह- निर्देशिका
डॉ. श्रीमती लता श्रीवास्तव



घोषणा पत्र

मैं श्रीमती अर्चिता (तिवारी) पेंडसे घोषणा करती हूँ कि “केवल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन” शीर्षक पर वास्तुशास्त्र के अंतर्गत किया गया शोधकार्य इंजी. श्री गणेश ताम्रकार जी एवं डॉ. श्रीमती लता श्रीवास्तव जी के निरीक्षण व मार्गदर्शन में महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय शोध केन्द्र से किया गया है। यह शोध प्रबंध मेरी मौलिक रचना है, यह कृति समग्र रूप में या प्रमुख अंशों के रूप में इससे पूर्व किसी उपाधि हेतु या शैक्षणिक योग्यता प्रमाणीकरण हेतु भारत या किसी अन्य देश के विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं की गई है।

मैं यह घोषणा करती हूँ कि मेरी पूर्ण जानकारी के अनुसार पी.एच.डी. शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध में कार्य का कोई भाग ऐसा नहीं है जो बिना उचित दृष्टांत के प्रस्तुत किया गया है।

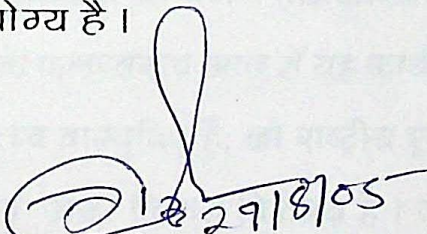
Aparise.

श्रीमती अर्चिता (तिवारी) पेंडसे
शोधछात्रा

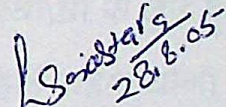
प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता/करती हूँ कि, श्रीमती अर्चिता (तिवाड़ी) पेंडसे (शोधछात्रा महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, पारस, जबलपुर) ने शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में लिखा है। इस शोध-प्रबंध में तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पर्यालोचन नई दृष्टि से किया गया है। शोधार्थी महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय में पंजीकृत है। उसके अंतर्गत निधारित नियमों का पालन करते हुए शोध कार्य संपन्न किया है।

अतः शोध-प्रबंध सहृदय सुधिजनों के समक्ष परीक्षण हेतु प्रस्तुत किए जाने योग्य है।


 शोध निर्देशक

ईजी. श्री गणेश ताम्रकार
 बी.ई. (सिविल) एम.ए. (हिन्दी)
 लखनऊ (उ.प्र.)


 सह-निर्देशिका

डॉ. श्रीमती लता श्रीवास्तव
 कानपुर (उ.प्र.)

हृदयाभिव्यक्ति

इस शोध कार्य में पूर्ण सहयोग देने वाले विद्वज्जनों, स्वजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम सौभाग्य समझती हूँ। इस कड़ी में सर्वप्रथम मैं अपने गुरुजनों -

इंजी. श्री गणेश ताम्रकार जी,

डॉ. लता श्रीवास्तव जी

के प्रति अपनी आदरांजली एवं आभार प्रकट करना चाहती हूँ, जिन्होंने इस शोध - कार्य में मार्गदर्शन हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान करने की कृपा की।

इस शोध-कार्य में उनका अप्रतिम योगदान है। अपनी अत्यंत व्यवस्ता के बावजूद भी उन्होंने जिस तरह अपना अमूल्य समय देकर मुझे मार्गदर्शित किया, वह उनकी शोध के प्रति प्रतिबद्धता एवं शोधार्थी के प्रति उनके वात्सल्य का प्रतीक है। मैं उनकी सदैव ऋणी रहूंगी। शोध विषय चयन में श्री गणेश ताम्रकारजी ने मेरी सहायता की एवं उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जिसके फलस्वरूप आज मैं यह कार्य कर पाने में सक्षम रही हूँ। श्री गणेश ताम्रकार जी स्वयं एक उच्च वास्तुविद् हैं, जो राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय वास्तु संस्थाओं से जुड़े हुए हैं व पिरामिड एवं ऊर्जा विज्ञान विशेषज्ञ हैं। डॉ. लता श्रीवास्तव जो महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की स्थापत्य वेद की व्याख्याता रही हैं, ने भी मुझे समय-समय पर मार्गदर्शित किया।

मैं विश्वविद्यालय के सभी गुरुजनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। मैं आभारी हूँ डॉ. (श्रीमती) क्षमा मांडवीकर जी की जिन्होंने मुझे हमेशा प्रोत्साहित किया और लक्ष्य प्राप्त करने में मुझे सहयोग प्रदान किया। विश्वविद्यालय के अन्य सहयोगी-स्नेही स्वजनों ने शोध सामग्री व ग्रंथों को उपलब्ध कराकर व समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझाव देकर मेरे इस शोध-ग्रंथ के लेखन कार्य को निरंतर गतिशील बनाने में मदद की।

सह परामर्शदाताओं में वास्तु-विज्ञान संस्थान के सदस्यों श्री रमाशंकर नामदेव जी एवं डॉ. (श्रीमती) माला भट्टाचार्य जी जो स्वयं जानकीरमण महाविद्यालय, जबलपुर की प्राचार्या हैं, ने मुझे महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया जिनकी मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। मैं आभार

व्यक्त करती हूँ श्री बाल गोपाल टी.एस. प्रभू जी का जिनके मार्गदर्शन से मैंने केरल एवं कर्नाटक प्रांतों की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की व उन जानकारियों के आधार पर मैंने दोनों प्रांतों का निरीक्षण किया व अपना शोध-कार्य संपन्न किया।

इस शोध-कार्य को सफल, सरल एवं उच्चकोटि का बनाने हेतु अनेक संस्थाओं एवं पुस्तकालयों से सहायता मिली। इनके द्वारा प्रदत्त सहयोग के लिए मैं इनके अधिकारियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मैं विशेष रूप से केरल एवं कर्नाटक प्रांत के जिला कार्यालय के अधिकारियों का आभार व्यक्त करना चाहूंगी जिन्होंने दोनों प्रांतों की सम्पूर्ण जानकारी एवं प्रांतों से संबंधित सांख्यिकी पुस्तकें जिनके अंतर्गत सभी क्षेत्रों में हो रहे कार्यों के आँकड़े उपलब्ध थे, मुझे प्रदान की।

किसी भी कार्य की सफलता में परिश्रम का जितना योगदान होता है, प्रोत्साहन का भी उतना ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। मेरे इस शोध कार्य की सफल पूर्णता में मैं उन सभी लोगों के प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य में सहयोग प्रदान किया जिसमें प्रथम मेरे परम आदरणीय माता-पिता जिन्होंने मेरे उज्ज्वल भविष्य की कामना की है मेरे परिवार के सभी सदस्य, मेरे माता-पिता तुल्य सास-ससुर एवं बड़े बुजुर्गों का स्मरण करते हुए उनकी मधुर छवि अपने मस्तिष्क में लाते हुए - जिन्होंने मेरे आगे बढ़ने और उन्नति करने की तमन्ना की - सतत् प्रेरणा दी - उनकी मधुर प्रेरणा-सहयोग एवं स्नेहात्मिक आशीर्वाद के अभाव में यह दुरूह कार्य संपन्न होना मुश्किल ही नहीं, असंभव सा था।

मेरे पति श्री सुमीत पेंडसे जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कदम-कदम पर अपना सहयोग व प्रोत्साहन देकर पल-पल आगे बढ़ने का साहस और सामर्थ्य प्रदान किया, मैं उनकी सदैव आभारी रहूंगी।

मैं आभार व्यक्त करना चाहूंगी मेरे परम आदरणीय मित्र श्री अनुभव शुक्ला जी का जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे लक्ष्य की प्राप्ति में अथक सहयोग प्रदान किया एवं निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

मैं आभार व्यक्त करना चाहूंगी मेरे भाई श्री अजय तिवारी जी, कु. अंकिता तिवारी एवं श्री सतीश जैन जी का जिन्होंने शोध-कार्य में केरल एवं कर्नाटक प्रांत की ज्योतिषीय आधार पर तुलना करने में मुझे सहयोग प्रदान किया।

मुझे शोध-कार्य में अनेक सम्मानीय प्राध्यापकों, मित्रों, सहयोगियों, शुभचिंतकों व कुटुंबीजनों से उनके सुदीर्घ अनुभवों के आधार पर तथ्यों तक पहुंचने एवं निष्कर्ष निकालने में सहायता मिली है, अतः मैं इन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

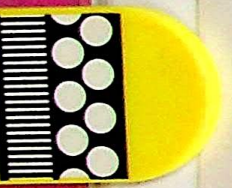
अंत में स्वच्छ टंकण के श्रमसाध्य कार्य के लिए मैं श्री प्रवीण बाभुलकर जी (श्री कम्यूटर्स, यादव कॉलोनी) एवं श्री शेखर राजकरणे जी (सौरभ मल्टीकलर, राइट टाउन) का हृदय से आभार करती हूँ, जिन्होंने अल्प अवधि में इस कार्य को करके मेरे शोध-कार्य को पूर्णता प्रदान की।

जबलपुर

शोध छात्रा

Appendix

श्रीमती अर्चिता (तिवारी) पेंडसे



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय जबलपुर

केरल एवं कर्नाटक प्रान्त का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन
शोध कार्य की संक्षेपिका

भूमिका – विषय प्रतिवेदन का स्वरूप

अध्याय – प्रथम

- 1.1 प्रस्तुत कार्य एवं उसकी परिधि में आनेवाले शोध कारी
- 1.2 प्रस्तुत कार्य-क्षेत्र एवं सीमाएँ
- 1.3 प्रस्तुत कार्य प्रविधि एवं प्रणाली

अध्याय – द्वितीय वास्तुशास्त्र का उद्भव विकास एवं प्रासंगिकता

- 2.1 वास्तुशास्त्र का परिचयात्मक अर्थ
- 2.2 वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास
- 2.3 वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य एवं मुख्य ग्रंथ
- 2.4 वास्तुशास्त्र का व्यापक क्षेत्र – सृष्टि, भूगोल और सौर मंडल
- 2.5 भवन निवेश
- 2.6 पुर निवेश
- 2.7 वास्तुशास्त्र की प्रांत एवं देशस्थ प्रासंगिकता

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

संस्कृत एवं दार्शनिक विभाग

प्रमाणित प्रतिलिपि

पृष्ठ - १

विषय - अथर्ववेद के अंग

अथर्ववेद के अंग - १.१

अथर्ववेद के अंग - १.२

अथर्ववेद के अंग - १.३

अथर्ववेद के अंग - १.४

अथर्ववेद के अंग - १.५

अथर्ववेद के अंग - १.६

अथर्ववेद के अंग - १.७

अथर्ववेद के अंग - १.८

अथर्ववेद के अंग - १.९

अथर्ववेद के अंग - १.१०

अध्याय – तृतीय – वास्तुशास्त्रीय अनुशीलन की आधार भूमियाँ

- 3.1 भारतीय वास्तुशास्त्र का इतिहास
- 3.2 चीनी वास्तुशास्त्र की परम्परा
- 3.3 वास्तुशास्त्र अनुशीलन की पाश्चात्य परम्परा
- 3.4 प्रस्तुत अध्ययन पर आधारित तत्व

अध्याय – चतुर्थ – केरल प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

अध्याय – पंचम – कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

अध्याय – षष्ठम – केरल एवं कर्नाटक प्रांतों के अध्ययन के निकष की तुलनात्मक विवेचना

अध्याय – सप्तम – उपसंहार, मूल्यांकन एवं प्रदेय

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

संज्ञायाः

संज्ञायाः अर्थः किं तद्विषयः तद्विषयः - अर्थः -

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
अध्याय - प्रथम		- 1 - 4
1.1	प्रस्तुत कार्य एवं उसकी परिधि में आनेवाले शोध कारी	- 1.
1.2	प्रस्तुत कार्य क्षेत्र एवं सीमाएँ	- 1.
1.3	प्रस्तुत कार्य प्रविधि एवं प्रणाली	- 2 - 4
अध्याय - द्वितीय	वास्तुशास्त्र का उद्भव विकास एवं प्रासंगिकता	- 5 - 69
2.1	वास्तुशास्त्र का परिचायत्मक अर्थ	- 5 - 14
2.2	वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास	- 15 - 25
2.3	वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य एवं मुख्य ग्रंथ	- 26 - 29
2.4	वास्तुशास्त्र का व्यापक क्षेत्र - सृष्टि, भूगोल और सौर मंडल	- 30 - 33
2.5	भवन निवेश	- 34 - 61
2.6	पुर निवेश	- 62 - 66
2.7	वास्तुशास्त्र की प्रांत एवं देशस्थ प्रासंगिकता	- 67 - 69
अध्याय - तृतीय	वास्तुशास्त्रीय अनुशीलन की आधार भूमियाँ	- 70 - 94
3.1	भारतीय वास्तुशास्त्र का इतिहास	- 72 - 78
3.2	चीनी वास्तुशास्त्र की परम्परा	- 79 - 86
3.3	वास्तुशास्त्र अनुशीलन की पाश्चात्य परम्परा	- 87 - 88
3.4	प्रस्तुत अध्ययन पर आधारित तत्व	- 89 - 94

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
अध्याय - चतुर्थ -	केरल प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन	- 95-125
अध्याय - पंचम -	कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन	- 126-147
अध्याय - षष्ठम -	केरल एवं कर्नाटक प्रांत के अध्ययन के निकष की तुलनात्मक विवेचना	- 148-216
अध्याय - सप्तम -	उपसंहार, मूल्यांकन एवं प्रदेय	- 217
मानचित्र - केरल		
	1) भौगोलिक	
	2) जनसंख्या	
	3) खनिज	
	4) कृषि	
	5) औद्योगिक क्षेत्र	
मानचित्र - कर्नाटक		
	1) भौगोलिक	
	2) जनसंख्या	
	3) खनिज	
	4) कृषि	
	5) औद्योगिक क्षेत्र	
रेखाचित्र		
	1) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त का क्षेत्रफल	
	2) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त में महिला एवं पुरुष साक्षरता का प्रतिशत	
	3) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त की जनसंख्या का व्यवसायिक वर्गीकरण	
	4) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर	
	5) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त की प्रतिव्यक्ति आय	
	6) केरलवासियों का खाड़ी देशों में निर्गमन	
छायाचित्र		
	1) केरल एवं कर्नाटक प्रान्त के छायाचित्र	

भूमिका

भारतीय ऋषि मनीषियों की आध्यात्मिक उन्मुक्त चिंतन धारा का प्रस्फुटन एवं पल्लवन वेद रूपी मानसरोवर में हुआ है। वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। इन्हीं वेदों से लोक मंगलकारी एवं सार्वभौम सुख-शांति के लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली विधा के रूप में आयुर्वेद, गंधर्ववेद, धनुर्वेद एवं स्थापत्यवेद आदि ज्ञान की अजस्र धारा निसर्जित हुई। सृष्टि की उत्पत्ति पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, वायु अग्नि एवं आकाश इन के आनुपातिक समायोजन से हुई और समस्त प्राकृतिक पर्यावरण एवं जीवन की सृजनात्मक शक्ति का रहस्य भी इन्हीं पंचतत्त्वों में निहित सकारात्मक ऊर्जा ही है। इसके विपरीत नकारात्मक ऊर्जा से प्राकृतिक पर्यावरण में प्रदूषण, असंतुलन, विघटन, विसर्जन, प्रलय आदि की संभावनाएँ निर्मित होती हैं। फलस्वरूप मानव सभ्यता के इतिहास में अनेक प्राचीन सभ्यताओं के विनाश का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन स्थापत्यवेद में इन्हीं पंचमहाभूतों द्वारा उत्सर्जित ऊर्जाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने की विधा का वर्णन उल्लेखित है। भारतीय संस्कृति में मानव के जीवन का लक्ष्य इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति, अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति माना गया है, जो भूमि भवन के बिना असंभव है। भूमि, भवन शिल्पविज्ञान का नाम ही स्थापत्यकला या वास्तुकला है और भगवान विश्वकर्मा ही वास्तु विधा के अधिष्ठाता तथा निर्माण एवं सर्जना के देवता हैं ऋग्वेद में इन्हें अत्यंत दक्ष, कुशाग्रबुद्धि तथा कुशल शिल्पी कहा गया है। वास्तुशास्त्र के वैज्ञानिक नियमों के परिपालन से ही उपर्युक्त लक्ष्य को मानव प्राचीन काल की तरह आज भी प्राप्त कर सकता है। जैसे प्राचीन भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था क्योंकि प्राचीन काल में भारत एक समृद्ध शाली देश था, इसका श्रेय निश्चित ही स्थापत्यवेद को दिया जा सकता है। प्राचीन काल में भवन-निर्माण स्थापत्यवेद के अनुसार किए जाते थे अर्थात् एक झोपड़ी से लेकर महलों तक के निर्माण में स्थापत्यवेद एक मुख्य भूमिका निभाता था। स्थापत्यवेद एवं ज्योतिष सलाह के अनुसार ही कार्य किए जाते थे। राजा और प्रजा में जो एक सामंजस्य पूर्ण व्यवस्था थी,

उसमें निश्चित ही वास्तु एवं ज्योतिष के नियमों के परिपालन को हम उसका आधार मान सकते हैं।

वास्तुशास्त्र पूर्णतः भारतीय अध्यात्म विधा पर आधारित है अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय आध्यात्म एक ऐसा क्रियात्मक विधान है जिसमें सीमित भूमि रचना को 'अपरिमित' वैश्विक शक्ति' में परिवर्तित किया जा सकता है।

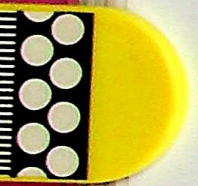
वास्तुकला के बिना वास्तु / भवन लोहे, ईट, सीमेंट, रेत तथा पत्थर का ढाँचा मात्र है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर आत्मा के बिना शव बन जाता है, उसी प्रकार भवन-निर्माण सामग्री के ढाँचे रूपी शव को शिव बनाना हो तो वास्तु रूपी आत्मा को प्रविष्ट कराना अति आवश्यक है। प्राचीन स्थापत्य या वास्तु का प्रभाव हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

वर्तमान भारतीय भौगोलिक परिदृश्य में क्रमागत रूप से जो परिवर्तन हो रहे हैं उसके कारणों को जानने की दिशा में मेरा सहज ध्यान आकर्षित हुआ, चूंकि वास्तु मेरा प्रिय विषय रहा है अतः मैंने अपने शोध-विषय में भारत के दक्षिणी प्रांत केरल एवं कर्नाटक में होने वाले परिवर्तन एवं उनके प्रभावों को शोध के विषय में समाहित किया है और इन्हीं आधारों पर मैंने केरल एवं कर्नाटक प्रांत की समृद्धि एवं सम्पन्नता का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन' को मैंने बहुआयामी दृष्टिकोण से प्रतिपादित करने के लिए इसे सात अध्यायों में उपनिबद्ध किया है।

अध्याय - प्रथम





अध्याय - प्रथम

1.1 प्रस्तुत कार्य एवं उसकी परिधी में आनेवाले शोधकारी -

प्रथम अध्याय में प्रस्तुत कार्य और उसकी परिधी में आनेवाले शोध कार्य, संबंधित स्वतंत्र कृतियों, लेखों एवं संदर्भित ग्रंथों की जानकारीयों एवं इनके अतिरिक्त शोध कार्य में कम्प्यूटर से प्राप्त जानकारीयों को भी उपयोग में लाया गया है।

1.2 प्रस्तुत कार्य क्षेत्र एवं सीमाएँ -

प्रस्तुत कार्य केरल एवं कर्नाटक प्रांत के अध्ययन पर आधारित है। इस पक्ष पर अद्यवधि हिन्दी में कोई भी शोध कार्य संपन्न नहीं हो सका है। जहाँ तक स्वतंत्र कृतियों का संदर्भ है उनमें प्रमुख हैं - मानसार (आचार्य प्रसन्न कुमार), समराङ्गण सूत्रधार (द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल), वास्तुसौख्यम (कमलकांत शुक्ल), विश्वकर्मा प्रकाश (गणेश दत्त पाठक), बृहत संहिता (सुरेशचंद्र मिश्र), मनुष्यालय चंद्रिका (डॉ. बालगोपाल टी.एस. प्रभु, ए. अच्युतन) इनके अतिरिक्त मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, स्कंद पुराण में भी स्थापत्यवेद का विशद वर्णन मिलता है।

वर्तमान में स्थापत्यवेद अर्थात् वास्तुशास्त्र के प्रति जागरूकता लोगों में दिखाई देती है जिसके तहत आज सरल भाषा में वास्तुशास्त्र के आधुनिक ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिससे साधारण व्यक्ति भी इनसे लाभ प्राप्त कर सकें। डॉ. भोजराज द्विवेदी की 'सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र', डॉ. उमेशपुरी ज्ञानेश्वर की 'भवन निर्माण और वास्तुशास्त्र', रविकान्त झा की 'वास्तुकला का इतिहास' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं। इन सभी ग्रंथों में प्राचीन ग्रंथों को आधार बनाया गया है।

1.3 प्रस्तुत कार्य प्रविधि एवं प्रणाली -

प्रस्तुत कार्य का क्षेत्र प्रांतीय रचनाओं पर वास्तुशास्त्र का अध्ययन है, जिसके केन्द्र में केरल एवं कर्नाटक प्रांत को रखा गया है। प्रस्तुत शोध कार्य की विधि निम्नानुसार है -

1. प्रस्तुत कार्य आसंदी कार्य के साथ ही क्षेत्रीय कार्य है, तदनुसार अनुसंधेय प्रांतों का अध्ययन किया गया है।
2. सांख्यिकी पुरित्ता-1991-2001 केरल एवं कर्नाटक प्रांत के कार्यालयों से प्राप्त कर आंकड़ों का संकलन किया गया है। संकलित आंकड़ों को विश्लेषित किया गया है। मानचित्र व रेखाचित्रों की सहायता से आंकड़ों के स्पष्ट प्रदर्शन की व्याख्या की गई है। शोध विधि में केरल एवं कर्नाटक प्रांत के विभिन्न मानचित्रों का उपयोग किया गया है।
3. महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर, जबलपुर नगर पालिका पुस्तकालय एवं केरल एवं कर्नाटक प्रांत के विभिन्न पुस्तकालयों व अन्य स्थानों से प्राप्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध पत्रों एवं शोध प्रबंधों तथा प्रकाशित ग्रंथों का अध्ययन तथा विश्लेषण हेतु उपयोग किया गया है।
4. स्वयं द्वारा किए गये सर्वेक्षणों एवं स्वयं के अनुभवों के आधार पर विवरण दिए गये हैं।
5. भारतीय सर्वेक्षण विभाग में स्वीकृत मानचित्रों एवं अन्य प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं आदि की भी शोध-कार्य में सहायता ली गई है।
6. इन सबके अतिरिक्त समय-समय पर होने वाली राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में हुए विचार-विमर्श का प्रयोग भी शोध-प्रबंध में किया गया है।

विश्वविद्यालयीय शिक्षण

सर्वत्र ही प्रथा लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

विश्वविद्यालयीय शिक्षण आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू आहे.

विश्वविद्यालयीय शिक्षण आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

ही प्रथा आजही लागू होती. ही प्रथा आजही लागू आहे. ही प्रथा आजही लागू आहे.

प्रस्तुत शोध प्रबंधन में विभिन्न कार्यालयों से प्राप्त आंकड़ों एवं अन्य जानकारियों से, स्वयं द्वारा किए गये सर्वेक्षण एवं अनुभव के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा, विभिन्न ऋषि-मुनियों द्वारा वर्णित वास्तु विधियों के बीच सामंजस्य स्थापित कर उनके निष्कर्षों को केरल एवं कर्नाटक के वास्तुशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में परीक्षणों द्वारा सत्यापित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में वास्तुशास्त्र का उद्भव -

वास्तुशास्त्र का परिचयात्मक अर्थ, वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास, वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य एवं ग्रंथ, वास्तुशास्त्र की व्यापकता, भवन निवेश, पुर निवेश प्रांत के अंतर्गत अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में -

वास्तुशास्त्रीय अध्ययन की आधारभूमियों के अंतर्गत भारतीय एवं चीनी वास्तुशास्त्र की परंपरा के साथ ही पाश्चात्य वास्तुशास्त्रीय परंपरा के अनुशीलन के साथ ही प्रस्तुत अध्ययन के आधारभूत तत्व का अनुशीलन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में -

केरल के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक व सांस्कृतिक विकास का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

पंचम अध्याय में

कर्नाटक के भौगोलिक , आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक व सांस्कृतिक विकास का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

षष्ठम अध्याय में

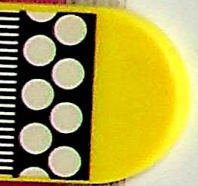
दोनों प्रांतों केरल एवं कर्नाटक का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन विस्तार से किया गया है एवं उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

सप्तम अध्याय में

उपसंहार, मूल्यांकन एवं प्रदेय का विश्लेषण किया गया है।

अध्याय - द्वितीय





2. वास्तुशास्त्र का उद्भव विकास एवं प्रासंगिकता

2.1 वास्तुशास्त्र का परिचयात्मक अर्थ

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यारम्भान् त्वावेशो अनमीवो भवानः।

यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ (ऋग्वेद 7/54/1) (3)

अर्थात् हे वास्तुदेव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं इस पर आप पूर्ण विश्वास करें और तदन्तर हमारी स्तुति प्रार्थनाओं को सुनकर आप हम सभी उपासकों को आधि-व्याधिमुक्त कर दें और हम अपने जिस धन, ऐश्वर्य की कामना करते हैं आप उसे भी परिपूर्ण कर दें साथ ही यह वास्तुक्षेत्र या गृह में निवास करने वाले हमारे स्त्री, पुत्र आदि को परिजनों के लिए कल्याणकारक हो तथा हमारे अधिनस्थ गौ, अश्वादि सभी का कल्याण करें।¹

“प्राचीन भी सर्वोत्तम नहीं होता, समयानुसार विकार समा ही जाते हैं, और नवीन भी वर्तमान की आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पाता है। अतः प्राचीन व नवीन में संतुलन प्रत्येक युग की आवश्यकता है, इसी तरह वास्तुशास्त्र है, कोई भी वस्तु आकार के बिना नहीं होती, वस्तु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श होता है, तो साथ ही आकार भी होता है। आकार को जैन आचार्यों ने संस्थान भी बताया है, जिस प्रकार का आकार (संस्थान) होता है, उसी प्रकार की ऊर्जा (सुख, समृद्धि और शांति) का प्रवाह उसमें बहता रहता है।”¹

‘प्रकृति’ पृथ्वी का पर्यावरण है, जीवन की उत्पत्ति का कारण है, ब्रम्हाण्डीय विद्युत चुंबकीय एवं पृथ्वीय ऊर्जा जीवन में अस्तित्व के लिये सहयोग करती है। प्रकृति, भवन तथा भूमि के मध्य तारतम्य स्थापित कर जीवन को खुशहाल बनाने के लिये बाहरी व आंतरिक ऊर्जाओं में समन्वय अत्यावश्यक है, यही वास्तु परिदृश्य में आता है।

वास्तु, भवन बनाने का विज्ञान तथा मानव निर्मित पर्यावरण एवं पंचतत्त्वों पृथ्वी, वायु, प्रकाश (सूर्य, अग्नि), जल एवं आकाश द्वारा उत्सर्जित ऊर्जाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कला है ताकि मनुष्य को अधिक से अधिक शुभ फल प्राप्त हो सकें।²

विश्वकर्मा – वास्तुशास्त्र में इसकी व्याख्या इस प्रकार है –

श्लोक – शास्त्रेनानेन सर्वस्व लोकरस्य परमं सुखम्।

चतुर्वर्ग फलप्राप्तिः सुलोकश्च भवेद्ध्रुवम् ॥

शिल्पशास्त्रपरिज्ञाना मृत्यो ऽपि सुजेतां व्रजेत

परमानंदजनकं देवानाभिद् मीरितम्।

1. विशुद्धमति माताजी वत्थुविज्जा (वास्तुविद्या) आचार्य श्री शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रंथमाला श्री महावीर जी
2. विश्वकर्मा वास्तुप्रकाश अध्याय- 2, /श्लोक 29-30
3. ऋग्वेद - 7/54/1

शिल्पं विना नहि जगतिषु लोकेषु विद्यते ।

जगद्विना न शिल्पांच वर्तते वासवप्रभो ।

अर्थ – वास्तुशास्त्र के कारण सारा लोक, अच्छे स्वास्थ्य, सुख और सर्वतोमुखी संपन्नता को प्राप्त करता है। इस शास्त्र द्वारा मानव दिव्यता प्राप्त करता है। शिल्पशास्त्र का ज्ञान और इस संसार की विद्यमानता परस्पर संबंधित हैं। वास्तुशास्त्र के अनुयायी केवल सांसारिक सुख ही नहीं किंतु दिव्य आनंद का भी अनुभव करते हैं।³

2.1.1 पंचतत्त्व – मानव का भौतिक शरीर पांच तत्वों से बना है – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। शरीर के समस्त कठोर हिस्से जैसे हड्डियाँ पृथ्वी का भाग है। शरीर के समस्त तरल पदार्थ जैसे रक्त व अन्य द्रव जल का हिस्सा है। शरीर के समस्त गर्म भाग जैसे पेट आदि अग्नि के हिस्से हैं। शरीर का फैलना, सिकुड़ना, सांस लेना वायु का हिस्सा है एवं क्रोध, भावनाएँ, स्पर्श आदि संवेदनाएँ आकाश के भाग हैं। आकाश तत्व स्फूर्ति है, वायु तत्व संवेग है, अग्नि तत्व पथ प्रदर्शक है, जल तत्व श्रम है एवं पृथ्वी प्रसन्नता ग्रहण करने वाला तत्व है।

जिस प्रकार शरीर का निर्माण पंच तत्वों से हुआ है। ठीक उसी प्रकार पृथ्वी भी पंचतत्वों से बनी हुई है।

श्लोक : – भूमिरापोऽनलो वायुः एवं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टा ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतो महाबाहो यदेदं धार्यते जगत् ॥

(श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय 7 पृष्ठ 301, 303 श्लोक 4, 5) (2)

अर्थात् मानव की जीव रूपी चेतन प्रकृति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से ही है, तथा जीवात्मा के अंतःकरण पर प्रभाव मन, बुद्धि और अहंकार का ही होता है, अतः इस प्रकार आठ भेंट वाली अपरा ईश्वर की जड़ प्रकृति है।²

जल तत्व, सूर्य, प्रकाश, वायु एवं पृथ्वी शक्ति को अपने आप में समाहित कर लेता है, पृथ्वी से उत्पन्न खाद्य पदार्थ व जल तत्व मानव जीवन का पोषण करता है।¹

1. दवेन मार्क – फॉलोइंग द इक्वेटर भाग – 11/वास्तुलिविंग पृ. 47
2. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय – 7 /श्लोक 4-5 पृ. 301-303
3. राव. डी. मुरलीधर – भवन निर्माण एवं वास्तुशास्त्र /पृ. 16
4. अग्रवाल ईजी. पंकज, वास्तु /पृ. 21

YVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

जल तत्व – वैदिक देव ईश के साथ ही जल तत्व वास्तु पुरुष मण्डल के उत्तर पूर्व कोने में है। हिन्दुत्व के उद्भव के दौरान ईश 'रुद्र' के रूप में और बाद में हिंदु त्रिमुर्ति के विध्वंसक बल शिव के रूप में आये। आध्यात्मिक रूप से उत्तर पूर्व एक मध्यस्थ दिशा है, जिसे भगवान तक का प्रवेश द्वार माना जाता है। यह एक मान्यता है जो विध्वंस के देवता शिव तथा देवी गंगा से जुड़ी एक पुराण से बलवती होती है। इस कथा में ब्रम्ह ने इस नद-देवी से अपना स्वार्गिक रहवास छोड़कर पृथ्वी पर अवतरित होने को कहा था – जहाँ एक राजा ने उनकी उपस्थिति की याचना की थी। देवी, जो जाने की इच्छा नहीं थी, ने तय किया कि जब वे ब्रम्हा का कहना मानेंगी तब भीषण प्रवाह से उतरेंगी।

शिव ने उनके मूसलाधार जल को अपनी जटाओं में समेटकर देवी को उलझा दिया और उन्हें सात विभिन्न धाराओं में बाँट दिया। उनमें से एक भारत की पवित्र नदी गंगा के रूप में जानी जाती है। यह भारत के उत्तर से पूर्व की ओर बहती है; उत्तर पूर्व जिसे देवताओं से प्राप्त सकारात्मक शक्ति का स्रोत मानते हैं, उसे सकारात्मक ब्रम्हांडीय ऊर्जा का स्रोत भी मानते हैं। यह सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, पृथ्वी की काल्पनिक उत्तर पूर्व धुरी सूर्य के लम्बवत नहीं है। पृथ्वी की धुरी उचित उत्तर से $23\frac{1}{4}$ अंश पर झुकी है। वास्तु का मानना है कि यह झुकाव जो तापमान परिवर्तन और रात्रि व दिवस की दीर्घता में मौसमी परिवर्तन का कारक है, उत्तर-पूर्व की दिशा से व्यापक प्रसारमय ब्रम्ह ऊर्जा खींचता है। उत्तर-पूर्व से यह ऊर्जा भूमि स्थल के आरपार दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहती है।

वास्तु में संपत्ति का उत्तर-पूर्व भाग तालाब, तरण-ताल, फव्वारे या फिर सिर्फ एक घांसीय मैदानी भाग के लिये सर्वोचित है। यदि यह वर्गखंड बाकी भू-स्थल से ढलान पर है तो अपने को भाग्यशाली मानिये। यह अवतलन इन लाभदायी ऊर्जाओं का धारक बन कर उनमें वृद्धि करता है जो आगे चलकर पूरे स्थल पर फैल जाती हैं। भवन के अंदर उत्तर-पूर्व का एकान्त कक्ष अध्ययन – ध्यान हेतु आदर्श होता है।

अग्नि – दक्षिण-पश्चिम का कोना अग्नि तत्व अथवा अग्नि के वैदिक देव का है। ज्ञान का प्रकाश कहलाने वाली अग्नि आत्मा के चैतन्य की प्रतिनिधी भी है। हिन्दुओं में मृतकों का दाह-संस्कार किया जाता है। बलिदान (त्याग) के एक भाग के रूप में परिवार का वह सदस्य जो हाथ में मशाल लिये चिता की परिक्रमा करता है, आत्मा की मुक्ति हेतु वह अंततः मृतकों के सिर को प्रज्ज्वलित करता है। इस तरह शरीर के बन्धन से आत्मा को मुक्त कराने के लिये अग्नितत्व का ही प्रयोग किया जाता है। अधिकांश महत्वपूर्ण हिंदु अवसरों, आयोजनों में अग्नि का प्रयोग होता है, मंदिर में उसके

देव के सम्मान से लेकर जन्म से मृत्यु तक किसी भी मानव के जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों की परंपराओं तक इसका प्रयोग होता है।

अग्नि तत्व अति संवेदनशील होता है, और इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। इस वर्गखंड में अत्याधिक अग्नि परामूर्तकार और विध्वंसक होती है। अग्नि से हल्का स्पर्श भी घातक हो सकता है। जबकि अग्नि की अनुपस्थिति तीव्र असहूलियत कारक हो सकती है। वास्तु के आधुनिक व्याख्यानान्तरण में अग्नि का संबंध विद्युत उपकरणों से भी है। किसी स्थल पर अग्नि या विद्युत से संबंधित कोई भी चीज दक्षिण-पूर्व में स्थित हो तो बेहतर होगा। किसी गृह में रसोई दक्षिण पूर्व में और किसी कमरे में दक्षिण-पूर्व कोना किसी विद्युत उपकरण जैसे मनोरंजन के साधन या कम्प्यूटर के लिये आदर्श होंगे।

भूमि — दक्षिण-पश्चिम वर्गखण्ड भूमि तत्व से संबंध रखता है जो इस अन्तर्दिशा की पूर्वजों के वैदिक देवता पितृ से सहभागिता करता है। सभी जीवित जीवाणुओं के अवशेष मृत्युपरांत विघटित होकर मिट्टी में मिल जाते हैं। हम धूल से आकर वापस 'धूल' में मिल जाते हैं।

दक्षिण-पश्चिम वर्गखण्ड का नाता विद्वत्ता से भी है। हमारे पूर्वज अपने पीछे पीढ़ियों का ज्ञान छोड़ जाते हैं और जो ज्ञान हम अपने जीवन काल में संजोते हैं, वह आगामी पीढ़ी के लिए छोड़ जाते हैं, इसलिए जब हम स्वयं को दक्षिण पश्चिम में रखते हैं तो हम समय काल से श्रद्धेय ज्ञान और दिव्यदृष्टि प्राप्त करते हैं।

इस वर्गखण्ड में भूमि तत्व की उपस्थिति का तात्पर्य भारीपन और भार से भी है, निर्माण स्थल के इस भाग में ही अधिकतम वजन रखा जाना चाहिए। भारी शिला-शिल्प तथा पाषाण उद्यान यहीं होने चाहिए। यदि परिसंपत्ति के इस भाग में कोई प्राकृतिक उभार हो तो उसे ना छेड़ें, उसकी उपस्थिति आपका सौभाग्य है, घर में गृह स्वामी का शयनकक्ष या बैठक दक्षिण-पश्चिम में होने चाहिए, यदि आपके बच्चे इस भाग में सोते हैं तो वे उद्वण्ड और वर्चस्व प्रिय हो सकते हैं। सर्वाधिक वजनी या सबसे बड़ा फर्नीचर भी हर कमरे के दक्षिण-पश्चिम भाग में होना चाहिए। कुल मिलाकर यह वर्गखण्ड 'उत्तर-पूर्व' से आने वाली सकारात्मक ऊर्जा जो गृह तथा उसके प्रत्येक कक्ष से होकर उत्तर-पश्चिम की ओर जाती है (ऊर्जा को) तथा आध्यात्मिक शक्तियों के संचयन हेतु (यह वर्गखंड) प्रयुक्त होना चाहिये।

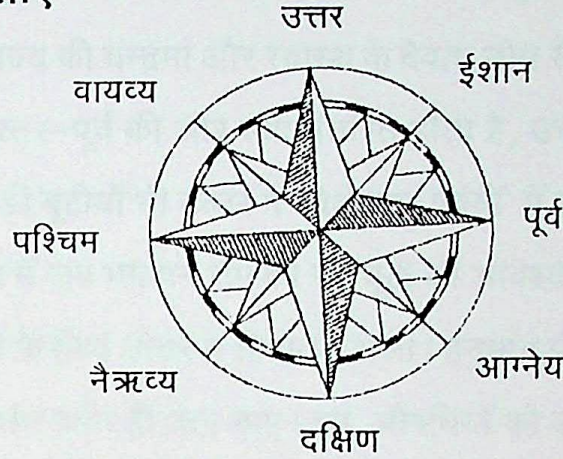
वायु :- सभी जीव रूपों को जीवनदायी श्वास प्रदान करने वाला वायु-तत्व उत्तर पश्चिम वर्गखंड में होता है। यह अंतर दिशा पवन के वैदिक देव वायु का क्षेत्र भी है। उनकी उपस्थिति गतिशीलता को परिलक्षित करती है। वायु 'गति' में सहायक है, जो लक्ष्य की प्राप्ति और सफलता प्रदान करने वाले विचारों का नेतृत्व करती है।

गति के रूप में पहचान उत्तर-पश्चिमी दिशा को अतिथि कक्ष के रूप में सर्वाधिक उपयुक्त स्थल बनाती है।

आकाश - आकाश तत्व ब्रम्ह स्थान का प्रतिनिधित्व करता है। सृष्टिकर्ता ब्रम्ह केन्द्र से शासन करते हैं जहाँ से ब्रम्हस्थान या देव स्थल नामक जगह की स्थल तत्व से सहभागिता करते हैं। ब्रम्हस्थल आध्यात्मिक ऊर्जा का भंडार केन्द्र है जो यहाँ समाहित होती है फिर लाभदायी स्पंदनों के रूप में हर संभव दिशा में बाहर की ओर विकृत होती है, ठीक जिस तरह किसी हिंदु मंदिर के मध्य स्थित देवी पूजन के लिये आने वाले श्रद्धालुओं को सकारात्मक स्पंदन और नवीनकारक ऊर्जा मिलती है। इसी तरह किसी लौकिक स्थल के केन्द्र में स्थित ब्रम्हा उपस्थित जनों को पूर्णऊर्जाकृत तथा सकारात्मक आभास देने वाला कंपन देते हैं।

चूँकि वारस्तुपुरुष के कई संवेदनशील बिंदु या मर्म, ब्रम्ह स्थान के मध्य या निकट होते हैं अतः भवन का यह भाग खुला छोड़ने का प्रयास करें या कम से कम इस भाग में निर्माण न्यूनतम रखें। केन्द्र में खुला स्थल ब्रम्हांडीय पावन शक्ति को पहुंचने वाले आघात को कम करता है, और साथ ही पूरे भवन में आध्यात्मिक स्पंदनों के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा देता है। प्रत्येक कक्ष में भी खुले या ब्रम्हस्थान का सिद्धांत परिलक्षित होना चाहिये ताकि आध्यात्मिक ऊर्जाएँ एकत्रित होकर कक्ष के प्रत्येक स्थान में विकरित हो सकें, जिससे समान लाभदायी प्रभाव निर्मित हो।

2.1.2 मूलभूत दिशाएँ –



मूलभूत विशिष्ट दिशाएँ उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम भी वास्तु में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा इन्हें सभी भवनों की आंतरिक मानचित्र रचना में घटकीकृत किया गया है। मूलभूत दिशाएँ और उनका वैशिष्ट्य न केवल भौतिक विश्व में बल्कि नैतिकता के संसार में भी संतुलन के महत्व को प्रकाशित करते हैं जैसे अच्छा और बुरा, उज्ज्वल और अंधकार, सूर्योदय और सूर्यास्त, ज्ञान और अज्ञान।

हमारे संसार में अनगिनत द्वैतवाद (दोहरापन) हैं और उनकी उपस्थिति एक महत्वपूर्ण उद्देश्य को निभाती है। इसे समझने के लिये जरा सोचें यदि हमें अंधेरे का अनुभव ना हो तो हम प्रकाश की प्रशंसा कैसे करेंगे, अज्ञानता की फुहड़ता समझे बगैर हम ज्ञान का सम्मान कैसे कर सकते हैं। हम मीठे की तुलना खट्टे से, गर्म की तुलना शीतल से, बीमारी की स्वास्थ्य से, दाहिने की बाएँ से, ऊपर की नीचे से, यौवन की वृद्धावस्था से, आनंद की पीड़ा से और हास्य की तुलना रुदन से करते हैं।

वास्तुपुरुष मण्डल में विशुद्ध दिशाएँ द्वैतवाद के सिद्धांत को अभिव्यक्त करती है। किसी हिंदु मंदिर की बनावट में जब हम उसके गर्भगृह में पहुंचते हैं, जिसमें देव / देवी की पवित्र प्रतिमा या उसका सूचक अवस्थित होता है, तब हम एक ऐसे बिंदु पर आ जाते हैं, जहाँ हम द्वैतवाद की दुनिया में नहीं रह जाते, उस समय हम शुद्ध सात्विक तत्व के शासन में होते हैं।

सर्वविदित है कि जिस दिशा से सूर्य उदय होता है, उसे पूर्व कहते हैं, और जिस दिशा में अस्त होता है उसे पश्चिम कहते हैं, जब पूर्व की ओर मुख करके खड़े होने पर उसके बाएँ ओर उत्तर एवं दाएँ ओर दक्षिण होता है। वह कोण जहाँ दो दिशाएँ मिलती हैं, अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि वह दोनों दिशाओं से आने वाली शक्तियों को मिलाता है।

1. उत्तर-पूर्वी कोण - ईशान्य दिशा 2. दक्षिण-पूर्वी कोण - आग्नेय दिशा।
3. दक्षिण-पश्चिम कोण - नैऋत्य दिशा। 4. उत्तर-पश्चिम कोण - वायव्य दिशा¹

1. वास्तुलिविंग पृ. 50

उत्तर :- जन्म के देवताओं के साथ ही सम्पदा और तोषण /तुष्टि के देवताओं का शासन भी उत्तर में है। कुबेर अपने राज्य की चन्द्रमा और स्वास्थ्य के देवता सोम से सहभागिता करते हैं। जैसे चंद्रमा उत्तर पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर स्थानांतरित होता है, उसमें अलौकिक कांति आती जाती है। कई औषधीय जड़ी बूटीयाँ भी उत्तर में विशेषकर पर्वतों में पनपती हैं।

हिंदु धर्मग्रंथ रामायण में जब भगवान राम को एक बूटी की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने वानर देवता हनुमान को उसे लाने के लिये उत्तर में हिमालय भेजा। हनुमान पौधे की पहचान ना कर सके तो वे राम के लिये पूरा गोवर्धन पर्वत ही उठा लाए। हम औषधियों को उत्तर दिशा की ओर रखकर उनके गुण सुरक्षित रख सकते हैं। यदि आपको सफलता चाहिये तो उत्तराभिमुख होकर कार्य करने का प्रयास करें आपको कुबेर और सोम का आशीर्वाद प्राप्त होकर स्वास्थ्य और संपदा मिलेगी, जिसमें आध्यात्मिक संपदा शामिल है।

दक्षिण -दक्षिण में हमें मृत्यु के वैदिक देव यम मिलते हैं, जो पूर्वजों के संसार की देखरेख करते हैं। मृत्यु होने पर यम, आत्मा पर निर्णय देकर उसका भाग्य तय करते हैं। आत्मा को एक और बार जन्म-मृत्यु चक्र से गुजरना होगा या उसे मुक्ति प्राप्त होकर वह परम सृष्टिकर्ता के पास रहेगी। कैसे इन विशेष द्वैतों की उपस्थिति हमें प्रभावित करती है? यदि आप यम से अपने मेल को खत्म करना चाहते हैं तो आप अपनी तबीयत और स्वास्थ्य पर ध्यान दें, यदि आप मृत्यु पर पुरस्कृत होना चाहते हैं तो आप अतितुष्टि (कुबेर) के बारे में सोचेंगे। यदि आप अपने घर या कार्यस्थल पर दक्षिण की ओर पीठ करके बैठेंगे तो आपको अपने कर्तव्यों की याद आती रहेगी और आपको अपने पूर्वजों की शक्ति और वृद्धि प्राप्त होती रहेगी।

पूर्व - सूरज के वैदिक देवता सूर्य पूर्व में शासन करते हैं हमें प्रकाश और ज्ञान देते हैं। यदि दुनिया का अस्तित्व शाश्वत और चिर अंधकार में होता तो कोई भी जीवाणु पनप नहीं पाता। पूर्व की ओर मुख कर यदि आप अध्ययन या कृतीत्व करें तो इस दिशा से आने वाला ज्ञान आपको अभिप्रेरित करेगा।

पश्चिम : वैदिक देवता वरुण जिनके काल के अनुसार कई नाम और भूमिकाएँ हैं, वे समूहों के देवता और पश्चिम उनका राज्य है। अपने राज्य से वरुण अंधेरे और अज्ञान पर शासन करते हैं। यही वह स्थान है, जहाँ सूर्य की किरणें आराम कर रात्रि के अंधियारे को स्थान देती हैं, वरुण देव सूर्य के द्वैत या विलोम सिद्धांत है। अंधेरे और अज्ञान की ओर पीठ कर आप पूर्व के प्रकाश और ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

2.1.3 वास्तुशास्त्रीय परिभाषाएँ एवं नियम

श्लोक - एवं सर्वविमानानि गोपुरदीनि वा यतः ।

मनोहरतरं कुर्यान् नानाचित्रैविचित्रितम् ॥ (शिल्परत्न)

अर्थात् वास्तुकला मात्र एक यांत्रिक कला न रहकर मनोरम कला के रूप में हमें प्राप्त हुई है, वास्तव में भारतीय वास्तुकला, काव्यकला, संगीतकला, नृत्यकला आदि के समान मनोरम कला है, साथ ही इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि इनका आधार आध्यात्म की ज्योति है जिससे वे अनुप्राणित हैं।

ये शब्द 'वास्तु' जो हिंदुत्व के पवित्र गद्यों 'वेद' से उत्पन्न होता है, 'आश्रय' या 'आवास' अर्थ रखता है। मूलतः वास्तु का प्रयोग नगर नियोजन, देवताओं के देवालयों, महलों, किलों तथा उच्च कुलीनों के निवास के लिये होता था, किंतु आज वास्तु महलनुमा बंगले से लेकर विनम्र चित्रशालाओं, आवासखंडों, विशाल अटारियों दीर्घाओं से झील की कोठरियों, कारखानों व कार्यालय भवनों तक सब पर लागू हैं।

चतुष्खण्डीय वेदों ('वेद' अर्थात् 'जानना' या अभिप्राय रखना' से बने संस्कृत शब्द 'वेद' का अर्थ 'ज्ञान' होता है) से उत्पन्न जो सिद्धांत अन्य हिन्दु जीवन भागों जैसे योग या आयुर्वेद का आधार हैं, वे ही सिद्धांत वास्तु के आधार की रचना करते हैं।¹

वैदिक ज्ञान के इस विशाल निकाय में प्रत्येक वेद के अंतिम सम्पूर्ण ज्ञान 'उपनिषद्' में जो चार सिद्धांत व्यक्त हैं, वे इन भागों तथा हिन्दुत्व की समझ के लिए धुरी समान हैं।

- (1) प्रकृति के नियम एक अन-अस्वीकृत (अर्थात् हर हाल में स्वीकृत) व्यवस्था और पारस्परिक तारतम्य की संरचना करते हैं।
 - (2) वह सब कुछ जिसका 'अस्तित्व' है अर्थात् हर 'अस्तित्व' (जिसका तात्पर्य सम्पूर्ण घटनामय या दृश्यमान ब्रम्हाण्ड से है) प्राणवान है।
 - (3) संपूर्ण विद्यमान अस्तित्व परस्पर संबंधित हैं।
 - (4) सभी कुछ/सारे कुछ का सत्त्व उस परम-सृजक-शक्ति (परमात्मा) का अंश है।²
- शुक्रनीति शास्त्र के अनुसार'' वास्तुविद्या महल, भवन, मूर्ति, मंदिर, नहर, तड़ाग, वाणी, कूप, उद्यान एवं अन्य रचनाओं का विज्ञान है।''

मानसार के रचनाकार कहते हैं कि वास्तुरचना की उपयुक्तता और औचित्य उसकी व्यवस्था,

1. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समरांज्ण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग /प्रथम अध्याय पृ. 19
2. वास्तुलिविंग पृ. 17

अनुपात, एकरूपता उसकी सुसंगति और सामंजस्यता तथा मितव्ययता के वास्तुशास्त्र पर निर्भर करता है, स्वरथ-सुखद और शांत निवास ही वास्तुशास्त्र का उद्देश्य है।

पार्थिव अथवा स्थूल रचना को सचेत के रूप में जब हम अपनी चेतना के धरातल पर सुप्रतिष्ठित करते हैं तब वह "वास्तु" कहलाती है वास्तु भवन रचना अभियोजना की प्राथमिकी है।

"वास्तुशास्त्र स्वयं में एक संपूर्ण विज्ञान है" इसकी प्रौद्योगिकी सुव्यवस्थित और दोषमुक्त है, जो भवन रचना के लिए सुदूर अतीत में विकसित हुई थी।"

वास्तव में वास्तु विज्ञान ऊर्जा के पदार्थ रूप में प्रकटीकरण अथवा अभिव्यक्ति का विज्ञान है। यह विज्ञान है सूक्ष्म ऊर्जा के सचेतन स्थूल परिवर्तन का। यह विज्ञान है, निराकार ऊर्जा के साकार-ऊर्जा में परिवर्धन का। यह विज्ञान है, वास्तु के रूप में आकार लेने का।

अर्थात् वस्तु- वास्तु। वस्तु रेव वास्तु। सूक्ष्म ऊर्जा= पदार्थ ऊर्जा
निराकार ऊर्जा= साकार ऊर्जा। यह आइंस्टीन के सूत्र ($E=MC^2$) के समानांतर है।

जिसमें (E) शुद्ध ऊर्जा (वस्तु)। (MC^2) = पदार्थ ऊर्जा (वास्तु)। हमारे उपनिषदों के तत्त्वज्ञान के सूत्रों का यह एक तरह से भाष्य है जिसमें कहा गया है :-

"एकोहं बहुरयाम्, अहं ब्रम्हास्मि और तत्त्वमसि (तुम ही वह हो) आदि।¹

गृहनिर्माण शास्त्र की परिभाषा :- यह भवन निर्माण करने की एक कला व विज्ञान है। विज्ञान की नजर में यह निम्नलिखित ज्ञान का उचित उपयोग करने पर निर्भर करता है, जैसे 1. निर्माण सामग्री, 2. निर्माण की विधि 3. आसपास की स्थिती का उचित प्रबंधन, कला की दृष्टि से मानवीय आकांक्षा तथा सौंदर्य (वास्तु) का उचित प्रदर्शन, आकार, वातावरण, तथा सजावट, ग्रीक भाषा से "आर्किटेक्टन" यह शब्द लिया गया है, जिसका मतलब प्रधान शिल्पकार या प्रमुख कर्मकार होता है। भारतीय भाषा में उसे ही 'प्रधान शिल्पी' या 'स्थपति' कहते हैं जो उस शिल्प का निर्माण करता है, इसलिए 'आर्किटेक्चर' को वास्तु विद्या कहा गया है जिसका अर्थ इमारत (भवन) आदि संबंधी विज्ञान।

आरंभिक तौर पर 'वास्तुशास्त्र' एक प्रक्रिया है। यह ऐसी प्रक्रिया है जो मानवीय कार्यकलाप के अनुसार उसका आकार एवं नमूना निश्चित करती है। इस कार्यकलाप में आवश्यक जगह का समावेश गृह में किया जाता है। स्थायित्व मजबूती भी एक आवश्यक पहलू होता है, जो कि उपयोग में आने वाली सामग्री के स्थायित्व व मजबूती पर निर्भर होता है।²

1. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका / वास्तुशास्त्र खंड - दो / पृ. 14-15

2. प्रभु बाल गोपाल टी.एस., अच्युतन ए. / एटैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या पृ. 1

सरसरी तौर पर गृह (भवन) आदि आकार उसके सौंदर्य तथा दर्शनियता को प्रदर्शित करता है, भवन दर्शनियता यह पुनः वास्तु निर्माण के अंतर्गत आता है। प्राचीन वास्तु वेत्ता के मतानुसार वास्तुशास्त्र एक आवश्यक जगह की उपलब्धता तथा भवन सामग्री की मजबूती और दर्शनीय सौंदर्य का सम्मिलित उपयोग है। “रस्किन के अनुसार” अच्छा वास्तु (शिल्प) वह होता है, जिसमें राष्ट्रीय भावना, रुचि, कला, जीवन प्रणाली तथा प्रेम का उत्कृष्ट प्रदर्शन होता है।

जैसे - ग्रीक वास्तु में परिष्कृत रेखांकन, रोमन वास्तु में वैभव, समृद्धि, गोथिक वास्तु में उत्कृष्ट भावना, तथा भारतीय वास्तु में गूढ़ आध्यात्मिक भाव तथा सन्निकट वातावरण का तालमेल दिखाई देता है।¹

2.1.4 भवन निर्माण का आरंभ:-

आरंभिक निर्माण की शुरुआत “करो और देखो” की पद्धति पर हुई, किसी भी स्थान पर, उपलब्ध निर्माण सामग्री से, उपलब्ध कारीगर की सहायता द्वारा कार्य आरंभ किया जाता था। उन्नत प्रकार के वास्तु का आरंभ जहाँ पर्याप्त पत्थर व लकड़ी के लट्टे प्राप्त हो सकते थे वहाँ हुआ, जहाँ मिट्टी, पत्थर, ईंट आदि उपलब्ध होते थे वहाँ यथार्थ निर्माण शुरू हुआ, जहाँ विभिन्न निर्माण सामग्री उपलब्ध होती थी वहाँ मिश्रित निर्माण हुआ, इसी तरह वहाँ के मौसम के अनुसार उपयुक्त निर्माण होता था। इसी कारण विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न आकार के भवन निर्माण हुए। भारत के प्राचीन वास्तुशास्त्र में इसकी तकनीकी, व्यवस्थित ढंग से विकसित की गई और इस कार्य को संपादित करने वालों को स्थपति कहा गया¹। मालवा के प्रसिद्ध शासक राजा भोज परमार ने 11 वीं शताब्दी के आरंभ में स्वरचित ग्रंथ “समरांङ्गण सूत्रधार” में स्थपति की योग्यता का वर्णन इस प्रकार से किया है -

शास्त्रं कर्म तथा प्रजाशीलं च क्रिययान्वितम् ।

लक्ष्यलक्षणयुक्तार्थन्शास्त्रनिष्ठो नरो भवेत् ॥ 2 ॥

(“समरांङ्गण सूत्रधार” वास्तुशास्त्रीय भवन निवेश-44/2)

स्थपति लक्षण - प्राचीन भारत की पद्धति के अनुसार वास्तुकला कोविद स्थपति की चार कोटियाँ होती हैं :-

स्थपति :- स्थपति वास्तुशास्त्र के सभी अंगों में निष्णात विद्वान तथा परम कुशल कलाकार माना जाता है।

सूत्रग्राही :- सूत्रग्राही वर्तमान के ओवरसियर की भाँति कार्य करता है।

तक्षक : तक्षक की विशेषता और वैदव्य तथा दक्ष्य पाषाण कला अर्थात् मूर्ति कला पर आश्रित है।

वर्धकि :- वर्धकि पच्चीकारी और काष्ठकला का कोविद होता है।²

1. प्रभु बाल गोपाल टी.एस., अच्युतन ए. / ए टैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या पृ. 1-2-4

2. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समरांङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग/प्रथम अध्याय पृ. 44/2

2.2 वास्तुशास्त्र का उद्भव एवं विकास

2.2.1 वास्तु शिल्प का ऐतिहासिक उन्नयन

वास्तुशिल्प निर्माण के लिये हमेशा ही तात्कालिक प्रशासक जैसे – राजा, महाराजा, आदि उस निर्माण के आश्रयदाता रहे हैं। उस वास्तु में उनके वैभव, यश तथा महत्ता का चित्रण किया जाता था, इसके लिये जरूरी धन-सामग्री और कारीगरी का उपयोग बिना किसी संकोच के किया जाता था। वास्तु शिल्प जैसे मंदिर, भवन, महल, विद्यापीठ, संसद भवन आदि। इसी कारण सभी प्रकार के भवन जो कि शासनकर्ता व प्रजा के साधारण या विशिष्ट उद्देश्य हेतु बनाये जाते थे, उसमें तत्कालीन आश्रयदाता या राजा महाराजाओं की कल्पना या व्यक्तिगत बातों का मिश्रण देखने मिलता है।

आधुनिक युग में वास्तु निर्माण में महान क्रांति हुई। जिसका मुख्य कारण औद्योगिकरण व व्यवसायीकरण था। इसमें भी प्रमुख भूमिका औद्योगिक क्रांति और ग्रामीण सुधार की थी, जो व्यापक परिवर्तन व आवश्यक बदलाव लाए। वहीं इस्पात और सीमेंट की खोज ने उच्चतम व विशालतम निर्माण की संभावनाओं को सरल बनाया है।¹

वास्तुशास्त्र का इतिहास रूपांतरण एवं प्रयोग की विभिन्न प्रणाली के परिणामस्वरूप बना है। परंतु हमें इतिहास में से केवल उसमें प्रयुक्त बुद्धिमत्ता एवं सुदृढ़ परिणाम जो उत्कृष्ट कारीगरी हेतु उपयोग आया है, उससे मतलब है – किसी भी काल में हजारों वर्ष पूर्व जो वास्तुशिल्प प्रचलित था, उसमें धीरे-धीरे क्रमवार सुधार हुआ है। उससे वास्तुशिल्प की उन्नति होती गई, परंतु विश्व के अन्य भागों की अपेक्षा यह विधा भारतीय महाद्वीप में बहुत कम मात्रा में परिवर्तित हुई है। आज के युग में भी वास्तुशिल्प निर्माण हेतु पुरातन, शिल्प निर्माण विधि व नियमों का हमेशा ध्यान रखा जाता है, उसका उपयोग भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार किया जाता है।³

वास्तुशास्त्र के सिद्धांत प्रकृति के सिद्धांतों के साथ सामंजस्य और संतुलन बनाने के सिद्धांत हैं, इसलिये पुरातन काल से लेकर आधुनिक काल के विज्ञान तक उनकी प्रासंगिकता है। यही भारतीय वास्तु विद्या की महत्ता है।

श्लोक – विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भवः।

अपवर्गोऽसि भूतानां पशूनां परतः स्थितः ॥ 3 ॥ (महाशांति 47/85)⁴

हे विश्वकर्मन् ! यह संपूर्ण विश्व आपकी रचना है आप समस्त विश्व की आत्मा और उत्पत्ति स्थान हैं, तथा पंच-महाभूतों से परे होने के कारण नित्यमुक्त हैं, आपको मेरा नमस्कार है।²

1. प्रभु बाल गोपाल टी.एस., अच्युतन ए. / ए टैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या पृ. 6, 8, 9

2. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समराङ्गण सूत्रधार – भवन निवेश / प्रथम भाग / प्रथम अध्याय पृ. 18

3. आचार्य मृत्युंजय – वास्तुशास्त्र रेजीडेण्डियल, कॉमर्शियल, रेमेडियल पृ. 5

4. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका / वास्तुशास्त्र खंड - दो / पृ.

यह समस्त सृष्टि ही वस्तु है परंतु विश्वकर्मा के द्वारा वह वास्तु में परिणित हो गई, ब्रम्हा ने केवल मानसी सृष्टि की पुनः इस उबड़ खाबड़ जमीन को महाराज पृथु ने समीकृत कर भूतल पर आवास योग्य पुर ग्राम, भवन, पत्तन, प्रासाद आदि का निर्माण विश्वकर्मा से करवाया ।

वास्तु शब्द का साधारण अर्थ भवन या नगर है, वस्तु शब्द का व्यापक अर्थ 'धरा' है, अतः धरा पर निर्मित भवन, पुर, प्रासाद सभी वास्तु है पहले साधारण भवनों, ग्रामों, नगरों, का विन्यास एवं निर्माण प्रारंभ हुआ पुनः इस विन्यास की रचना-पद्धति में कालांतर में अतिरंजना के कारण अलंकृति चित्रण-प्राधान्य प्रारंभ हुआ तो वास्तु की सजधज शिल्प व चित्र से जगमगा उठी ।

हमारे प्राचीन शास्त्रों के अनुसार अपने मन में सर्वप्रथम विभिन्न कलात्मक रूपों की रचना करना और फिर उन्हें अपने हाथों द्वारा निर्मित करना एक विज्ञान है और इस विज्ञान को शिल्प रूप में जाना जाता है ।

शिल्पशास्त्र के अंतर्गत वास्तुशास्त्र अथवा गृहवास्तुशिल्प भी आता है, देवताओं और मानवों के आवास को 'वास्तु' कहते हैं । यह भूमि, प्रासाद, यान और शयन से मिलकर बनता है । वास्तु शब्द शिल्प की अपेक्षा अधिक प्राचीन है वास्तु शब्द ऋग्वेद में भवन के अर्थ में आया है, अतः वास्तु अर्थात् भवन से संबंधित शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं ।¹

चारों वेदों के समान चार उपवेद भी थे, उनमें स्थापत्य शास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र ये तीनों शब्द पर्यायवाची विवृत हुए । वास्तु शास्त्र के नि.लि. अंग हैं :- वास्तु, शिल्प तथा चित्र ये तीनों एक-दूसरे के उपकारक हैं ।

भारतीय साहित्य के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में स्थापत्य एवं वास्तु के उल्लेख मिलते हैं वैदिक सभ्यता से ज्ञात होता है कि स्वर्ग में राजा इंद्र के इंद्रासन का निर्माण देवताओं के वास्तुविद् विश्वकर्मा ने किया । भारत में सबसे पहले धार्मिक स्थलों यानी मंदिरों आदि से वास्तुकला जुड़ गई । धार्मिक वास्तु का प्रचलन बढ़ता ही गया, और इससे (वास्तु विन्यास) अवगत होने पर ही मनुष्य जाती ने भी अलग-अलग रहना छोड़कर सामूहिक रूप से सुरक्षित स्थलों पर जल आदि से आवेष्टित समतल धरातलों पर आवासीय संरचना बनाकर रहना आरंभ किया, वैदिक काल वास्तुकला का सबसे सम्पन्न और अनुकरणीय काल रहा है ।²

सिंधु घाटी की सभ्यता और हड़प्पा, मोहनजोदड़ो के प्राचीन भवन, आगार तारणताल और प्रासाद आदि के खंडहरों को देखकर आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है, कि सभ्यता के प्रथम

1. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका / वास्तुशास्त्र खंड - दो / पृ. 15

2. आचार्य मृत्युंजय - वास्तुशास्त्र रेजीडेंशियल, कॉमर्शियल, रेमेडियल पृ. 5

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.

चरण से ही वास्तुशास्त्र में इस युग के शिल्पी विद्वानों ने सर्वांगीण सफलता अर्जित कर ली थी। वैदिक काल में वास्तु का सीधा अर्थ होता था एक ऐसा घर या मकान या महल जो इसमें रहने वाले को सुख, आराम सुरक्षा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सभी शाखाओं का रसास्वाक्ष कराए।

वास्तु हमारी अंतश्चेतना के अस्तित्व का व्यक्त प्रतिरूप है, वास्तु परात्पर ब्रम्ह के सूक्ष्म रूप वास्तु पुरुष की विद्यमानता का प्रमाण स्तंभ है। मनुष्य इस रचना के समरूप होता है। इसका निमित्त और कारण वहीं सर्वव्यापी ब्रम्ह है कुल मिलाकर वास्तु और पुरुष हर दृष्टि से समरूप, समतुल्य और समेकित होते हैं।

ज्योमेट्री को भूमापन विज्ञान कहते हैं, यहीं विज्ञान अंतरिक्ष के आकाश और वहाँ के पिंडों पर भी लागू होता है, इसी के आधार पर वास्तु अभियोजना होती है जो पुरुष का प्रतिरूप मानकर की जाती है। वास्तु पुरुष मंडल के तीनों शब्द ब्रम्हांडीय, पराभौतिक और पार्थिव रचना के आयामों को समेकित कर धरापटल पर किसी भवन या मंदिर की अभियोजना करता है।

“सर्वकारणभूतः सृष्टा” अर्थात् प्रजापति ही वास्तुतः वास्तु पुरुष मंडल है। यह ब्रम्हांडीय विचार सिद्धांत है जिस पर वास्तुपुरुष मंडल रचना आधारित है।

2.2.2 वास्तु पुरुष की उत्पत्ति

श्लोक – किमपि किल भूतमभवद्ब्रुधानं रोदसी शरीरेण ।

तदमरगणेन सहसा विनिगृह्यधोमुखं न्यस्तम् ॥

यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रेव ।

तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥

(बृहत् संहिता)

प्राचीन काल में कोई अज्ञात नाम वाला प्राणी(मनुष्य)उत्पन्न हुआ, वह अपने विशाल शरीर से समूची पृथ्वी व आकाश को व्याप्त किये हुए था। विस्मयातुर होकर सब देवताओं ने उस नर को नीचे की ओर मुंह करके सहसा नीचे फेंक दिया। उसके शरीर को जिस भाग से, जिस देवता ने पकड़ा था, उस अंग का वही देवता मान लिया गया। अतः ब्रम्हा जी ने सकल देवता रूप उस पुरुष की कल्पना वास्तु पुरुष के रूप में की थी।¹

वास्तु शब्द सभी प्रकार के निर्माण का वाचक है, ‘वसन्ति प्राणिनो यत्र’ इस व्युत्पत्ति से निर्माण कार्य करने योग्य भूमि का नाम भी वास्तु है। वास्तु-विद्या बहुत अधिक प्राचीन है। इस विद्या को ब्रम्हा या शिव ने सबसे पहले गर्ग मुनि को बताया था, गर्ग से पाराशर ने इसे प्राप्त किया। पाराशर ने तब

1. मिश्र डॉ. सुरेश चंद्र, बृहत् संहिता – उत्तरार्ध अध्याय- 52 पृ. 54

ब्रह्मद्रथ को बतलाया और उससे इस विद्या को विश्वकर्मा (देवशिल्पी) ने प्राप्त किया था। विश्वकर्मा ने इस विद्या को अनेक लोगों को समझाया था। विश्वकर्मा ने इस विद्या के आदि देव शम्भु हैं, ऐसा कहा है।

इसी वास्तुपुरुष के शयनाकार स्थिति के अनुसार वास्तुशास्त्र का निर्माण हुआ, इसका अभिप्राय: यह है कि अधोमुख वास्तुपुरुष के शरीर में शिख्यादि देवों का स्थापन किया जाता है, किंतु पूजाकाल के समय उत्तान देव का स्मरण करना चाहिये। गृहकर्म में इक्यासी एवं प्रासाद(मंदिर एवं राजमहल) कार्य में चौसठ कोष्ठात्मक वास्तु मंडल निर्माण तथा पूजा का विधान है इसी कारणवश विश्वकर्मा ने सबसे पहले भवन के चित्रांकन एवं निर्माण की विधि को प्रकट किया, जिसे वास्तुकला कहते हैं।

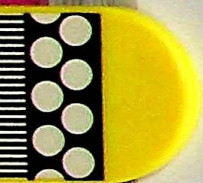
वास्तुपुरुष की स्थापना एक मंडल में की जाती है। यह मण्डल निवेश्य भूमि का तादाम्य है। वास्तुपुरुष की परिकल्पना और उसके समस्त शरीर का विभाजन निर्माणाधीन भवन विन्यास की योजना के अनुसार किया जाता है। वास्तुपुरुष-मंडल इस समस्त भूमंडल के समान चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ रखता है, साथ ही यह मंडल वर्गों में विभाजित होता है। जैसे $9 \times 9 = 81$ पद, $8 \times 8 = 64$ पद आदि एवं इन वर्गों पर देवताओं का वास होता है।

2.2.3 देवताओं के नाम – चौकोर क्षेत्र के विभिन्न खंडों में स्थित देवताओं की संख्या 45 है जो निम्न है – 1. ईश 2. पर्जन्य 3. जयंत 4. महेन्द्र 5. आदित्य 6. सत्य 7. भृश 8. अंतरिक्ष 9. अग्नि 10. पूषा 11. वितथ 12. ग्रहक्षत 13. यम 14. गन्धर्व 15. भृंगराज 16. भृग 17. पितृदेव 18. दौवारिक 19. सुग्रीव 20. पुष्पदंत 21. वरुण 22. असुर 23. शोष 24. रोग 25. वायु 26. नाग 27. मुख्य 28. भल्लाट 29. सोम 30. सर्प 31. अदिती 32. दिती 33. आप 34. आपवत्स 35. सविन्द्र 36. साविन्द्र 37. इन्द्र 38. इन्द्रराज 39. रुद्र 40. रुद्रजय 41. भूधर 42. महीधर 43. विवस्वान् 44. मित्र 45. अर्यमा एवं मध्य में ब्रम्हा का स्थान माना गया है।

इन प्रत्येक वर्गों में (81, 64) में कोई न कोई अधिश्वर देव स्थित है, बहुत से देव एक से अधिक पदों के मालिक हैं, जैसे 81 पद-वास्तु में केन्द्रीय देवता ब्रम्हा 9 पद के भोग का भागी है। उसी प्रकार मित्र, वरुण आदि 6-6 पदों के भागी है।

1. मिश्र डॉ. सुरेश चंद्र, बृहत् संहिता – उत्तरार्ध अध्याय – 53 पृ. 580

2. वास्तुलिविंग पृ. 43



... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

एकशीति पद वारस्तु -

क्षेत्र के चौकोर होने पर उसका नौ- नौ (9 x 9) हिस्सों में विभाग करना चाहिए। मध्य में नौ, पदों, महाधुतिशाली ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करनी चाहिए उसके बाद पूर्व दिशा में छः पदों से अर्यमा का निवेश निहित है। आग्नेय कोण (दक्षिण-पूर्व) में सवित्र और सावित्र इन दोनों देवों को दो-दो पदों पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। ब्रह्मा से दक्षिण की ओर अर्थात् दक्षिण दिशा में छः पदों से विवस्वान् का निवेश अभिष्ट है। पुनः नैऋत्य कोण (दक्षिण-पश्चिम) में जय तथा इंद्र को दो-दो पदों से छः पदों से मित्र की स्थापना और वायव्य कोण (उत्तर-पश्चिम) में दो-दो पदों से यक्ष्मा और रुद्र इन दोनों की स्थापना से प्रतिपादित है अब उत्तर दिशा में छः पदों से निश्चल पृथ्वीधर शेषनाग की प्रतिष्ठा एवं ईशान्य कोण में दो-दो पदों से आप आपवत्स की प्रतिष्ठा विहित है। अब बाहर के देवों का कथन इस प्रकार है पूर्व से उत्तरादि तक उनका प्रदक्षिणा स्थान समझना चाहिए।¹

1. अग्नि, 2. पर्जन्य, 3. जयंत, 4. इंद्र, 5. सूर्य, 6. सत्य 7. भृश 8. नभ 9. अनिल 10. पूषन् 11. वितथ, 12. ग्रहक्षत, 13. यम् 14. गंधर्व 15. भृंगराज, 16. मृग 17. पितृगण 18. दौवारिक. 19. सुग्रीव 20. पुष्पदंत 21. जलेश्वर. 22. असुर 23. शोष 24. पापयक्ष्मा 25. रोग, 26. नाग, 27. मुख्य, 28. भल्लार, 29. सोम, 30. चरक, 31. अदिती 32. दैत्यमाता ये पद देवता कहे गये हैं। अग्नि वायु पितृगण तथा व्याधि इनके क्रमशः बाहर की और चरकी, विदारी, पापराक्षसी और पूतना भी पद-देवता हैं। इनका केवल स्थान कहा गया है। इन्हें पद भोग नहीं है। बाहर स्थित देवताओं के आठ पद-योग कहे हैं ये वारस्तु क्षेत्र दो-दो पदों पर होते हैं। 1. जयंत 2. भृश, 3. वितथ 4. भृंग 5. सुग्रीव 6. शोष 7. मुख्य 8. अदिति इनसे जो देवता रह जाते हैं वे केवल एक पद के भोगी हैं। इस प्रकार के इक्ष्वासी पद में देवताओं का पदक्रम कहा गया है।²

1. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समरांङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग /अध्याय- 14 पृ. 70
2. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका /वारस्तुशास्त्र खंड -दो /पृ. 2,41,45,46
3. मिश्र डॉ. सुरेश चंद्र, बृहत् संहिता - उत्तरार्ध अध्याय- 53 पृ. 580

एकशीती पद
वास्तुपुरुष मण्डल
 $9 \times 9 = 81$

वा.	रोग	नाग	भु	भल्लाट	सोम	चरक	आदिति	दिति	अग्नि	ई.
	पापयक्ष्मा	रुद्र	मृ	पृथ्वीधर				आप	पर्जन्य	
	शोष		सज्ज					वत्स	जयन्ते	
			यक्ष्मी							
	असुर						म		इन्द्र	
	वरुण	सि			ब्रह्मा		रु		रवि	पू.
प.	पुष्पदंत				$3 \times 3 = 9$		क		सत्य	
		सुग्रीव	जय		विवस्वान्		सवितृ	भृ श		
	दौवारिक	इन्द्र						सवित्र	नभ	
	पितृगण	मृग	सं		गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वि	पूषा	अनिल
नै.										आ.

देवता संख्या
नवपदिक - 1
षट्पदिक - 4
द्विपदिक - 8
एक पदिक - 32

45

पद संख्या
 $1 \times 9 = 9$
 $4 \times 6 = 24$
 $8 \times 2 = 16$
 $32 \times 1 = 32$

81

चौसठ-पद वास्तु -

चौसठ कोष्ठकों का क्षेत्र बना लें अर्थात् 8-8 रेखाएं खड़ी व आड़ी खींचें। कोनों से तिरछी रेखा तीन कोष्ठको को घेरती हुई खींचें इसमें चतुस्पद ब्रम्हा बीच में स्थित होते हैं। बाहरी कोनों में अर्धपद 8 देवता रहते हैं, शेष देवता द्विपद होते हैं।

चौसठ पद वास्तु वास्तुपुरुष मण्डल

$$8 \times 8 = 64$$

उ.

प्रापयस्मा	शुक्र						दक्षि
शोष	नागा	मुख्य	भल्लाट	सोम	चरक	आदिति	अग्नि
असुर	राजयक्ष्मा	पृथ्वी धर	आप	आपवत्स	जयन्त		
वरुण		ब्रह्मा			इन्द्र		
पुष्प	दंत	मि	2 X 2 = 4	अर्यमा	रवि		
सुग्रीव	इन्द्र	जय	विवस्वान्	सवितृ	सत्य		
दौवारिक	भृङ्गराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ	भृश	
पितृ	रुद्र				पूषा	अग्नि	

देवता संख्या

चतुष्पदिक - 1

द्विपदिक - 20

अध्यर्धपदिक - 8

अर्ध पदिक - 16

45

देवता संख्या

1 X 4 = 4

20 X 2 = 40

8 X 1 = 12

16 X 1/2 = 8

64

शत-पद-वास्तु -

क्षेत्र के चौकोर बना देने पर, फिर उसके दस-दस भाग करने पर सौ (100) पद वाला वास्तु बनता है। शत-पद-वास्तु के मध्य में सोलह पदों में पितामह ब्रम्हा का स्थान बताते हैं। वहीं पर, उन्हीं के पास आठ पद का अर्यमा भोग करते हैं। अर्यमा की तरह विवरवान, मित्र और शेष का भी विद्वानों के द्वारा यही भोग कहा गया है, अर्थात् ये चारो वेद 8-8 पद वाले देवता हैं। सवित्रादी, आपवत्स जिन देवताओं का यहाँ पर उल्लेख नहीं किया जाता, उन देवों का इक्यासी पद वाले वास्तुके समान यहाँ पर भी एक एक पद का भोग कहा गया है। 1. अग्नि 2. अंतरिक्ष 3. पवन 4. मृग 5. क्षय 6. पितर 7. रोग 8. अदिति - ये 8 देवता डेढ़ डेढ़ (11/2) पद को भोगी होते हैं। पर्जन्यादि अदिति-पर्यंत जो चौबीस देवताओं का कथन किया गया है वे दो-दो पद वाले होते हैं और बाकी पहले ही प्रसधित हैं।

शत पद वास्तु

वास्तुपुरुष मण्डल

10 X 10 = 100

वा.

उ.

ई.

रोग		मुख्य	भल्लाट	सोम	चरक		द्विति
पापयक्ष्मा	रुद्र	पृथ्वी धर				आदिति	आप वत्स
शोष	राज यक्ष्मा					आप	पर्ज न्य
असुर	प.	ब्रह्मा 4 x 4 = 16				मृ	जयन्त
वरुण							इन्द्र
पुष्पदंत							रवि
सुग्रीव							सत्य
दौवारिक	जय	विवस्वान्				सावितृ	भृ श
इन्द्र	मृग		सावित्र	अनिल			
		गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ		

नै.

द.

आ.

देवता संख्या

षोडशपदिक - 1

अष्टपदिक - 4

द्विपदिक - 8

अध्यर्धपदिक - 8

एक पदिक - 32

45

पद संख्या

16 x 1 = 16

8 x 4 = 32

2 x 8 = 16

1^{1/2} x 8 = 12

1 x 24 = 24

100

2.2.4 वास्तुपुरुष की अवस्थाएँ – वास्तुपुरुष की 3 अवस्थाएँ होती हैं ।

1.चर 2.स्थिर 3.नित्य

चर वास्तु वर्ष के 12 माह में वे अपनी दिशाएँ इस प्रकार बदलते हैं –

अवस्था	दृष्टिदिशा	मास
1.चर वास्तु	दक्षिण	भाद्रपद + आश्विन + कार्तिक (अगस्त से अक्टूबर)
	पश्चिम	मार्गशीर्ष + पौष + माघ (नवंबर से जनवरी)
	उत्तर	फाल्गुन + चैत्र + वैशाख (फरवरी से अप्रैल)
	पूर्व	ज्येष्ठ + आषाढ़ + श्रावण (मई से जुलाई)

स्थिर वास्तु – वास्तुपुरुष मंडल में प्रदर्शित वह अवस्था है जब वे हमेशा अपना सिर ईशान कोण में ही रखते हैं, स्थल योजना स्थिर वास्तु के विचार से ही बनती है। निर्माण योजना ढाल, दरवाजे, खिड़की आदि का विचार स्थिर वास्तु से ही किया जाता है।

नित्यवास्तु – वास्तुपुरुष की पूजा भवन रचना के तीन चरणों में अवश्य ही करना चाहिये। प्रथम भूमिपूजन और शिलान्यास के समय, मध्यपूजा जब भवन का मुख्यद्वार स्थिर किया जाना हो तथा अंतिम पूजा भवन बन जाने के पश्चात गृहप्रवेश के अवसर पर।

वास्तुशास्त्रानुसार द्वार उसी दिशा में रखना चाहिये जहाँ स्थिर वास्तुपुरुष की दृष्टि हो। गृह प्रवेश उसी द्वार से होना चाहिये, परंतु तब जब चर वास्तु दृष्टि उसके ठीक विपरीत दिशा में हो। शिलान्यास, नींव, प्रवेश द्वार स्थापना आदि के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उस समय वास्तुपुरुष जागृत है या नहीं। उनके जागृत अवधि में भवन निर्माण कार्य प्रारंभ करना उचित है। सुप्तवास्तु में भवन निर्माण कार्य प्रारंभ करना हानिकारक हो सकता है।

ज्येष्ठ (मई-जून) मृत्यु भय

आश्विन (सितंबर-अक्टूबर) अनावश्यक संघर्ष, कलह, शत्रुता

मार्गशीर्ष (नवंबर-दिसंबर) अनेक प्रकार के भय

पौष (दिसंबर-जनवरी) अग्निकांड, दुर्घटना, घाटा होने का भय ¹

1. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका / वास्तुशास्त्र खंड - दो / पृ. 55

जागृत वास्तु में निर्माण अवधि -

वैशाख (अप्रैल-मई)

श्रावण (जुलाई-अगस्त)

कार्तिक (अक्टूबर-नवंबर)

माघ (जनवरी-फरवरी)

फाल्गुन (फरवरी-मार्च)

वास्तु पुरुष उसी सर्वव्यापी वैश्विक चेतना का प्रतिरूप है जिससे सब कुछ बनता है और उसी में फिर विलय हो जाता है। व्यक्त और अव्यक्त साकार और निराकार सब कुछ वही एक ब्रम्ह हैं। उपनिषद में कहा है -

“कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञानं भवतीति”

(मुंडकोपनिषद 1-1-3)

अर्थात् उस एक ब्रम्ह को जान लेने से उन सबका ज्ञान अपने आप हो जाता है जो इस विश्व में है और कहीं नहीं है। बार-बार प्रयोग और परिणाम की विधि से वास्तुशास्त्र की शब्दावली और उसमें अंतर्निहित दृष्टि को समझा नहीं जा सकता।

- विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

- विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

(हृदय-त्रिपुरं) हृदयं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं विष्णुः शरीरं मे हृदयं च त्रिपुरं

2.3 वास्तु के प्रवर्तक आचार्य एवं मुख्य ग्रंथ

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्चः विश्वकर्मा मयस्तथा ।

नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः

ब्रम्हाकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एवं च ।

वासुदेवो अनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पतिः

अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः ॥ ॥

संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा ॥4॥

(मत्स्य पुराण, अध्याय-252)

मत्स्यपुराण की सूची में अठारह वास्तुशास्त्रोपदेशकों की गणना की गई है। जिसमें भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरंदर, ब्रम्हा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र, बृहस्पति ये अठारह वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक कहे गए हैं।¹

वास्तुशास्त्र के प्रथम प्रवर्तक देवताओं के वास्तुविद विश्वकर्मा हैं। ब्रम्हा ने संसार का प्रारूप बनाने का समस्त भार राजा पृथु को सौंपा था। राजा पृथु के अनुरोध पर संसार के निर्माण हेतु ब्रम्हा ने विश्वकर्मा को नियुक्त किया था, जिन्होंने देवपुरियों का निर्माण किया था। जिन अष्टादश वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों का संकेत है उनमें प्रायः सभी वैदिक कालीन ऋषि अथवा प्रख्यात देव पुरुष हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय स्थापत्य परम्परा में दो बड़े प्रख्यातनामा स्थापित मिलते हैं - विश्वकर्मा तथा मय। मय को असुर कहा जाता है। महाभारत में मय दानव नामक एक महा-ख्याति के वास्तु कौशल की बड़ी प्रशंसा की है, उसने ही पाण्डवों के सभा भवन का निर्माण किया था। मय ने असुरों के आचार्य शुक्र से दीक्षा ली थी। आसुरी वास्तुकला अत्यंत प्राचीन है। ब्राम्हण ग्रन्थों में नागों का निर्देश मिलता है, नाग अत्यंत तक्षण-कुशल थे, नग्नजित उनका राजा था नग्नचित के द्वारा रचित "चित्र-लक्षण" भारतीय चित्रकला का अत्यंत प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इससे भारतीय स्थापत्य की प्राचीनता का पता चलता है। वास्तु के आदि प्रवर्तक के रूप में विश्वकर्मा को ही विश्व का प्रथम रचियत कहा गया है।²

2.3.1 आर्विभाव एवं परिवार :- वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा सभी पुराणों में विश्वकर्मा अरुणवसु प्रभास का पुत्र बताया गया है, इनकी माता देव गुरु बृहस्पति की बहन आंगिरसी (वरस्त्री) थीं। इनका विवाह प्रह्लाद की पुत्री से हुआ। इनके पुत्र हुए 'सन्निवेश' और 'विश्वरूप'। विश्वकर्मा

1. त्रिपाठी रामप्रताप शास्त्री, मत्स्य पुराण - 252, पृ 426

2. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका / वास्तुशास्त्र खंड - दो / पृ. 56

3. महाभारत - 1, 51, 15

की चार पुत्रियाँ थी- प्रथम संज्ञा जो सूर्य विवस्वान की पत्नी बनी। उपर्युक्त दो पुत्रों के अतिरिक्त नल और वृत्रासुर का उल्लेख मिलता है। नल तो भगवान श्री राम के सेनानायक बने और समुद्र में सेतु बाँधने का कार्य किया। सन्निवेश ने वास्तुविद्या संबंधी सम्पूर्ण ज्ञान पिता से सीखा था।

विश्वकर्मा के पिता प्रभास वसु अपने आठ भाइयों में सबसे छोटे थे। इनके पिता सात बड़े भाई धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनल, अनिल, प्रत्यूष एवं आठवे स्वयं प्रभास ये सभी भाई दैवीय शक्तियों और विद्याओं के निष्णात पूर्णकालिक आचार्य देव थे। धर = पृथ्वी के भूगोल और भूमापन विद्या के अग्रणी, सोम-आकाश यानों से चंद्रलोक एवं अन्य ग्रहों के वैज्ञानिक, अहः-अंतरिक्ष यात्राएँ करने वाले प्रथम अंतरिक्ष यात्री, अनल-अग्निदेवता, अनिल-वायु, प्रत्यूष-जीवन एवं रसायन शास्त्री थे। स्वयं प्रभास वास्तुशास्त्री शिल्पी थे, जिसे उन्होंने अपने पुत्र विश्वकर्मा को पढ़ाया। विश्वकर्मा के नाती थे मनु जिनसे मानव की मैथुनी सृष्टि बनी अर्थात् मनु संज्ञा और सूर्य की प्रथम संतान थे।²

विश्व के प्रथम अभियंता:-भगवान विश्वकर्मा एक आदर्श एवं उच्चकोटी के शिल्पी ही नहीं वरन् विश्व के प्रथम अभियंता (इंजीनियर) तथा शिल्पी शास्त्र के ज्ञाता थे। निर्माण के प्रथम आचार्य विश्वकर्मा की कृतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं तथा भगवान श्रीकृष्ण की द्वारिका के निर्माता विश्वकर्मा ही थे। इन्द्र की राजधानी अमरावती, धर्मराज युधिष्ठिर का सभाभवन और संपूर्ण इन्द्रप्रस्थ नगर की रचना विश्वकर्मा ने की थी।¹

विश्वकर्मा सृजन के आदि देव माने जाते हैं, जिन्होंने अपने महानतम् कर्म से स्वर्णिम इतिहास की रचना की। विश्वकर्मा वैदिक देवता हैं, वेदों में इनके महनीय और उदात्त चरित्र का वर्णन हुआ है, प्राचीन ग्रन्थों में विश्वकर्मा को प्रजापति, शिल्पी, त्रिदशचार्य आदि नामों से पुकारा है, जिससे स्पष्ट होता है कि विश्वकर्मा शिल्प एवं वास्तुविद्या के अधिष्ठाता तथा निर्माण एवं सर्जना के देवता हैं।

जैसे:- हरि अनंत हरि कथा अनंता है, वैसे ही विश्वकर्मा अनन्त विश्वकर्मा कृति अनन्ता है।¹

विश्वकर्मा उवाच- “वास्तु शास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया”

“मय शिल्पम्” और “मयमतम्” शिल्प कलाशास्त्र के अप्रतिम ग्रंथ हैं, इन ग्रंथों का उल्लेख भारत में प्राचीन काल से हो रहा है। वेदों से लेकर इतिहास पुराणों, ग्रंथों में मय द्वारा निर्मित आश्चर्यजनक यंत्रों, विमानों, ग्राम, नगर एवं प्रासादों तथा विभिन्न विचित्र उपस्करों और उपकरणों का रोचक वर्णन मिलता है। प्राचीन ऋषियों ने भी मय की कला एवं विज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की

1. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका /वास्तुशास्त्र खंड -दो /पृ. 60

2. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समराङ्गण सूत्रधार -भवन निवेश/प्रथम भाग /प्रथम अध्याय पृ. 4

है। रावण मय का दामाद था। रावण की पत्नी मंदोदरी मय की पुत्री थी, रावण की लंका का निर्माण कार्य मय ने ही कराया था। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के लगभग पचास अध्यायों में मय करी वास्तु शिल्प कला का मनोहारी ढंग से वर्णन किया है। रामचरित मानस में भी तुलसीदास जी ने लंका के वर्णन में कहा है :- “बरनि न जाइ बनाव”

देवता और मानवी राजवंशों ने भी मय की सेवाएँ लीं थीं। युधिष्ठिर की राजधानी इंद्रप्रस्थ की सभा का निर्माण मय ने विश्वकर्मा के साथ मिलकर किया था। जल-वायु-विद्युत-अणुशक्ति, प्रकाश किरणों का ऊर्जा उपयोग मय की विद्या के प्रमुख अंग थे। देखा जाए तो मय विश्वकर्मा के समकालीन होने के कारण प्रतिद्वंदी भी थे। विश्वकर्मा निर्माणोन्मुख थे तो मय दानव और असुरों के बीच रहने के कारण सत्ता और भोग के लिए संघर्षोन्मुख थे। उन दिनों देवों और दानवों के बीच संघर्ष चलते ही रहते थे। शंकर जी मय की सहायता करते थे और भगवान विष्णु देवताओं की।

मय और विश्वकर्मा दोनों ही वास्तुशिल्पियों और वैज्ञानिकों की परम्पराएँ थीं जो वैदिक काल से मध्य प्राचीन युग तक निर्बाध चलती रहीं।

वाल्मीकि रामायण में मय के अपौरुषेय रहस्यात्मक शिल्प कौशल की प्रशंसा की गई है कि मय शिल्प का वर्णन करने के लिए शब्द नहीं है। उन्हें कालविज्ञानी कहा गया और मूल “सूर्य सिद्धांत” के रचनाकार के रूप में उनकी अभ्यर्थना की गई है। काल और समष्टि की प्रथम परिभाषा मय ने ही दी है। अव्यक्त उर्जा की अभिव्यक्ति का वास्तुविज्ञान उन्होंने ही सर्वप्रथम दिया। “मूल उर्जा प्रकम्पित होकर काल और समष्टि में परिवर्तित होती है जो अंततः त्रि-विमीय दृश्य और श्रव्य आकारों को ग्रहण करती है।

एक शब्द में भवन-निवेश मानव सभ्यता और संस्कृति के निर्धारण में एक प्रमुख साधन है। ऋग्वेद के समय से यहाँ के मानव की सबसे बड़ी जिज्ञासा भूतल से उठकर अंतरिक्ष तक गई। इस ग्रंथ में हमें ऋग्वेद के देवता तत्व पर विचार नहीं करना है केवल यहाँ भारतीय संस्कृति का मूलाधार देव तत्व है। उसी देव तत्व में देव और असुर, आर्य और अनार्य आदि प्राचीनी जातियों के भी संकेत हैं, इस देश का कोई भी कार्य बिना दैवी कल्पना के प्रारंभ नहीं किया गया। नृत्य में नटराज (शिव) संगीत में नाद ब्रम्ह, आलेख्य में (जगन्नाथ के पट चित्र), वास्तु में (वास्तु ब्रम्ह) सर्वत्र ही देव-भावना अनुस्यूत है। यही भारतीय स्थापत्य की विशेषता है।

2.3.2 वास्तुशास्त्र के ग्रंथ

वेद :- ऋग्वेद प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें अर्चा वास्तु (यज्ञ, शाला, वेदि आदि) तथा लौकिक वास्तु (गृह, पुर आदि) का निर्माण वर्णित है। अथर्ववेद में भी वास्तुशास्त्र के उल्लेख मिलते हैं वरन् स्थापत्यवेद अथर्ववेद का ही उपवेद है।¹

<u>पुराण:-</u>	स्कंद पुराण	-	नगर रचना
	अग्नि पुराण	-	निवास वास्तुरचना
	वायु पुराण	-	उंचाई पर स्थित देव स्थान
	गरुड़ पुराण	-	निवास स्थान तथा मंदिर
	नारद पुराण	-	कूप, जलाशय तथा मंदिर
	मत्स्य पुराण	-	शिल्पकाम, प्रसादमंडप, स्तंभ

अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ:- मानसार, मयमतम्, विश्वकर्मा प्रकाश, बृहत्संहिता, वास्तु राजल्लभ, मनुष्यालयचंद्रिका, समरांङ्गण सूत्रधार, शिल्प रत्न, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र।²

राजा भोज द्वारा रचित "समरांङ्गण सूत्रधार" वास्तुशास्त्र की अनुपम कृति है।

1. तारखेडकर ए.आर., वास्तुशास्त्र पृ. 27

2. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समरांङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग /प्रथम अध्याय पृ. 3

2.4 वास्तुशास्त्र का व्यापक क्षेत्र - सृष्टि, भूगोल और सौरमंडल

अनल, अनिल तन उम्दासी, आदि सृष्टिका है वासी ।
 सहस्र अरुण रुचि कमलाक्षी, सकल विश्वका है साक्षी ॥
 रूप गंध अरु रस-कारी, अमित तेजमय छबिधारी ।
 देव ब्रम्हमय है सब जगका, पूज्य सकल सुर-नर-मुनि जनका ॥
 जलचर, थलचर, नभचर प्राणी, सबका ही वह जीवनदानी ।
 विष्णु सनातन नित नभगामी, अप्रतिमरूप रवि अग-जग स्वामी ॥

(कल्याण)¹

एक अंग्रेजी कहावत के अनुसार (Man does not live on bread alone) "मनुष्य केवल रोटी से ही जिंदा नहीं रहता है" उसे अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए कुछ और चाहिए। इसमें उसका संपूर्ण परिवेश जीव, ब्रम्हाण्ड तथा ब्रम्ह सभी आते हैं। पुनश्च जीव और ब्रम्हाण्ड की प्रकृति में पर्याप्त समानताएँ हैं इस उद्देश्य से भी यह मीमांसा समीचीन है।¹

आकाश में उन पिण्डों को सौरमंडल कहा जाता है, जिनका संबंध सूर्य से है। ये सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। इन्हें ग्रह कहा जाता है। इनमें से पृथ्वी भी एक ग्रह है, चूंकि पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है, जिसका उत्तर और दक्षिण ध्रुव है, इसी प्रकार सूर्य की जीवनदायी ऊर्जा हमें पूर्व से उगने वाले सूर्य से मिलती है, जो पश्चिम में डूबता है, सूर्य उगता या डूबता नहीं बल्कि पृथ्वी अपनी दैनिक और वार्षिक गति से घूमती है जिसके कारण सूर्य का उगना और डूबना प्रतीत होता है तथा ऋतुओं में परिवर्तन होते हैं, इस प्रकार चुम्बकीय और ऊर्जा प्रभावों का विचार चार दिशाओं से होता है।

चार दिशाओं के बीच-बीच में चार कोण होते हैं, उनका भी वास्तुरचना में विचार होता है। वास्तुपुरुष का मुख भी साल में चार बार घूम जाने की बात पृथ्वी की वार्षिक गति से समझना चाहिए प्रत्येक भूखंड में वास्तु देव पदविन्यास का विचार भी इसी प्रकार किया गया है।³

सृष्टि के आदि चरण में सभी जीव जन्तु एक दूसरे के भोज्य पदार्थ थे। कालान्तर में पृथ्वी पर वनस्पति, अन्न और फल आदि के विकसित होने पर मनुष्य जाति में संस्कार और संगठन की भावना का विकास हुआ।²

1. तिवारी नथुनी जी, कल्याण- सूर्यांक वर्ष 1979, पृ. 274

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र रेजीडेंशियल, कॉमर्शियल रेमोडियल पृ. 19

3. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समराङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग/प्रथम अध्याय पृ. 12

सुखी, शांत और सुरक्षित जीवन के अनेक आधारों में नगर रचना तथा गृह रचना है जिसमें मनुष्य रहते हैं। हम धरती पर घर बनाते हैं पृथ्वी को हम माता मानते हैं जो हमें धारण करती है। पृथ्वी हमारे सौरमंडल की निर्जीव नहीं सजीव ईकाई है। जिससे जीवन बहुदिश-बहुविध फल रहा है। ऐसा ग्रह हमारे सौरमंडल में एक ही है।

सागरों से घिरे भूस्थलों में ऊँचे पर्वत, गहरी घाटियाँ, मैदान और पठार हैं जो नदियों की नसों द्वारा तथा धाराओं और झीलों के जाल द्वारा जीवन से अनुप्राणित हैं। पृथ्वी के ऊपर और सतह के नीचे विभिन्न मात्राओं में मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ हैं, जो भूमि को उपजाऊ तथा जीवन को संपन्न बनाते हैं। पृथ्वी द्वारा झुकी हुई धुरी पर सूर्य के चारों ओर घूमने के कारण मौसम या ऋतुएँ होती हैं, जो फसलों और वनस्पतियों के लिए आवश्यक हैं। कोई स्थान ठंडा है या गरम है, यह उसकी भूमध्य रेखा से सापेक्ष दूरी तथा समुद्र की सतह से ऊँचाई पर निर्भर करता है।

प्राचीनकाल से विभिन्न सभ्यताओं को सूर्योपासना विधि के बारे में ज्ञान था। सूर्य पूरे विश्व को प्रकाशित करता है, और इस संसार के जीवन को चलाता है। हमारे प्राचीन वास्तुशास्त्र की नींव इस रीति से डाली गई है कि भवनों में रहने वालों को सूर्य किरणों और सूर्यताप, ऊर्जा, प्रकाश, अल्ट्रावॉयलेट किरणों का अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। सूर्य की किरणें विटामिन डी का एकमात्र विश्वसनीय स्रोत हैं जो कि पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य किरणों में सात रंग (VIBGYOR) होते हैं और उनका मानव शरीर पर अत्याधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उनसे अनेक रोगों को दूर किया जा सकता है।

पूर्व दिशा अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रातः काल की सूर्य किरणों में प्रकाश अधिक और ताप कम होता है। अतः वह सर्वाधिक लाभदायक है दोपहर में पश्चिम की ओर जाते हुए सूर्य की गर्मी या ताप बढ़ जाता है और इससे इन्फ्रारेड किरणें निकलती हैं, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायन का भी बहुत वैज्ञानिक महत्व है क्योंकि उत्तरायण में दिन का समय रात्रि के समय से अधिक होता है, जिससे सूर्य का प्रकाश अधिक होता है। इसके साथ ही वास्तुशास्त्र के कार्य में विषुवों के अयन का भी ध्यान रखा जाता है (विषुव वह समय जब सूर्य भूमध्य रेखा को पर करते हुए रात दिन का समय समान कर देता है 21 मार्च एवं 23 सितंबर के दिन) प्राचीन परंपराओं के अनुसार सभी महत्वपूर्ण समारोह जैसे विवाह, गृह प्रवेश आदि उत्तरायण में किये जाते हैं और ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह समय मनुष्य की मृत्यु तक के लिए पवित्र होता है (महाभारत के महान भीष्म पितामह ने बाणों की शय्या पर लेटे हुए अपनी मृत्यु के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा की थी)।

इन्ही सब कारणों से वास्तुशास्त्र में यह विधान किया गया है कि पश्चिम और दक्षिण की तुलना में पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर अधिक खुले स्थान छोड़े जाएँ। यह भी निर्धारित किया गया है कि पूर्व तथा उत्तर की दिशा में भूमि के स्तर को अधिक नीचा बनाया जाए और किसी भी प्रकार के अवरोध या रुकावट जैसे बड़े शिलाखंड, टीले, उंची इमारतें, अहाते की उंची दीवार आदि को नहीं रखा जाए।

2.4.2 वर्ण :- 'मनुस्मृति' के अनुसार सभ्य मनुष्य समाज के कुछ नियम बनाए गए हैं, जिसमें सोलह संस्कार पैदा होने से मृत्युपर्यन्त निर्वाह करने जरूरी हैं, यह सब बाद में धार्मिक क्रियाओं में समाहित हो गया इन्ही संस्कार के वशीभूत होकर चार प्रकार के वर्ण व्यवस्था निर्धारित हुई जो उसे कर्म यानी व्यवसाय के अनुकूल प्राप्त हुई— ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

“गीता” जैसे अद्भुत रहस्यमयी शास्त्र में भगवान ने समस्त संसार को अपने ही गण स्वरूप का एक प्रारूप कहा है, जैसा ब्रम्हाण्ड वैसा ही पिण्ड के अंदर है बाद में ऋषि मुनियों एवं देवजों की विशिष्ट योग दृष्टि ने हमें नक्षत्र, तारों और ग्रह मण्डल के बीच तारतम्य करके एक नई व्यवस्था दी अर्थात् बौद्धिक मनुष्य ही नहीं बल्कि सभी प्रकार के जीव चाहे अण्डज हो या स्वेदज, जरायुज हो या उद्भिज—अपने रहने – बढ़ने, फलने फूलने, विकास के लिए एक सुरक्षित स्थान, आवास यानी घर की इच्छा रखते हैं। यही कामना मानव जाति को वास्तुशास्त्र की प्रारंभिक कल्पना की ओर ले जाती है, जिसका आरंभिक संकेत बना सूर्य। सूर्य से ही पृथ्वी के पूर्व, पश्चिम और उत्तर, दक्षिण आदि प्रमुख दिशाओं का ज्ञान हुआ।

भगवान सूर्य तेजोमयी किरणों के पुञ्ज हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं संपूर्ण विश्व के नेत्र हैं तथा स्थावर जङ्गम सबके अन्तर्धामी एवं संपूर्ण विश्व की आत्मा है। वे सूर्य, आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष इन तीनों लोकों को अपने प्रकाश से पूर्ण व्याप्त करते हुए आश्चर्यरूप से उदित हुए। यह भी कहा गया है कि—

‘सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा’

(सूर्य उपनिषद्)

सूर्य ही समस्त देवताओं की आत्मा है। सूर्य के द्वारा ही संसार के समस्त जड़ चेतन—जगत् को जीवन शक्ति और प्राण शक्ति प्राप्त होती है अतः सूर्य को प्राणिमात्र का प्राण कहा गया है।

आज तो विज्ञान भी मुक्त कंठ से स्वीकार करता है कि सूर्य पृथ्वी से नौ करोड़ मील दूर

1. तिवारी नथुनी जी, कल्याण— सूर्यांक वर्ष 1979, पृ. 288

2. राव डी. मुरलीधर, वास्तुशास्त्र एवं भवन निर्माण पृ. 17

आज तो विज्ञान भी मुक्त कंठ से स्वीकार करता है कि सूर्य पृथ्वी से नौ करोड़ मील दूर रहे पर यह उसी की कृपा है कि सारी सृष्टि, सारा जगत जीवित है। सूर्य न हो तो पृथ्वी ही ना रहे। वनस्पति ना रहे और न रहे कोई जीव-जन्तु या प्राणी ही।¹

2.4.2 ग्रह:- सूर्य के चारों ओर अपने-अपने अक्ष में घूमने वाले आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते हैं ये अपनी धूरी पर भी चक्कर लगाते हैं। ये आकाशीय पिण्ड गर्म नहीं होते न ही इनमें प्रकाश होता है। नौ ग्रह जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं उनका वर्णन उस प्रकार है।²

क्र.	ग्रह का नाम	रंग	दिशा
1	पृथ्वी	विभिन्न रंग	-
2	सूर्य	लाल	पूर्व
3	बुध	हरा	उत्तर
4	शुक्र (वीनस)	सफेद	दक्षिण-पूर्व (आग्नेय)
5	मंगल (मार्स)	मूंगया लाल	दक्षिण
6	शनि (सैटर्न)	काला	दक्षिण
7	बृहस्पति (ज्युपीटर)	सुनहरा पीला	उत्तर-पूर्व
8	राहू	सफेद	दक्षिण-पश्चिम
9	वरुण (नेपच्यून)	चांदी जैसा सफेद	पश्चिम
10	केतु	काला	दक्षिण-पश्चिम

1. तिवारी नथुनी जी, कल्याण- सूर्यांक वर्ष 1979, पृ. 383

2. रामन, प्रो. वी.वी., वास्तुशास्त्र पृ. 19

2.5 भवन निवेश

श्लोक - धर्मार्थकाममोक्षणां हेतुभूतं महाफलम् ।

अपूर्वे पुण्यफलदं शृणुध्वं सुसमाहिता : ॥ 21 ॥¹

भारतीय दर्शन के अनुसार चार पुरुषार्थ बताये गये हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, साथ ही मानव के जीवन काल को चार भागों अर्थात् आश्रमों में विभाजित किया गया है :- ब्रम्हचर्य यानी बाल्यकाल, गृहस्थ यानी युवा काल, वानप्रस्थ अर्थात् तीसरी अवस्था तथा सन्यास चौथी अवस्था है । गृहस्थाश्रम को इन सभी में श्रेष्ठ माना गया है । गृहस्थाश्रम तभी साकार होता है, जब सुविधाजनक और स्थायी आवास में मनुष्य अपने जीवन की परम्परागत क्रियाओं को संपन्न करता है ।

गृह निर्माण करने में एक सद्गृहस्थ को क्रमानुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है, क्योंकि जब मनुष्य घर यानी आवास का निर्माण करता है, तभी वह कृषि-व्यापार आदि से धन यानि अर्थ की प्राप्ति करता है, धन प्राप्ति से विवाह आदि कर्म करके परिवार एवं वंश वृद्धि होती है । इन सबका भोग लेने पर वह वानप्रस्थ यानी त्याग अथवा सेवा निवृत्त होने की स्थिति में आता है तथा जीवन की अंतिम अवस्था सन्यास की होती है । इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति तभी होगी जब विधिवत् गृह-निर्माण करके व्यक्ति तालाब, कुआँ, सड़क, देवालय आदि का निर्माण करके शास्त्रोक्त पुण्य-फल प्राप्त करता है ।

‘मनुस्मृति’ के अनुसार विश्वकर्मा ने गृहस्थाश्रम के सुख, धर्म और अर्थ-प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम एक स्थायी आवास बनाकर रहने की प्रेरणा दी है ।

व्यक्ति सूक्ष्म इकाई है किन्तु परिवार मानवी जीवन के सभी आयामों को समेटने एवं प्रतिबिम्बित करने वाली लघुतम इकाई है । परिवार के साथ घर का संबंध अविभाज्य है इसलिए जब किसी व्यक्ति के गुणावगुण की चर्चा होती है तब उसके “घर परिवार” की चर्चा अवश्य होती है, इस प्रकार दोनों शब्द परस्पर समानार्थी हैं । हमारा भवन रचना विज्ञान अथवा वास्तुशिल्प शास्त्र इन्हीं परिमाणों के आधार पर विकसित हुआ है जो सूक्ष्म और व्यापक प्रभावों के प्रति स्थायी रूप से चैतन्य और सचेष्ट रहा है ।²

1. वाल्मिकी रामायण, प्रथम अध्याय, श्लोक - 21

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र पृ. 23

2.5.1 मुहूर्तः- ग्रह निर्माण में ज्योतिष एवं मुहूर्त विज्ञान की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। एक विद्वान और सुयोग्य व्यक्ति को वास्तु नियमों के अनुसार भूमि खरीदकर उसकी मिट्टी आदि का परीक्षण करके शुभ मुहूर्त में भवन का शिलान्यास करना चाहिए। मनोवांछित आवास बन जाने पर शुभमुहूर्त निकालकर ग्रह-प्रवेश करना चाहिए। इससे ग्रहस्वामी के अलावा उसके परिवार के सदस्यों की आयु, आरोग्यता, शिक्षा, रोजगार, व्यापार तथा अन्य षोडश कर्म यथासमय करने से ही परिवार की धन-सम्पदा की वृद्धि होगी। उन्नति के शुभ अवसर पर व्यक्ति जो दान-पुण्य और लोकहित के कार्य करेगा, उससे उसका मोक्ष मार्ग भी प्रशस्त होगा।³

2.5.2 भूमिपूजनः-

सूक्तः- विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वानरं विभ्रती भूमिरग्निभिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥6॥

अर्थः- विश्व का भरण-पोषण करने वाली पृथ्वी ही धन-धारिणी सबकी आश्रयदायिनी, सुवर्ण, रजत, आदि धातुओं को अपनी कोख में धारण करने वाली और स्थावर जंगम संसार को अपने ऊपर बसाने वाली है, सम्पूर्ण जनों की हितकारिणी अग्नि को धारण करने वाली, वराहरूप धारी भगवान् जिसके स्वामी है वह भूमि हमें धन प्रदान करें।

भूमि हमारी माता है जिसने सबको धारण कर रखा है, माता हो अनुज्ञा प्राप्त करना, उसे अपनी आवश्यकता बताना और उसके अनुग्रह हेतु उसकी पूजा करना, यही मूल उद्देश्य होता है, भूमि पूजन का, इसलिए ग्रह निर्माण के लिए सर्वप्रथम भूमि परीक्षा आवश्यक है।

2.5.3 भूमि-परीक्षण-

‘मुहूर्त गणपति’ का एक श्लोक निम्नवत है :-

श्वेता भूमिस्तु विप्राणां रक्ता शस्ता घनुर्मृताम्।

विशां पीताऽथ शूद्राणां श्यामा मिश्रेतरस्य च ॥

ऊपरी मिट्टी की परत हटाकर नीचे की मिट्टी हाथ में लें इसे सूंघें तो भिन्न प्रकार की गंध आएगी, इसे हल्का सा चखकर देखें। यह मीठी, हल्की खट्टी या कसैली स्वाद की हो सकती है।² मिठास लिए मिट्टी बुद्धिजीवियों एवं अध्यापकों के लिए अनुकूल है। खटास लिए मिट्टी व्यवसायी और व्यापारियों के लिए अनुकूल है, जबकि कसैले स्वाद वाली मिट्टी बाकी सभी श्रेणियों के लिए उपयुक्त

1. महारथि, पं. शास्त्रार्थ, शास्त्रिणां पं. माधवाचार्य, अथर्ववेद संहिता सनातन भाष्य संहिता अथ द्वादश काण्डम पृ. 354

2. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समराङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग/प्रथम अध्याय पृ. 46

3. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र पृ. 162

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

है। वास्तुशास्त्र में मिट्टी की गंध, रंग और स्वाद के अनुसार इसे चार भागों में बाँटा गया है।

1. श्वेत रंग की मिट्टी- इसे ब्राम्हणी मिट्टी कहते हैं। सुगंध और मिठास वाली यह मिट्टी ब्राम्हणों बुद्धिजीवियों और धार्मिक व्यक्तियों के लिए अनुकूल है।
2. लाल रंग की मिट्टी:- तीखी गंध और कसैले स्वाद वाली मिट्टी को क्षत्रिया मिट्टी कहते हैं।
3. हल्के पीले रंग की मिट्टी :- हल्की गंध और खटास वाली मिट्टी को वैश्या मिट्टी कहते हैं। यह व्यवसायी एवं व्यापारी वर्ग के लिए उत्तम है।
4. काली मिट्टी :- तीखी हल्की गंध और कड़वे स्वाद वाली मिट्टी को शूद्रा मिट्टी कहते हैं यह समाज के बाकी सभी वर्गों के लिए उत्तम है।¹

टिप्पणी - वर्तमान समय में मिट्टी की परीक्षा के लिए उसे मुँह में रखकर स्वाद लेने की आवश्यकता नहीं है। उस स्थान का पानी पीकर भी स्वाद जाना जा सकता है।

5. भूमि के प्रकार:- भूमि चार प्रकार की होती है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी वाली भूमि क्रमशः ब्राम्हणी, क्षत्रिया, वैश्या एवं शूद्रा भूमि कहलाती है। इस संपूर्ण विषय पर निम्नलिखित चक्र दृष्टव्य है :²

भूमि के प्रकार	भूमि का रंग	भूमि का स्वाद	भूमि की गंध	फल
ब्राम्हणी	सफेद	मधुर	सुगन्धित	सुखदायक
क्षत्रिया	लाल	कसैली	रक्तगंध	राज्यप्रदा
वैश्या	हरा/पीला	खट्टी	शहद के समान गंध	धनदायक
शूद्रा	काला	कड़वी	मदिरा के समान गंध	त्याज्य

भूमि परीक्षण:- श्लोक- सर्वधान्यानि बीजानि वापयेच्च समन्ततः।

यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥³

1. भूमि चयन हेतु भूखण्ड पर बीज बोएं और पानी छोड़ें -
यदि अंकुरण शीघ्र हो तो श्रेष्ठ है।
यदि अंकुरण देर से हो तो मिट्टी अच्छी नहीं मानी जाती।
2. भूमि परीक्षण के लिए सर्वप्रथम भूमि के बीच में एक हस्त गड्ढा खो दें और उस गड्ढे को उसी मिट्टी से ही भरें, यदि बराबर हो जाए तो सामान्य, गड्ढा न भरें तो अशुभ एवं मिट्टी अधिक होने पर शुभ होता है।⁴

1. ज्ञानेश्वर, डॉ. उमेश पुरी, वास्तुकला और भवन निर्माण, पृ. 47

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र पृ. 156

3. शुक्ल डॉ. द्विजेन्द्र नाथ, समराङ्गण सूत्रधार - भवन निवेश/प्रथम भाग/प्रथम अध्याय पृ. 47

4. त्रिपाठी रामप्रताप शास्त्री, मत्स्यपुराण उत्तरभाग, पृ. 429

3. भूमि में गड्ढा कर उसमें जल भर दें व सायंकाल चारों वर्णों के नाम से चार पुष्प रख दें। प्रातः जिस वर्ण का पुष्प मुरझाया हुआ न हो, उस वर्ण के लिए वह भूमि श्रेष्ठ मानी जाती है, अन्यथा अशुभ है।
4. चार अलग-अलग रंग सफेद, लाल, पीला, तथा काले रंग के फूल भूमि पर पूर्व, दक्षिण, तथा पश्चिम व उत्तर दिशा में क्रम से रखें जिस दिशा का फूल देर तक खिला रहे उस वर्ण अर्थात् सफेद फूल खिला रहने पर ब्राम्हण तथा लाल के लिए क्षत्रिय, वैश्य के लिए पीले एवं शूद्र के लिए काले रंग के फूल खिले रहने पर भूमि शुभ है।

2.5.4 पर्यावरण की दृष्टि से भूमि -विचार -

1. जो भूमि उबड़-खाबड़, ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, फटी हुई या फिसलने वाली हो तो उस पर भवन नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि वह भूमि रोगकारक होती है।
2. जिस भूमि के दक्षिण दिशा की ओर जल स्रोत हो तो उस भूमि पर भवन-निर्माण नहीं करना चाहिए। ऐसी भूमि सुख-समृद्धशाली नहीं होती है। इसके विपरीत जिस भूमि के उत्तर दिशा की ओर जलस्रोत हो तो उस भूमि पर भवन निर्माण करना सामान्य है।
3. ऊसर भूमि या टीलों से युक्त भूमि पर भी भवन-निर्माण नहीं करना चाहिए क्योंकि यह भी उन्नति में बाधक एवं धनहानि कारक है।
4. भूखण्ड के पूर्व- उत्तर की भूमि ढलानदार है, तो उत्तम है।
5. भूखण्ड के दक्षिण व पश्चिम में पहाड़ या ऊँची चट्टानें हों तो शुभ है।
6. भूखण्ड के ईशान कोण की ओर तालाब, नदी, पानी की गहरी टंकी हो तो शुभ है।
7. भूखण्ड के दक्षिण पश्चिम दिशा में कोई कुँआ, तालाब, पोखर गड्ढा आदि है तो अशुभ है।

2.5.5 वर्तमान समय में भूमि परीक्षण विधि :-

वर्तमान में भूमि परीक्षण में परिवर्तन आया है, नींव डालने के पहले मिट्टी की जाँच कर लेना बहुत आवश्यक है, मिट्टी की जाँच कर लेने से इसके गुणों का ज्ञान हो जाता है, जिसके अनुसार ही भवन की नींव का अभिकल्पन किया जाता है। मिट्टी की जाँच से धरातल के नीचे की मृदा के गुणों और इस क्षेत्र के सामान्य भू-विज्ञान का ज्ञान हो जाता है।¹

मृदा अन्वेषण संरचनाओं के निर्माण का एक बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है, मृदा अन्वेषण निम्न प्रकार से किया जाता है:-

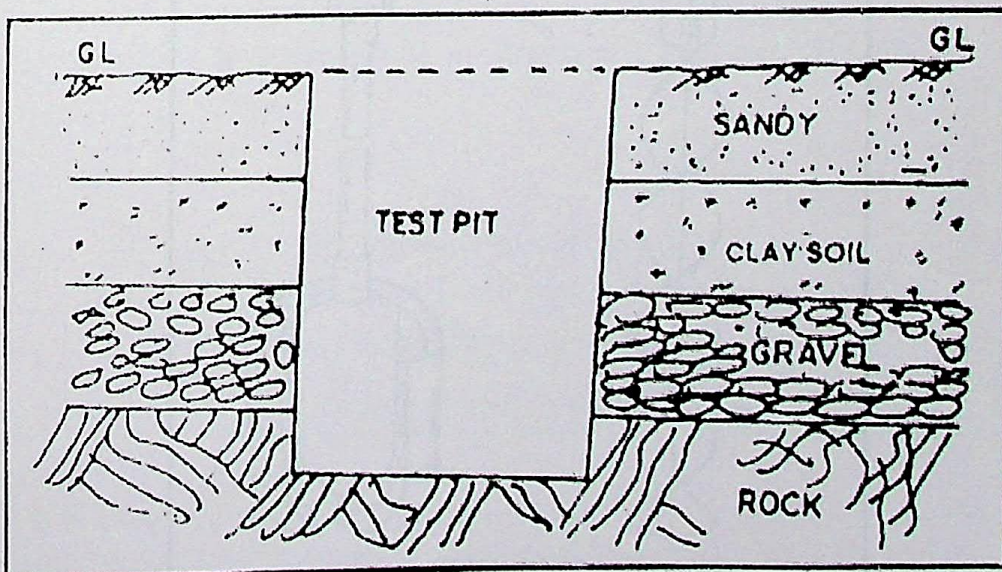
1. सिंह श्री गुरुचरण, भवन निर्माण तकनीकी एवं सामग्री पृ. 6

1. निरीक्षण (Inspection)
2. टैस्ट या परीक्षण -गड्ढे (Test pit)
3. प्रॉबिंग या गहराई नाप-विधि (Probing)
4. वेधन -विधि (Boring method)
5. परीक्षण पाईल (Test piles)
6. भू-भौतिकी विधि (Geo -physical Method)

1. निरीक्षण (INSPECTION-)- संरचना के अभिकल्पन से पहले नींव के स्थान का परीक्षण कर लेना चाहिए। इसके लिए इस क्षेत्र में बने गड्ढों और पहले बनी हुई संरचनाओं की नीवों के व्यवहार का अध्ययन करना चाहिए। इस क्षेत्र में नए गड्ढे खोदकर भी इस क्षेत्र के भू-विज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है।

2. परीक्षण- गड्ढे -(Test pits)- इस विधि में बड़े -बड़े गड्ढे खोदकर, मृदा की विभिन्न परतों का अध्ययन किया जाता है। गड्ढे इतने बड़े होने चाहिए कि एक आदमी इनके अन्दर जाकर अध्ययन कर सके। गड्ढे खुदाई वाली मशीनों से खोदे जा सकते हैं और यदि खुदाई वाली मशीन उपलब्ध न हो तो हाथों द्वारा ही खोदे जा सकते हैं। संसजक (Cohesive) मृदा में खड्डों की दीवारें करीब “ 1m गहराई तक उदग्र खड़ी रह सकती हैं। इससे अधिक गहरे गड्ढों के लिए टेंको (Bracing) का प्रयोग करना पड़ता है। कणकदार मृदा में गड्ढों की दीवारें उदग्र नहीं बल्कि नत बनाई जाती हैं। सामान्य परिस्थितियों में गड्ढे का नाप 1.5m x 1.5m x 1.5m रखा जाता है।

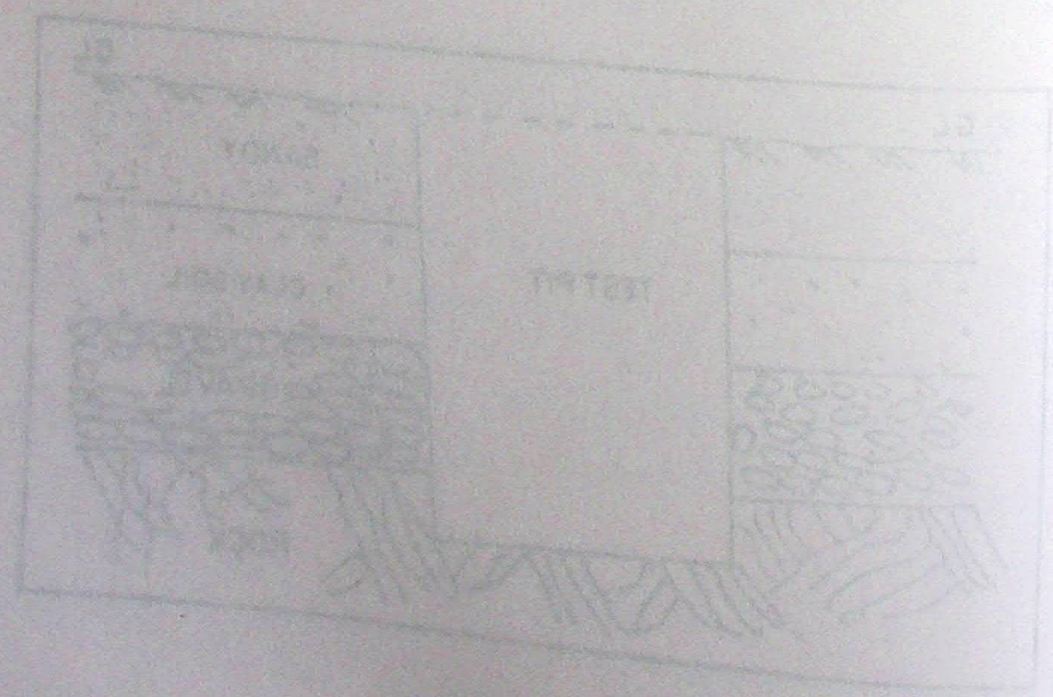
चित्र :-



निरीक्षण (Inspection)
परीक्षण (Test)
प्रमाण (Proof)
परीक्षण (Proof)
परीक्षण (Proof)
परीक्षण (Proof)

निरीक्षण (Inspection) - निरीक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु को देखकर उसके गुणों का पता चलना।
परीक्षण (Test) - परीक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु को एक विशेष विधि से परीक्षा करने का प्रयत्न।
प्रमाण (Proof) - प्रमाण का अर्थ है कि किसी वस्तु के गुणों का प्रमाण देना।

परीक्षण (Test) - परीक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु को एक विशेष विधि से परीक्षा करने का प्रयत्न।
प्रमाण (Proof) - प्रमाण का अर्थ है कि किसी वस्तु के गुणों का प्रमाण देना।
परीक्षण (Test) - परीक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु को एक विशेष विधि से परीक्षा करने का प्रयत्न।
प्रमाण (Proof) - प्रमाण का अर्थ है कि किसी वस्तु के गुणों का प्रमाण देना।
परीक्षण (Test) - परीक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु को एक विशेष विधि से परीक्षा करने का प्रयत्न।
प्रमाण (Proof) - प्रमाण का अर्थ है कि किसी वस्तु के गुणों का प्रमाण देना।

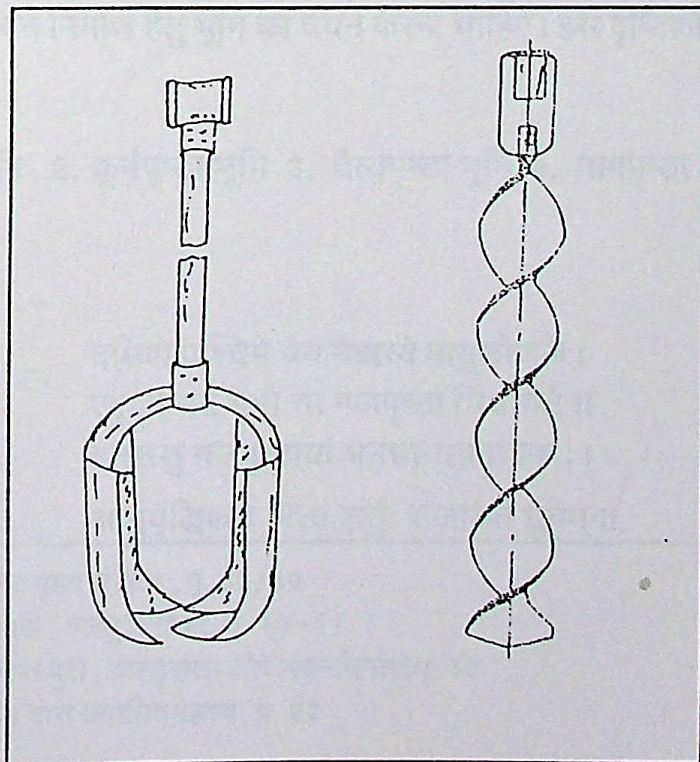


3. प्रॉबिंग या गहराई नाप-विधि (Probing or Subsurface Sounding)

इस परीक्षण विधि में 2.5cm. PC 4.5cm. व्यास की नोकदार छड़ का प्रयोग किया जाता है। छड़ को हथौड़े से या किसी दूसरी विधि से धरातल में प्रविष्ट किया जाता है। थोड़ी-थोड़ी गहराई तक छड़ डालकर उसे फिर बाहर निकाल लिया जाता है और छड़ की नोक पर लगी मृदा का परीक्षण किया जाता है। छड़ तब तक डाली जाती है जब तक कि छड़ की नोक किसी दृढ़ आधार से नहीं टकरा जाती। बीच-बीच में छड़ की नोक पर लगे मृदा के परीक्षण से हम मृदा की विभिन्न परतों की गहराई का अनुमान लगा सकते हैं। एक मानक हथौड़े की एक मानक चोट से छड़ जितनी अंदर धँस जाती है इससे भी मृदा की विभिन्न परतों की गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है। एक अनुभवी आदमी छड़ के अंदर धँसने की दर से मृदा के गुणों का आसानी से अन्दाजा लगा सकता है। यह विधि केवल नरम मृदा में ही उपयोगी है इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम विश्वसनीय नहीं होते।

4. वेधन-विधि (Boring Method) - वेधन विधि में विभिन्न प्रकार के बरमों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न बरमों से मृदा में छिद्र कर दिए जाते हैं और इसलिए इस विधि को वेधन-विधि कहते हैं। वेधन की विभिन्न विधियाँ नीचे बताई गई हैं -

1. बरमा वेधन विधि (Auger Boring Method)
2. धारा छेदन विधि (Wash Boring Method)
3. समाघात छेदन विधि (Percussion Boring)
4. कोर छेदन विधि (Core Boring)



5. **परीक्षण पाईल विधि (Test piles)** – इस परीक्षण के अन्तर्गत लकड़ी अथवा लोहे की परीक्षण पाईलें भूमि में गाड़ी जाती हैं। पाईलें गाड़ने के लिए निर्धारित भार के हथौड़े का प्रयोग किया जाता है, इस विधि से मृदा की किरम का कोई ज्ञान नहीं होता क्योंकि इसमें मृदा का कोई नमूना नहीं लिया जाता है। लेकिन निर्धारित भार के हथौड़े की चोटों से पाईल के अंदर धँसने की दर से मृदा की धारण क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है। पाईल गड़ने की दर से तुरंत मिट्टी की किरम का अनुमान लगाया जा सकता है।

6. **भू-भौतिकी विधि (Geo-physical Method)** – मृदा अन्वेषण की यह बहुत ही आधुनिक विधि है, जहाँ बहुत बड़े क्षेत्रों का भू-भौतिकी सर्वेक्षण करना होता है वहाँ इसी विधि को अपनाया जाता है। इस तरह का सर्वेक्षण तेल खुदाई जैसे कार्यों में किया जाता है, यह विधि विद्युत या भूकंपन पर आधारित हो सकती है।

विद्युत विधि में इलेक्ट्रोड भूमि में गाड़ दिए जाते हैं और विद्युत धारा इनमें से प्रवाहित की जाती है। मृदा द्वारा विद्युत धारा के प्रवाह में प्रस्तुत विधि अनुसार भूमि के नीचे की परिस्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

भू-कंपन विधि में भूमि के अंदर कृत्रिम विस्फोट किए जाते हैं, विस्फोट द्वारा उत्पन्न कंपन के संचारण के अनुसार भूमिगत परिस्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

2.5.6 पृष्ठानुसार भूमि के प्रकार व फल:-

भूमि की दिशाओं में लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के आधार पर भी भूमि की गुणवत्ता और शुभाशुभ का विचार करके भवन निर्माण हेतु भूमि का चयन करना चाहिए। इस दृष्टिकोण से भूमि चार प्रकार की होती है।

1. गजपृष्ठा भूमि
2. कूर्मपृष्ठा भूमि
3. दैत्यपृष्ठा भूमि
4. नागपृष्ठा भूमि

गजपृष्ठा भूमि :-

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैऋत्ये वायुकोणके ।

एषूच्चं यत्र भूमौ सा गजपृष्ठा भिधीयते ॥

वासस्तु गजपृष्ठायां धनधान्यप्रदायकः ।

आयुर्वृद्धिकरो नित्यं कर्तुः संजायते ध्रुवम् ॥

1. मिश्र डॉ. सुरेशचन्द्र बृहद् संहिता, पृ. 52/89
2. द्विवेदी श्री विन्धेश्वरी, वास्तुरत्नाकर, पृ. 10-11
3. ज्ञानेश्वर, डॉ. उमेश पुरी, वास्तुकला और भवननिर्माण पृ. 58
4. गुप्त श्री जगजीवन दास ज्योतिष रहस्य, पृ. 22

dvalava (MMYVV). Karoundi, Jabalpur MP Collection

जो भूमि नैऋत्य और वायव्य दिशा में उन्नत हो उसे गजपृष्ठा भूमि कहते हैं। इस भूमि पर भवन निर्माता धन-धान्य से पूर्ण और दीर्घायु होता है।

कूर्मपृष्ठा भूमि :-

मध्य उच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम् ।
कूर्मपृष्ठा च सा भूमिः कथिता गजकोत्तमैः ॥
वासश्च कूर्मपृष्ठायां नित्यमुत्साहवर्धकः ।
धन धान्यादिकं तस्य जायते च यशः सुखम् ॥

जो भूमि मध्य में उन्नत (ऊँची) और चारों ओर से अवनत (नीची) हो तो उसे कूर्मपृष्ठा कहते हैं। कूर्मपृष्ठा भूमि पर भवन निर्माण करने से उत्साह, धनधान्य यश और सुख की वृद्धि होती है।

दैत्यपृष्ठा भूमि :-

पूर्वाग्नि - शुम्भुकोणेषु स्थलमुच्चं यदा भवेत् ।
पश्चिमे यत्र नीचं सा दैत्यपृष्ठाऽभिधीयते ॥
वासस्तु दैत्यपृष्ठायां सदा कलहकारकः ।
पशुपुत्र धनादीनां हानिर्भवति गेहिनः ॥

जो भूमि, पूर्व, आग्नेय, ईशान दिशा में उन्नत (ऊँची) हो और पश्चिम दिशा में अवनत (नीची) हो तो उसे दैत्यपृष्ठा कहते हैं। दैत्यपृष्ठा भूमि पर भवन निर्माण करने से नित्य कलह, पशु, पुत्र तथा धनादि की हानि करने वाली होती है।

नागपृष्ठा भूमि :-

पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घा योच्चा दक्षिणसौम्ययोः ।
नागपृष्ठा च सा प्रोक्ता निन्दिता पूर्वसूरिभिः ॥
तत्र वासो गृहेशस्य धनधान्यदिहानिकृता ।
रिपुभीतिकदश्चैव तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

जो भूमि पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर लम्बी हो, दक्षिण-उत्तर में अवनत (नीची) हो तो उसे नागपृष्ठा कहते हैं। नागपृष्ठा भूमि पर भवन निर्माण करने से धन-धान्यादि की हानि, सदैव शत्रु का भय या शत्रु वृद्धि होती है, अतः यह भूमि त्याज्य है।

1. ज्ञानेश्वर डॉ. उमेश पुरी, वास्तुकला और भवन निर्माण, पृ 116, 118

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 124

2.5.7 शल्यदोष :- भवन-निर्माण करने से भूखंड का शल्य शोधन अर्थात् शल्योद्धार किया जाता है। भूगर्भ में स्थित दोषपूर्ण वस्तु का होना शल्य कहलाता है जैसे कि पशु या मानव अस्थि, लोहा, पत्थर, लकड़ी, कोयला या अन्य धातु आदि। शल्य शोधन या भूमि की शुद्धि किए बिना भूखंड पर भवन-निर्माण करने से भवन दूषित हो जाता है एवं उसमें रहने वालों को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। आकस्मिक आपदा, धन-हानि एवं मृत्यु तक का भय बना रहता है, भूखंड में दबे हुए पदार्थों के कारण भवन में शल्यदोष रहता है, अतः शल्य को भूखंड में से निकालकर ही भवन-निर्माण करना चाहिए।

वर्तमान में शल्य-शोधन विधि व्यवहारिक नहीं लगती, किंतु सुविधा के लिए साधारण विधि अपनाई जा सकती है:-

जिस भूखंड पर निर्माण होना है उस स्थान पर एक पुरुष जितनी गहराई तक गड्ढा खोदकर उसमें से मिट्टी निकालकर फेंक दें और किसी कार्य में उसे उपयोग न करें। उसके स्थान पर नई शुद्ध मिट्टी भरने से शल्य-शोधन हो जाता है। ऐसा करने से दोष नहीं रहता है एवं उस भूखंड पर निर्माण किया जा सकता है।¹

2.5.8 गृह में वृक्ष विचार :- आवास हेतु भवन-निर्माण में वृक्ष बहुत उपयोगी हैं। आवास के आस-पास उचित दिशा में लगे हुए वृक्ष भवन में आनेवाली हानिकारक ऊर्जा को रोकने और सोखने का कार्य करते हैं, आवास के आसपास की हरियाली व रंग-बिरंगे फूलों से लदे पौधे तन-मन को शान्ति प्रदान करते हैं। जीवन को शांत और सौम्य बनाते हैं। वृक्ष वातावरण को नमी और प्राण वायु देते हैं।

आवास के आसपास जितने अधिक पेड़-पौधे लगा सकते हैं, उन्हें लगाना चाहिए, परंतु उन्हें लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वे पेड़-पौधे प्राणी व प्रकृति के लिए घातक नहीं, उपयोगी हों।²

शुभ वृक्ष:-

भूमि अथवा मकान के समीप स्थित निम्नलिखित वृक्ष शुभकारी हैं।

यत्र तत्र स्थिता वृक्षा बिल्वदाडिमकेसराः।

पनसो नारिकेलश्च शुभं कुर्वन्ति नित्यशः॥

1. शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ, समरांजण सूत्रधार - वास्तुशास्त्रीय-भवन निवेश पृ. 159

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 126

जम्बीरश्च रसालश्च रम्भाशेफालिकांस्तथा ॥

निम्बाशोक शिरीषांश्च मल्लिकाघाः शुभप्रदाः ॥

बेल, दाड़िम, केसर (नागकेसर), कटहल, एवं नारियल के वृक्ष सर्वत्र शुभ होते हैं तथा नीबू, आम, केला, शृंगारहार, नीम, अशोक, शिरीष और मल्लिका के वृक्ष भी घर के समीप शुभकारी रहते हैं।

अशुभ वृक्ष :-

निम्नलिखित वृक्ष घर के समीप अशुभकारी माने गए हैं :-

मालतीं चैव चम्पां च केतकीं कुन्दमेव च ।

मुनिवृक्ष ब्रम्हवृक्षं वर्जयेद् गृहसन्निधौ ॥

तिन्तिलीको वटः प्लक्षः पिप्पलश्च सकोटरः ।

शीरी च कण्टकी चैव निषिद्धास्ते महीरुहाः ॥

मालती, चम्पा, केवड़ा, कुन्द, अगस्त्य एवं ब्रम्ह वृक्ष घर के समीप वर्जित हैं। तेंतर, बड़, पाकड़, पीपल, तथा खोंदर वाले वृक्ष और जिसमें दूध होता हो तथा काँटो वाले सभी वृक्ष घर के समीप निषिद्ध हैं।

विशेष वास्तु-फल - छायानुसार

मकान का विशेष वास्तु-फल निम्नलिखित है।

वृक्षप्रासादिनी छाया सच्छन्नं यदि मंदिरम् ।

अचिरेणेव कालेन उद्भासं जायते ध्रुवम् ॥

यदि वृक्ष की छाया सर्वदा (दिन भर) मकान (घर) पर पड़ती हो, तो वहाँ से शीघ्र ही उजड़कर दूसरे स्थान में जाना पड़ता है इसलिए ऐसे स्थान में वास न करें।

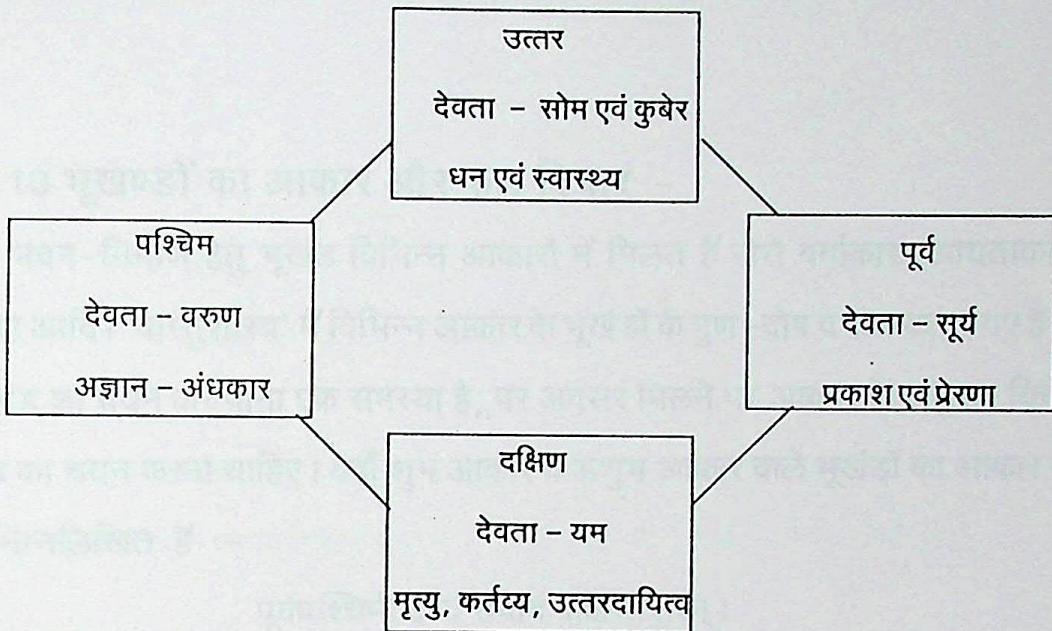
प्रथमान्तयामवर्ज्यं च द्वित्रिप्रहरसंभवा ।

छाया वृक्षध्वजादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ॥

यदि प्रथम और चतुर्थ प्रहर को छोड़कर दूसरे एवं तीसरे प्रहर में वृक्ष अथवा ध्वजा आदि की छाया मकान पर पड़े तो वह अशुभ है।

-
1. वास्तुलिंग, पृ. 190,
 2. ज्ञानेश्वर डॉ. उमेश पुरी, वास्तुकला और भवन निर्माण, पृ. 61
 3. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 194
 4. खेमराज मिहिर चन्द्र, विश्वकर्मा प्रकाश, पृ. 1/56

2.5.9 मूलभूत दिशाओं के आधार पर वृक्ष विचार



उत्तर दिशा – उत्तर दिशा सोम देवता के अधिकार क्षेत्र में है, जो स्वास्थ्य के देवता हैं। यदि घर के उत्तर दिशा की ओर खाली स्थान हो एवं साथ ही बड़ी खिड़कियाँ इस ओर स्थित हों जिनसे सूर्य का प्रकाश इस दिशा से प्रवेश करता हो तो इस ओर औषधीय पौधे एवं खुशबू वाले पौधों लगाना चाहिए। जैसे अदरक, कालीमिर्च इत्यादि मौसम अर्थात् ऋतु के अनुरूप पौधों का चयन कर उन्हें लगाना चाहिए।

पूर्व दिशा – पूर्व दिशा में सूर्य देवता का स्थान है। यदि घर के पूर्व में खिड़कियाँ हैं जिनसे सूर्य प्रकाश आता है तो उस ओर रंग बिरंगे पौधें, आयुर्वेदिक पौधें एवं हरी सब्जी लगाना चाहिए। एक छोटा सा उद्यान घर के अंदर बनाना चाहिए जहाँ पौधों को उगाया जा सके तथा उसमें मध्य में एक ओर ऊपर की ओर चढ़ने वाला पौधा (बेल) लगाना चाहिए। वह इस प्रकार प्रतीत होना चाहिए कि हमें उसकी तरह हमेशा ऊपर की ओर बढ़ना है अर्थात् तरक्की करना है।

दक्षिण दिशा – दक्षिण दिशा जिसका प्रतिनिधित्व यम देवता करते हैं जो मृत्यु व कर्तव्य दोनों के देवता हैं। वास्तु के अनुसार यह दिशा भारी होना चाहिए। दक्षिण में भारी वृक्ष व ऊँचे वृक्षों को लगाना चाहिए जैसे – पाम, अम्ब्रेला ट्री इत्यादि।

पश्चिम दिशा – पश्चिम दिशा में वरुण देव का स्थान है जो अंधकार व अज्ञान के देवता हैं। यदि घर में पश्चिम दिशा में खिड़की पर देहली हो तो छायादार पौधे लगाने चाहिए ताकि इस ओर से कम प्रकाश आ सके।

2.5.10 भूखण्डों का आकार और फल विचार :-

भवन-निर्माण हेतु भूखंड विभिन्न आकारों में मिलते हैं जैसे वर्गाकार, आयताकार, गोल, त्रिकोण आदि। 'वास्तुशास्त्र' में विभिन्न आकार के भूखंडों के गुण-दोष व फल बताए गए हैं। वर्तमान में भूखंड का चयन कर पाना एक समस्या है, पर अवसर मिलने पर आकार के अनुरूप विचार करके भूखंड का चयन करना चाहिए। यहाँ शुभ आकार व अशुभ आकार वाले भूखंडों का आकार एवं उनके फल निम्नलिखित हैं :-

पूर्वपश्चिमी दैर्घ्य सपादं दक्षिणोत्तरम्।

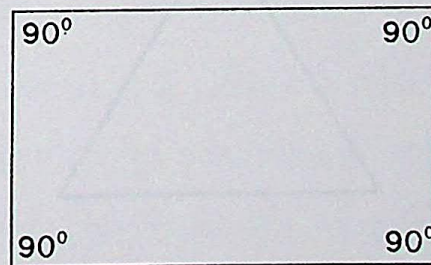
शुभावहं चन्द्रविद्धनं सूर्यविद्धनं शोभनम्॥

पूर्व से पश्चिम तक भूखंड की जितनी चौड़ाई हो उससे सवाया उत्तर-दक्षिण दिशा में होना चाहिए। इसे चन्द्रवेधी भूखंड कहा जाता है, यह शुभ होता है। उत्तर से दक्षिण तक जितनी चौड़ाई हो उससे सवाई यदि पूर्व-पश्चिम में हो तो उसे सूर्यवेधी भूखंड कहा जाता है, इसे अधिक शुभ नहीं माना जाता।

शुभ आकार के भूखंड -फल

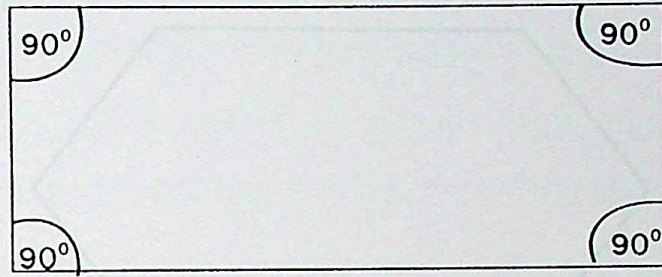
वर्गाकार भूखंड – जिस भूखंड की लम्बाई-चौड़ाई समान हो, अंदर के चारों कोण 90° अंश के हों, वह भूमि शुभ मानी जाती है, वर्गाकार भूखंड सर्वश्रेष्ठ होता है।

चित्र :-

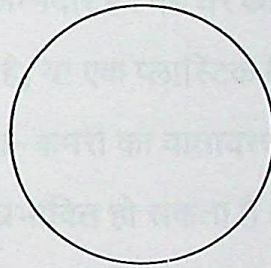


1. प्रभु बालगोपाल टी.एस., अच्युतन ए. – ए. टैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या, पृ. 159
2. अग्रवाल ईजी. पंकज, पृ. 71/74
3. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 194
4. खेमराज मिहिर चन्द्र, विश्वकर्मा प्रकाश, पृ. 1/56

आयताकार भूखंड:- जिस भूखंड की दो भुजाएँ बड़ी व दो छोटी हों व चारों कोण 90° अंश के हों तो उसे आयताकार भूखंड कहते हैं। भवन-निर्माण के लिए यह भूखंड श्रेष्ठ होता है।

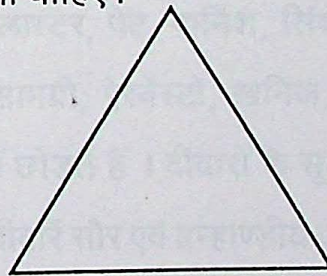


वृत्ताकार भूखंड :- जो भूखंड गोले की तरह हो उसे वृत्ताकार भूखंड कहते हैं। वृत्ताकार भूखंड उत्तम होता है, ऐसी भूमि में मकान बनाने से प्रचुर मात्रा में धन की प्राप्ति होती है।

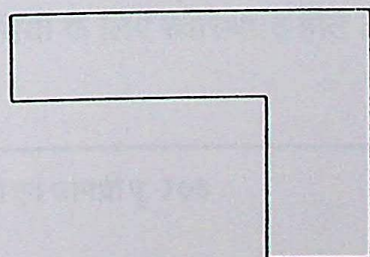


अशुभ आकार के भूखंड एवं फल

त्रिकोणाकार भूखंड :- जो भूखंड त्रिकोण की आकृति की तरह हो तो उसे त्रिकोणाकार भूखंड कहते हैं। इस प्रकार की भूमि कष्ट, दुख, क्लेश एवं कलहकारक होती है जहाँ तक हो सके इसे मकान बनाने के लिए प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

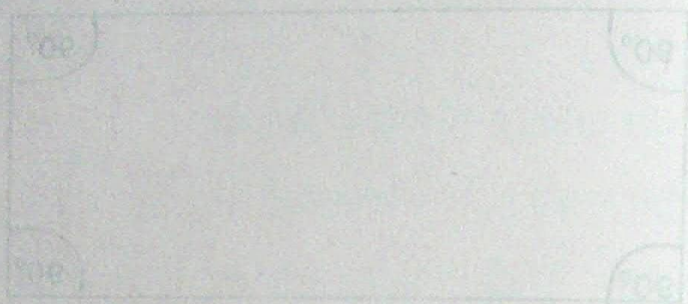


पंखाकार भूखंड:- पंखाकार भूखंड हाथ के पंखे के आकार के समान होता है, ऐसे भूखंड को व्यंजनाकार भूखंड कहते हैं। यह भूमि, स्वामी के लिए अशुभ, कष्टकारक, धननाशक सिद्ध होती है।



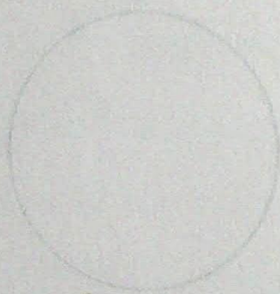
किसी एक कोण को 90° मानते हैं और कहते हैं कि वह एक समकोण है - **हम इसका मान्यता**

। इसी तरह हम 180° को एक सीधे कोण मानते हैं - **हम इसका मान्यता**



हम मान्यता करते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**

। इसी तरह हम कहते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**

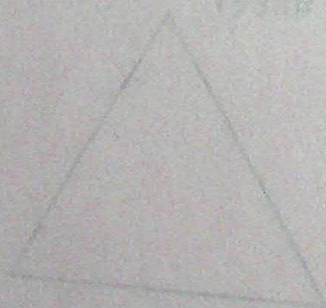


किसी एक कोण को 90° मानते हैं

हम मान्यता करते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**

। इसी तरह हम कहते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**

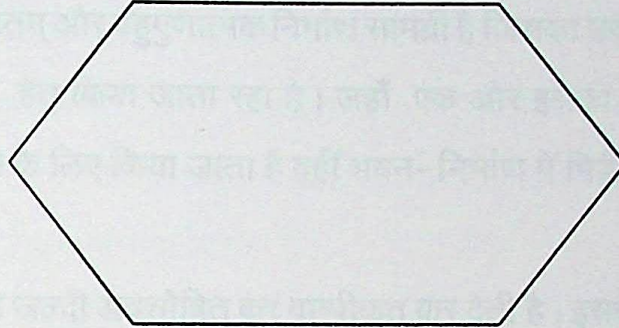
। इसी तरह हम कहते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**



हम मान्यता करते हैं कि एक ही रेखा में दो बिंदु होंगे कि उनका बीच का हिस्सा - **हम इसका मान्यता**



मृदंग / तबलाकार भूखंड :- जो भूखंड मृदंग या ढोलक अथवा तबले के आकार के समान होता है, उसे तबलाकार या मृदंगाकार भूखंड कहते हैं। इस भूखंड पर निवास करने से भूस्वामी पर अशुभ प्रभाव पड़ता है।



2.5.11 भवन निर्माण सामग्री:- भवन निर्माण में उपयोग होने वाली सामग्री, स्वास्थ्यप्रद या हानिकारक वातावरण बनाने के लिए जिम्मेदार है। वह घर को ऊर्जा युक्त व मकान के निवासियों के लिए स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण दे सकती है, या एक प्लास्टिक बैग की तरह बंद भी बना सकती है।

1. भवन निर्माण सामग्री द्वारा-कमरों का वातावरण निर्मित करने वाली आर्द्रता, वायु, तापमान एवं वायु प्रवाह प्रभावित हो सकता है।
2. विद्युत तरंगीय वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है।
3. ब्रम्हाण्डीय एवं क्षेत्रीय विकिरण का प्रभाव मिल सकता है।
4. प्रदूषण का स्तर बढ़ाया जा सकता है।
5. सूक्ष्म जीवाणुओं का जीवन चक्र बढ़ सकता है, घट सकता है।
6. सामग्री द्वारा रेडियम विकर्षण उत्पन्न हो सकता है।

कांक्रिट के मकान जिनमें सीमेंट, प्लास्टर, पेंट, वार्निश, सिंथेटिक आदि का भरपूर उपयोग होता है, उनमें पी.सी. बी., पी.वी.सी. सामग्री, ऐस्वेस्टो, खनिज, लकड़ी आदि होते हैं जो कि स्वास्थ्य पर दूषित प्रभाव डालने वाली गैसों छोड़ते हैं। दीवारों के सूक्ष्म छिद्रों को इस सामग्री द्वारा पूर्णतः बंद कर दिया जाता है। अतः यह दीवारें सौर एवं ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा को न तो प्रवेश करने देती हैं और न ही गैसों का दीवारों के द्वारा बाहर जाने देने की संभावना रहती है।

जो भवन पत्थर, मिट्टी की ईंटों, रेत, चूना, मार्टर, लकड़ी आदि से बने होते हैं और जहाँ गलीचे प्राकृतिक रेशों से बने होते हैं। सामान्य रंगों का सजावट में उपयोग होता है ऐसे भवन को साँस लेते भवन कहा जा सकता है और ये निवासियों के लिए स्वास्थ्यप्रद होते हैं।

भवन-निर्माण हेतु उपयोगी सामग्री:-

1. मिट्टी
2. पत्थर
3. लकड़ी
4. ईंट

मिट्टी का चयन:-

मिट्टी एक प्राचीनतम् और बहुगुणात्मक निर्माण सामग्री है जिसका उपयोग लम्बे समय से भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों हेतु किया जाता रहा है। जहाँ एक ओर इसका उपयोग मूर्तियों, खिलौनों आदि को निर्मित करने के लिए किया जाता है वहीं भवन-निर्माण में मिट्टी का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर किया जाता है।

मिट्टी आर्द्रता को जल्दी अवशोषित कर वाष्पीकृत कर देती है। इसके अलावा वायु के संपर्क में आकर 'वायु' में उपस्थित विभिन्न प्रदूषणों को समाप्त कर पर्यावरण को शुद्ध रखती है। मिट्टी को परिस्थितिकी तंत्र व जैविक विज्ञान के दृष्टिकोण से सशक्त सामग्री का दर्जा प्राप्त है। मिट्टी, शुद्ध पर्यावरण के लिए आवश्यक सामग्री है। मिट्टी में ऊष्मीय संग्रहण क्षमता होती है।

'सौर विकिरणों' की कुशल अवशोषण क्षमता के कारण तपती धूप में भी मिट्टी से बने घर शीतलता प्रदान करने वाले होते हैं। साथ ही ठंड के मौसम में भी मिट्टी के घरों में उचित तापमान बना रहता है।

"मिट्टी" एक ऐसी विद्युत व ऊष्मा रोधी (इन्सुलेटिंग) सामग्री है जिसमें अच्छी ध्वनि संबंधी (एकॉस्टिकल) गुणवत्ता होती है अर्थात् मिट्टी से बने घरों में ध्वनि की गूंज नहीं होती। मिट्टी एक अग्निरोधक सामग्री है जिससे बने घरों में आग नहीं लगती। साथ ही समय के साथ ना तो मिट्टी सड़ती है व न ही इसमें जंग लगती है। मुख्य रूप से मिट्टी को तीन प्रकार से उपयोग किया जा सकता है :- मोनोलिथिक, ब्लॉक या सतही (सर्फेस) रूप में या मिट्टी को द्रव, प्लास्टिक व कठोर (सॉलिड) रूप में उपयोग किया जा सकता है। मिट्टी को सुदृढ़ करने के लिए तीन तरीके हैं :- मिट्टी की कुटाई, मिट्टी के कणों की पुनर्रचना तथा अतिरिक्त पदार्थ मिलाकर। मिट्टी को सुदृढ़ करने का कारण यह है, कि वस्तुएँ व भवन-निर्माण में इसके विभिन्न प्रयोगों को सुगम बनाया जा सके व निर्मित वस्तुओं को सुदृढ़ता प्रदान की जा सके।

भवन-निर्माण में आज भी मिट्टी का उपयोग हो रहा है जैसे फ्लोरिंग में, छत में, सीढ़ियों में, स्तंभ में आदि। मिट्टी के धनात्मक ऊर्जा विकिरण अधिकतम होते हैं, अतः भवनों में मिट्टी का अधिकाधिक उपयोग रहवासियों के लिए स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध होगा। आज विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मिट्टी का उपयोग कर आज के पर्यावरण के बढ़ते तनाव से बचाव किया जा सकता है।

पत्थर:- पत्थर एक प्राकृतिक भवन निर्माण सामग्री है। किसी भी भवन की मजबूती व सुंदरता उसके निर्माण में प्रयुक्त पत्थर की गुणवत्ता पर निर्भर होती है। उदाहरणार्थ:- आगरा स्थित ताजमहल में अद्भुत संगमरमर पत्थर के उपयोग के कारण यह विश्वप्रसिद्ध स्थल के रूप में पहचान बनाए हुए है।

हमारे पूर्वजों ने प्रकृति का गहन अध्ययन कर मानव कल्याण के लिए सम्बंधित नियम को शाखों के माध्यम से प्रस्तुत किया। विभिन्न प्राकृतिक सामग्रियों का वैज्ञानिक विश्लेषण कर गुणवत्ता, उपयोग आदि का सूक्ष्मतम वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया। वहीं इस बात को भी ध्यान में रखा कि कौन सा पत्थर उपयोग करने हेतु व कौनसा त्याज्य है।

पत्थर चट्टानों से या जमीन के अंदर खदानों के द्वारा प्राप्त होते हैं। वास्तुशास्त्रानुसार उपरोक्त दोनों में से तुलनात्मक रूप से पहाड़ों से प्राप्त पत्थर उत्तम होता है। जिन स्थानों पर दीमक, सांप के बिल आदि हों तो वहाँ के पत्थरों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शमशान, बर्बर लोगों की बस्ती आदि स्थानों से प्राप्त पत्थरों को भी वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण हेतु त्याज्य बताया गया है।

समुद्र के आस-पास की जमीन के पत्थर खारे पानी में विद्यमान लवणों के कारण कमजोर हो जाते हैं अतः इन पत्थरों का उपयोग निर्माण कार्यों में नहीं किया जाना चाहिए भवन निर्माण के लिए पत्थरों का उपयोग करते समय उपरोक्त बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिससे कि भवन न सिर्फ भौतिक रूप से सशक्त बन सके, बल्कि उसमें प्रवाहित विभिन्न ऊर्जाओं का भी अधिकाधिक व उचित उपयोग किया जा सके।

लकड़ी का चयन :- लकड़ी प्राप्ति का स्रोत है वृक्ष है। प्राचीन समय से लोगों ने आदर व पूज्य भाव से वृक्षों की मजबूती को बनाए रखा। भारतीय भवन निर्माण कला में लकड़ी को विकसित शकल में प्राथमिकता दी। लकड़ी का प्रयोग स्तूपों का घेरा तथा तोरण बनाने में किया गया, मंदिरों व भवन निर्माण में छतों में कड़ी के रूप में प्रयोग किया, छतों का भार लकड़ी की कड़ी पर डाला जाता था।

भारतवर्ष में उच्च कोटि की विविध लकड़ी उपलब्ध है। पुराने पाठानुसार उसे चार विस्तारित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है :-

1. अंतासरा (सागौन) मध्यभाग सख्त
2. बहिसारा (ताड़) बाहरी भाग सख्त
3. सर्वसारा (इरुल) संपूर्ण सख्त
4. निसारा (रेशम सूती) नरम

जो निर्माण में काम नहीं आती इनका अच्छी तरह अध्ययन करके, इनकी योग्यता, टिकाऊपन, शुद्धता जानने के बाद, बदलती स्थितिनुसार उपयोग में लाया जाने लगा। लकड़ी का कार्य शुद्धता का प्रतीक माना जाता है। पेड़ काटने के पूर्व उनसे विनती की जाती है जो भी जीव-जन्तु उस पर निर्भर हैं, वे दूसरे पेड़ पर व्यवस्था कर लें, फिर पेड़ काटा जाता था एवं आज भी उसी रीति को अपनाना चाहिए। इन लकड़ियों को काटकर 6 माह तक रखा जाता था, जिससे कुल्हाड़ी से हुए जखम भर जाएँ। वह सूखने के बाद उन्हें आकार दिया जाता था।

घर का मुख्य प्रवेश द्वार लकड़ी का बनाया जाना चाहिए। इसके अलावा प्रवेश द्वार में काँटेदार वृक्षों की लकड़ी का उपयोग व छिद्राकार लकड़ी का उपयोग वर्जित बताया गया है, साथ ही नए मकान बनाते समय पुरानी लकड़ी का उपयोग भी नहीं किया जाना चाहिए।

ईंट :- ऐसी जगहों पर जहाँ पर पत्थर नहीं मिलता निर्माण कार्यों के लिए ईंटों का उपयोग किया जाता है। ईंट एक ऐसा पदार्थ है जो चिकनी मिट्टी, सिलिका यानि बालू, चूना तथा पानी में सम्मिश्रण को साँचों में डालकर पकाया जाता है तथा सुखाकर आग में पकाया जाता है। ईंट कहीं भी स्थानीय रूप से बनाई जा सकती है, लेकिन पत्थर हर जगह उपलब्ध नहीं होता।

ईंट पत्थर से हल्की होती है, इसे किसी भी माप व शक्ल में साँचे में आसानी से ढाला जा सकता है। आम परिस्थितियों में यह सुरक्षित है लेकिन इन पर प्लास्टर या टीप करके अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है।

2.5.12 वास्तुशास्त्र में माप के उपकरण-

1. एक रथ-धूलि आठ परमाणु के बराबर होती है, आठ रथ धूलि बराबर एक बालाग्र होता है।
2. आठ बालाग्र बराबर एक लिक्षा होती है, आठ लिक्षा बराबर एक यूक (यव /जौ) होती है।
3. आठ यव से एक अंगुला बनता है।
4. बारह अंगुल से बनता है एक वितरिस्त बनता है।
5. दो वितरिस्त बराबर एक किशकु हस्त (Small cubit) होता है।
6. एक किशकु हस्त से एक अंगुल अधिक होने पर एक प्रजापत्य हस्त होता है।
7. छब्बीस अंगुल का एक धर्नुमुष्टि हस्त, सत्ताइस अंगुल का एक धनुर्ग्रह हस्त होता है।
8. चार हस्त का एक दंड, आठ दंड की एक रज्जु होती है।
9. किशकु से रास्ते नापते हैं।¹

1. वर्मा शिव, वर्मा शोभा, वास्तुशास्त्र-मानसार (हिन्दी संस्करण) पृ.

10. प्रजापत्य को सभी प्रकार के भवनों को नापने के लिए प्रयोग किया जाता है।
11. महल को मापने के लिए धर्नुमुष्टि का उपयोग करते हैं।
12. किशकु से सभी प्रकार के नापने के कार्य किए जा सकते हैं।
13. शमी, शाक, खदिर, तमालक, क्षीरिणी (खिरनी), तिन्दिनी (इमली) वृक्षों की लकड़ी हस्त (Yard Stick) के लिए उपयुक्त है।
14. लकड़ी का चयन करने के बाद उसको तीन माह तक जल में भिगो कर रखें, उसके पश्चात् उसे निकालकर, तक्षक (Carpentor) चीरे।
15. उसकी लंबाई एक प्रजापत्य (Cubid), चौड़ाई एक अंगुल और मोटाई आधा अंगुला होना चाहिए।
16. वेणु (Bamboo) क्रमुक की लकड़ी, नापने का गज बनाने के लिए उपयुक्त है।
17. क्रमुक नापने वाली रस्सी (Rajju) बनाने के लिए नारियल, कुशा, वट-वृक्ष की छाल, कपास, केतक या अन्य उपयुक्त वृक्ष की छाल उपयोग में चाहिए।
18. नापने वाली रस्सी की चौड़ाई एक अंगुल होना चाहिए, रस्सी बिना गाँठ वाली होनी चाहिए।
19. वर्धकी को नापने का कार्य सतर्कता पूर्वक करना चाहिए।

2.5.13 द्वार निर्णय – ‘भवन निर्माण’ में द्वार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, भवन की समृद्धि उनके प्रवेश द्वार पर निर्भर करती है। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक भूखंड में वास्तुदेव में विभिन्न देवताओं का स्थापत्य है, जो उचित एवं सही स्थान में होने पर शुभ प्रभाव डालते हैं। मुख्य द्वार स्थापित करने विभिन्न मत वास्तुशास्त्र में प्रचलित हैं—

1. नवग्रह विधि 2. देव विधि 3. चुंबकीय क्षेत्र- पंचतत्व पर आधारित विधि

नवग्रह विधि – प्रत्येक भूखंड की प्रत्येक दिशाओं में नवग्रहों का महत्वपूर्ण स्थान है, इसी क्रम संख्या के अनुसार प्रत्येक ग्रह भूखंड के चारों ओर (दिशाओं) स्थापित है।

-
1. रमन प्रो. वी.वी., वास्तुशास्त्र, पृ. 129
 2. ज्ञानेश्वर डॉ. उमेश पुरी, भवन निर्माण और वास्तुकला, पृ. 172
 3. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 238/241

उत्तर

सड़क

वायव्य-

ईशान

1	2	3	4	5	6	7	8	9
सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि	राहू	केतु

पश्चिम

मुख्य द्वार हेतु शुभ

पूर्व

नैऋत्य

आग्नेय

		दक्षिण											
				उत्तर									
वायव्य		मुख्य द्वार हेतु शुभ									ईशान		
पश्चिम							केतु	9	सड़क	पूर्व			
							राहू	8					
							शनि	7					
							शुक्र	6					
							बृहस्पति	6					
							बुध	4					
							मंगल	3					
							चंद्र	2					
नैऋत्य							सूर्य	1			आग्नेय		
				दक्षिण									

वायव्य

ईशान

उत्तर

मुख्य द्वार हेतु शुभ

पश्चिम

केतु	राहू	शनि	शुक्र	बृहस्पति	बुध	मंगल	चंद्र	सूर्य
9	8	7	6	5	4	3	2	1

नैऋत्य

दक्षिण

आग्नेय

सडक

Table 1									
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
Table 2									

Table 3									
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27	28	29	30
31	32	33	34	35	36	37	38	39	40
41	42	43	44	45	46	47	48	49	50
51	52	53	54	55	56	57	58	59	60
61	62	63	64	65	66	67	68	69	70
71	72	73	74	75	76	77	78	79	80
81	82	83	84	85	86	87	88	89	90
91	92	93	94	95	96	97	98	99	100

Table 4									
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27	28	29	30
31	32	33	34	35	36	37	38	39	40
41	42	43	44	45	46	47	48	49	50
51	52	53	54	55	56	57	58	59	60
61	62	63	64	65	66	67	68	69	70
71	72	73	74	75	76	77	78	79	80
81	82	83	84	85	86	87	88	89	90
91	92	93	94	95	96	97	98	99	100

उपरोक्त मानचित्र में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा में प्रत्येक ग्रह का स्थान दर्शाया गया है, प्रथम भाग सूर्य के लिये, द्वितीय चन्द्र, तृतीय मंगल, चतुर्थ बुध, पंचम् बृहस्पति, षष्ठम् शुक्र, सप्तम् शनि, अष्टम् राहू और नवम केतु के लिये है। जिस क्षेत्र में द्वार बनाया जाये, उस क्षेत्र का प्रभाव दिशा व ग्रहों के स्वभाव अनुरूप पड़ता है।

- CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

(2) देव विधी (बोधचक्रम) - दिशा के अनुसार 32 देवताओं का फल निम्नांकित बोधचक्रम में बताया गया है :-

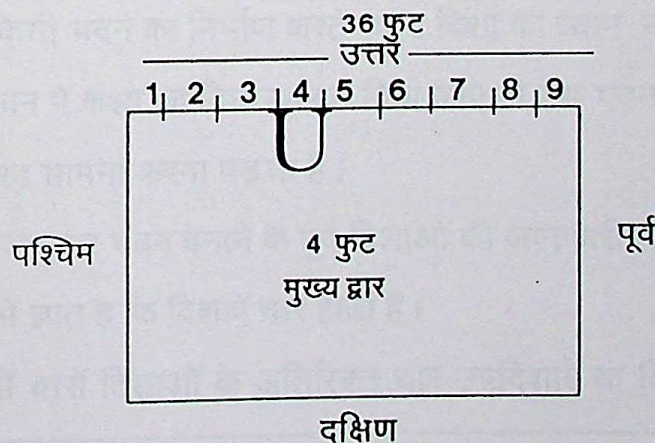
पूर्व	शिखी	पर्जन्य	जयंत	इन्द्र	सूर्य	सत्य	मृश	आकाश
	अग्निभय	स्त्रीलाभ	बहुधन	राजप्रियता	क्रोध	असत्यता	क्रूरता	चोरी
दक्षिण	वायु	पूषा	वितथ	बृहक्षत	यम	गंधर्व	भृंगराज	मृग
	असपापत्व	सेवकाई	नीचत्व	संतति	शूद्रकर्म	कृत्घनता	निर्धनता	वीर्यनाश
पश्चिम	पितृ	दौवारिक	सुग्रीव	पुष्पदंत	वरुण	असुर	शोष	पायक्ष्मा
	स्वल्पायु	व्यय	धननाश	धनवृद्धि	भोग	राजभय	अतिरोग	पापसंचय
उत्तर	रोगहर	अहि	मुख्य	भल्लाट	सोम	भुजंग	अदिति	दिति
	वधबंध	शत्रुभय	पुत्रलाभ	लक्ष्मी	धर्मशील	बहुवैर	स्त्रीदोष	धननाश


नव भागं गृहं कृत्वा पंच भागं तु दक्षिणे ।

त्रि भागमुत्तरे कृत्वा शेषं द्वारं प्रकल्पयत् ॥

अर्थात् जिस दिशा में भवन का द्वार बनाना हो उस दिशा की लंबाई को 9 से विभाजित करना चाहिये । दाएं से पांच भाग बाएँ से तीन भाग छोड़कर शेष एक भाग में अर्थात् बाएँ से चौथे भाग पर प्रवेश द्वार बनाना चाहिये ।

उदाहरण मान लीजिये उत्तर पूर्व कोण से उत्तर पश्चिम कोण के मध्य 36 फुट की दूरी है, प्रत्येक भाग $36/9 = 4$ फुट है । हमें बांये से $4 \times 3 = 12$ फुट और दाएँ से $4 \times 5 = 20$ फुट छोड़ देना चाहिये और मुख्य प्रवेश द्वार हेतु शेष 4 फुट प्रयुक्त होना चाहिये ।





मुख्य द्वार

- मुख्य द्वार - मुख्य द्वार हमेशा दो पल्लों का होना चाहिये
- मुख्य द्वार चौखट के साथ बनाना चाहिये ।
- मुख्य प्रवेश द्वार पर देहली होनी चाहिये, अधिकांशतः हिंदु घरों में मुख्य प्रवेश द्वार और देहरी को गृहलक्ष्मी के रूप में पूजा जाता है ।
- मुख्य द्वार को शुभ चिन्हों से अलंकृत करना चाहिये, आम्रपत्र व तोरण से द्वार को सजाना चाहिये ।
- द्वार खोलते व बंद करते समय किसी भी प्रकार की आवाज नहीं आनी चाहिये ।
- द्वार स्वतः खुलना व बंद नहीं होना चाहिये ।
- द्वार के लिये पुरानी लकड़ी का उपयोग नहीं करना चाहिये ।
- मुख्य द्वार अंदर की ओर खुलना चाहिये ।
- अनियमित आकार के द्वार अशुभ माने जाते हैं ।
- द्वार के ऊपर द्वार अत्यंत अशुभ होता है, ऐसा द्वार निर्धनता व वित्तीय संकट का कारण बनता है ।¹

द्वार निर्माण की तिथी - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी तिथी में बनाए गये द्वार शुभ होते हैं ।²

पक्ष - द्वार हमेशा शुक्लपक्ष में बनवाने चाहिये क्योंकि कृष्णपक्ष में द्वार बनाने से अनिष्ट फल प्राप्त होता है ।

2.5.15 भवन निर्माण में वास्तुशास्त्रीय नियम व दोष

कहा गया है कि दिशा व्यक्ति की दशा बदल देती है यह बात वास्तुनुरूप बने भवन पर पूर्णतया सत्य होती है, यदि किसी भवन का निर्माण करते समय दिशा का ध्यान नहीं रखा गया और अपनी आवश्यकतानुरूप भवन में कक्षों का निर्धारण कर दिया जाए तो उस भवन में रहने वाले सदस्यों को अनेक कष्टों, दुःखों का सामना करना पड़ता है ।

अतः वास्तु के अनुसार भवन बनाने के पूर्व दिशाओं की जानकारी होना आवश्यक है, वास्तुतः हमें दिशाओं के बारे में ज्ञात है कि दिशाएँ चार होती हैं ।

वास्तुविज्ञान में चारों दिशाओं के अतिरिक्त चार उपदिशाएँ या विदिशाएँ भी होती हैं, जो

1. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 240

2. ज्ञानेश्वर डॉ. उमेश पुरी, भवन निर्माण और वास्तुकला, पृ. 173

परस्पर दो मुख्य दिशाओं के मध्य में होती हैं। इनकी भूमिका वास्तु-शास्त्र में बहुत महत्वपूर्ण है।

1. ईशान 2. आग्नेय 3. नैऋत्य 4. वायव्य

अमरकोष में दिशाओं का उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है -

“ सूर्यः शुक्रो महोसुनुः श्चभनिभोनुजो विधः ।

बुधौ बृहश्चतिश्चेति दिशा चैव ग्रहाः” ॥

पूर्व - पूर्व से सूर्योदय होता है और सूर्य की किरणों में जीवनदायी पोषक तत्व होते हैं, जिनकी हमको व हमारी वनस्पतियों को अत्यंत आवश्यकता होती है। इस दिशा का स्वामी इन्द्र है और यह सूर्य का निवास स्थान माना जाता है। यह स्थान मुख्यतः प्रमुख व्यक्ति या पितृ का स्थान माना गया है, अतः पूर्व में उचित खाली जगह छोड़नी चाहिये। इस दिशा में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। यह दिशा वंश-वृद्धि में भी सहायक होती है। यदि यह दिशा दूषित होगी तो व्यक्ति को मान सम्मान में हानि मिलती है, पितृदोष होता है।

- पूर्व दिशा स्वच्छ, साफ-सुथरी होनी चाहिये, ऐसा प्रयास करें कि टॉयलेट पूर्व दिशा में न हो।
- पूर्व दिशा ऊँची नहीं होनी चाहिये, ऊँचा होने पर मकान मालिक दरिद्र बन जायेगा। संतान अस्वस्थ तथा मंदबुद्धि होगी।

- यदि पूर्वी दिशा में निर्मित मुख्य द्वार या अन्य द्वार आग्नेयमुखी हों तो द्रिद्रता, अदालती चक्कर, चोरी अग्नि-भय बना रहेगा।

- यदि पूर्वी भाग में कूड़ा-करकट, पत्थर-मिट्टी के टीले हों तो धन और संतान की हानि होती है।

- पूर्वी दिशा में खाली जगह न हो और कुछ ऊँचा बनाकर पश्चिमी दिशा में बरामदे को ढलानदार बनाया गया हो तो ऐसे घरों में रहने वालों को नेत्र विकार, लकवा आदि रोग होते हैं।

दोष-निवारण के लिये सूर्य यंत्र की स्थापना करें। सूर्य को अर्घ्य दे एवं सूर्योपासना करें।

पश्चिम-दिशा - जब सूर्य अस्तांचल की ओर होता है, वह दिशा पश्चिम दिशा कहलाती है। इस दिशा के स्वामी वरुण देव हैं और यह दिशा वायु तत्व को प्रभावित करती है और वायु चंचल होती है, अतः यह दिशा चंचलता प्रदान करती है। यदि भवन का द्वार पश्चिम मुखी है तो वहाँ रहने वाले मनुष्यों का मन चंचल होगा, पश्चिम दिशा सफलता यश और भव्यता, कीर्ति प्रदान करती है।

पश्चिम दिशा के दोष :- पश्चिम दिशा का स्वामी वरुण है एवं प्रतिनिधि ग्रह शनि है। पश्चिम दिशा से कालपुरुष के पेट, गुप्तांग एवं जननांग का विचार किया जाता है। यदि ऐसे घर का मुख्य मार्ग पश्चिम दिशा वाला हो तो गलत है। इस कारण ग्रह स्वामी की आमदनी ठीक नहीं रहेगी और उसे

गुप्तांग की बीमारी होगी। यदि घर की पश्चिम दिशा में दरार हो तो गृहस्वामी की आमदनी अव्यस्थित रहती है।

पश्चिम भाग के कारण शनि, दरार के कारण केतु कुँएँ के कारण चंद्रमा और चट्टान के कारण मंगल अर्थात् शनि, केतु, चंद्र एवं मंगल का मिला-जुला प्रभाव उस घर में रहने वालों पर पड़ेगा। ऐसी स्थिति में मकान मालिक अवरोध, संघर्ष एवं असफलता का शिकार होता है। इस संबंध में अन्य बातें निम्नलिखित हैं :-

- पश्चिम में रसोई घर हो तो गृह स्वामी बहुत धन कमायेगा, लेकिन उस धन में बरकत नहीं होगी।
- पश्चिम में स्नानगृह अथवा गृहस्वामी का शयनकक्ष हो तो पति-पत्नि बहुत ही कम समय तक इकट्ठे रह पायेंगे। इसका कारण झगड़ा न होकर पति-पत्नि द्वारा बार-बार यात्रा करना अथवा नौकरी की जगह दूर होना भी हो सकता है।
- यदि पश्चिम में अग्निस्थल हो तो घर में निवास करने वालों को शनि-मंगल के प्रभाव के कारण गर्मी, पित्त एवं मरसे की शिकायत होगी।
- पश्चिम भाग में स्थित द्वार नैऋत्य दिशामुखी हो तो लंबी बीमारी, असामयिक मृत्यु वारस्तु के स्तर से निम्न हो तो धन हानि और अस्वस्थता होगी।
- पश्चिम भाग का पानी या बरसात का पानी पश्चिम से होकर बाहर निकले तो पुरुष लंबी बीमारियों के शिकार बनते हैं। इन दोषों के निवारण के लिए घर में वरुण यंत्र की स्थापना करें व शनिवार का व्रत करें।

उत्तर दिशा :- उत्तर दिशा सुख-संपत्ति, धन-धान्य एवं जीवन में सभी प्रकार के सुख प्रदान करती है। भवन निर्माण करते समय इसे अधिक अधिक से खुला रखना चाहिए, यदि इस दिशा में निर्माण करना परम आवश्यक हो तो इस दिशा के निर्माण के अनुपात में थोड़ा नीचे रखना चाहिए। वास्तुशास्त्र में उत्तर मुखी मकान व दुकान को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।

उत्तर दिशा-दोष :-

- यदि उत्तरी राजमार्ग वाले मकान की उत्तर दिशा में पूजाकक्ष, अतिथिकक्ष या कार्यालय हो तो यह शुभ है, यदि उत्तर दिशा में दरार या टूटी दीवार हो तो घर का कोई व्यक्ति किसी स्त्री के कारण परेशान रहेगा।
- अगर उत्तर दिशा में रसोईघर हो तो घर में नित्य कलह होती रहेगी।
- यदि उत्तर दिशा में पुरानी वस्तुओं का संग्रह हो और गलियारा खाली व संकरा हो तो उस परिवार के लोग दुर्भाग्यशाली होंगे। उनकी संपत्ति का धीरे-धीरे हास हो जायेगा।

- उत्तरी भाग के द्वार वायव्यमुखी हों तो चोरी एवं अग्नि भय ।
- उत्तरी दिशा के चबूतरे घर के मध्य स्थान की अपेक्षा उन्नत हों तो अधिक खर्च, अशांति एवं कर्ज बढ़ेगा ।

दक्षिण दिशा - आमतौर पर दक्षिण दिशा को अच्छा नहीं मानते, क्योंकि दक्षिण में यम का निवास माना गया है और यम मृत्यु के देवता हैं अतः आमजन इसे मृत्यु तुल्य दिशा मानते हैं मगर ये सबसे समृद्धशाली दिशा है । यह धैर्य व स्थिरता की प्रतीक है, यह दिशा सभी बुराईयों को नष्ट करती है ।

दक्षिण दिशा दोष -

- भवन-निर्माण करते समय इस दिशा को पूर्णतः बंद रखना चाहिये ।
- दक्षिण दिशा में भारी सामान रखना चाहिये या निर्माण करना चाहिये ।
- यदि दक्षिण दिशा में कुंआ या दरार है तो गृह स्वामी बीमार होगा तथा गृह सुख नहीं भोग पायेगा ।
- दक्षिण भाग में खाली जगह अधिक हो तो आर्थिक परेशानी व स्त्रियों के लिये अशांतिकारक होगा ।
- दक्षिण दिशा के द्वार नैऋत्य दिशा में हों तो दीर्घ व्याधियों व शत्रु भय, आर्थिक हानि, बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है ।
- दोष निवारण के लिये दक्षिणावृत्त सूंडवाले गणपति द्वार के अंदर-बाहर लगाएँ, हनुमान जी की उपासना करें । दक्षिण द्वार पर मंगल यंत्र लगायें ।

ईशान दिशा - पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य को ईशान कहते हैं । ईशान्य को देवताओं का निवास माना गया है । सूर्योदय की किरणें सबसे पहले हमारे घर के जिस भाग में पड़ें, वह ईशान दिशा कहलाती है । यह दिशा धैर्य, बुद्धि, ज्ञान, विवेक आदि प्रदान करती है । भवन में इस दिशा को पूरी तरह शुद्ध व पवित्र रखा जाना चाहिये । यदि यह दिशा दूषित होगी तो भवन में प्रायः कलह व विभिन्न कष्टों को प्रदान करने के साथ व्यक्ति की बुद्धि भी भ्रष्ट होगी ।

ईशान दिशा दोष -

- यदि घर या चारदीवारी का ईशान्य घट जाए तो पुत्र संतान की प्राप्ति नहीं होगी, यदि हो भी जाए तो वह विकलांग मतिभ्रमित तथा अल्पायु होगी ।
- यदि ईशान्य ऊँचा हो तो धनहानि, संतानहीनता और अनेक परेशानियाँ होंगी ।
- यदि ईशान्य में रसोईघर हो तो गृहकलह एवं धन नाश होगा ।

- यदि ईशान्य में टॉयलेट हो तो उस मकान के निवासी गृहकलह दीर्घव्याधि एवं दुश्चरित्रा के शिकार बनेंगे ।
- ईशान्य दिशा में कूड़ा-करकट अथवा पत्थरों का ढेर होने से शत्रुवृद्धि होगी, आयु कम होगी ।
- वास्तुदोष के निवारण के लिये - हर हालत में ईशान्य पवित्र रखें, शिवजी की उपासना करें, द्वार पर रुद्र तोरण लगाएँ ।

आग्नेय दिशा - पूर्व और दक्षिण दिशा को मिलाने वाले कोण को विदिशा कहा गया है । इस कोण में अग्नि तत्व का प्रभुत्व माना गया है और इसका संबंध स्वस्थ के साथ है । यदि इस दिशा में दोष होगा या दूषित होगी तो वहाँ रहने वाले सदस्यों में कोई न कोई हमेशा बीमार होता रहेगा । यदि भवन में यह कोण बढ़ा हुआ है तो पुत्र संतान को कष्टप्रद होकर राजभय आदि होगा ।

आग्नेय दिशा दोष -

- रसोई घर हमेशा आग्नेय में होना चाहिये, अगर रसोईघर की दीवारी टूटी-फूटी हो तो मकान मालिक की पत्नी बीमार रहेगी व उसका जीवन संघर्षपूर्ण होगा ।
- आग्नेय कोण केवल कोण के रूप में उन्नत हो तो अदालती विवाद बीमारी व अग्निभय के साथ कलह होगा ।
- यदि दक्षिण आग्नेय नीचा हो, नैऋत्य, वायव्य तथा ईशान ऊँचा हो तो घर के निवासी दरिद्र और अस्वस्थ होंगे ।
- दक्षिण में मुख्य द्वार हो और पूर्व उत्तर की सीमा मानकर पूर्व-आग्नेय में निकास हो तो द्वितीय संतान पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

वास्तुदोष निवारण - घर के द्वार के आगे पीछे वास्तुदोष नाशक हरे रंग के गणपति को स्थान दें । घर में गणपति की पूजा करें ।

नैऋत्य दिशा - दक्षिण व पश्चिम के मध्य कोण को नैऋत्य कोण कहते हैं । यह कोण व्यक्ति के चरित्र का परिचय देता है । यदि भवन में यह कोण दूषित होगा तो उस भवन के सदस्यों का चरित्र प्रायः कलुषित होगा और शत्रुमय बना रहेगा । अन्य विद्वानों के अनुसार इस कोण के दूषित होने से आकस्मिक दुर्घटना होने के साथ ही अल्प आयु में मृत्यु होने का भी योग होता है ।

नैऋत्य दिशा दोष - नैऋत्य दिशा का स्वामी राहू है। यह कालपुरुष की एड़ियों एवं नितंब को प्रभावित करता है। यदि घर में नैऋत्य में खाली जगह है, गड्ढा है, भूतल है या कांटेदार वृक्ष हैं तो गृहस्वामी बीमार, शत्रुओं से पीड़ित एवं संपन्नता से दूर रहेगा।

- नैऋत्य हमेशा भारी होना चाहिये, परंतु यदि वहाँ खाली जगह है और जन्मकुंडली में राहू अकेला है, तो गृहस्वामी का खजाना खाली रहेगा।
- यदि नैऋत्य में रसोई घर है तो पति-पत्नी में नित्य कलह होगा। यदि वहाँ शयनकक्ष है तो गृहस्वामी ऐशो-आराम से रहेंगे।
- दक्षिण नैऋत्य मार्ग प्रहार से घर की नारियाँ भयंकर व्याधियों से पीड़ित होंगी। इसके साथ ही नैऋत्य में कुंआ हो तो आत्महत्या, दीर्घ रोग अथवा मृत्यु की भी संभावना होती है।
- दक्षिण नैऋत्य, पश्चिम नैऋत्य में चारदीवारी अथवा द्वार हो तो अपयश, कारावास, दुर्घटना, हत्या या पक्षाघात के योग होंगे। ये द्वार, शत्रु के स्थान हैं।
- दक्षिण पश्चिम में खाली स्थान हो, उत्तर एवं पूर्व में न हो और उत्तर-पूर्व को सीमा बनाकर निर्माण करवाया जाए तो आर्थिक हानि के साथ पुत्र हानि भी होगी।
- नैऋत्य दिशा में कुँए एवं गड्ढे हों तो घर की स्त्री पुरुष गंभीर रोगों के शिकार होंगे। नैऋत्य दिशा का जल दक्षिण के परनाले द्वारा बाहर निकलता हो तो स्त्रियों पर तथा पश्चिम के परनाले द्वारा निकलता हो तो पुरुषों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। नैऋत्य बढ़ा हुआ हो तो शत्रु, कोर्ट-कचहरी एवं ऋण संबंधी कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी।

वास्तुदोष निवारण - घर के पूजागृह में राहू यंत्र स्थापित करना तथा नित्यप्रति उसका पूजन करना यथेष्ट होगा। घर के मुख्य द्वार पर भूरे या मिश्रित रंग के गणपति को प्रतिष्ठित करें।

वायव्य कोण - पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा को मिलाने वाली विदिशा को वायव्य कोण कहते हैं। जैसे कि नाम से विदित होता है कि यह कोण वायु का स्थान माना गया है, यह हमें शक्ति, स्वास्थ्य, दीर्घायु, व्यवहारिकता आदि प्रदान करता है। भवन में यदि इस दिशा में दोष हो तो शत्रुता, आयु आदि का हास होता है।

वायव्य दिशा दोष -

- यदि वायव्य में शयनकक्ष है तो घर की स्त्रियाँ अस्थिर मन मस्तिष्क वाली होंगी एवं घर में अतिथियों का जमघट बना रहेगा। वायव्य कक्ष के आग्नेय में चूल्हा बना सकते हैं।

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

- यदि वायव्य ईशान की अपेक्षा निम्न हो और कुंऐ व गड्ढे भी हों तो उस मकान के निवासियों को अदालती कार्यवाही तथा बीमारियों से जूझना पड़ेगा ।
- वायव्य ब्लॉक में उत्तरमुखी द्वार हो और पूर्वी उत्तर दिशाओं को हद बनाकर निर्माण करवाया जाए तो घर के निवासी ऋणग्रस्त होंगे ।
- उत्तर में मुख्य द्वार हो, पूर्वी दिशा में खाली स्थान न हो, अन्य मकान से साथ हो तथा दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा खाली स्थान अधिक हो तो ऐसा घर अनेक समस्याओं का केन्द्र बनेगा ।

वास्तु दिशा दोष निवारण - अपने घर में चंद्र यंत्र लगाएँ, द्वार पर श्वेत गणपति तथा उनके आगे पीछे रजतऋतु श्री यंत्र लगायें ।

2.6 पुर निवेश

2.6.1 हमारे शास्त्रों में पुर व नगर नियोजन (Town Planning) के संबंध में अनेक जगह उल्लेख किया गया है, अर्थात् नगर बसाने का कार्य प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। वर्तमान में अधिकांश नगरों को नियोजित किया जा रहा है। यदि नगर-नियोजन की योजना के साथ वास्तु सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए इनका भरपूर प्रयोग किया जाये तो हम थोड़े प्रयास से ही लाभान्वित हो सकते हैं।

सुनियोजित नगर बसाने का ज्ञान भारत में हड़प्पा-संस्कृति युग से मिलने लगा है। वेदों में अनेक पुरों(नगरों) का उल्लेख हुआ है। पाश्चात्य कालीन संस्कृत साहित्य में 'पुर' शब्द का प्रयोग नगर के अर्थ में हुआ है। उत्तर वैदिक काल से नगरों की संख्या में वृद्धि हुई है, राजनैतिक व्यापारिक एवं धार्मिक कारणों से विभिन्न नगरों के बीच आवागमन की सुविधाएँ बढ़ीं और बड़ी सड़कों का निर्माण हुआ। समृद्ध प्राचीन नगरों में पुष्कलावती, पुरुषपुर, तक्षशिला, शाकल इंद्रप्रस्थ, हस्तिनापुर कान्यकुब्ज, मथुरा, अयोध्या, वाराणसी, श्रावस्ती, वैशाली, पाटलीपुत्र, राजगृह, द्वारका आदि उल्लेखनीय हैं।

सुरक्षा की दृष्टि से नगर के चारों ओर खाई (परिखा) बनाई जाती थी, जिनमें प्रायः नदी का जल भरा रहता था। नगर-रक्षा के लिये दूसरा विधान नगर के चारों ओर दीवार(प्राकार) का था, प्राकार पत्थर, ईंट व मिट्टी की बनाई जाती थी। कभी-कभी मिट्टी की चौड़ी दीवार के ऊपर पत्थर या पकी ईंटों की चुनाई की जाती थी। प्राकारों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बुर्ज(अट्टालक) बनाये जाते थे, अट्टालकों पर सैनिक नियुक्त रहते थे, नगर में प्रवेश के लिये कई मुख्य तथा गौण द्वार बनाए जाते थे, इन द्वारों में भी रक्षक तैनात रहते थे। वे नगर में प्रवेश करने वालों तथा जाने वालों पर नजर (निगरानी) रखते थे। प्रमुख द्वारों के नाम प्रायः देवताओं के नाम पर या उन नगरों के नाम पर रखे जाते थे, जिनकी ओर उन द्वारों से होकर मार्ग जाते थे।¹

नगर के भीतर मार्गों की उचित व्यवस्था होती थी मुख्य मार्ग एक - दूसरे को समकोण पर काटते थे। उनके द्वारा विभाजित क्षेत्रों में विशेष वर्ग के लोगों को बसाया जाता था। राजप्रासाद नगर के प्रमुख स्थान पर बनाया जाता था तदनुसार भवनों का निर्माण किया जाता था। पक्की सड़कों में पत्थरों, ईंट और कंकड़ का प्रयोग किया जाता था, नालियों की ठीक व्यवस्था नगर योजना का प्रमुख अंग थी। नगरों में सार्वजनिक उपयोग के लिये मंदिर, स्तूप, जलाशय, उद्यान, विद्यालय, सभाभवन, बाजार, आरोग्यशाला आदि स्थान बनाये जाते थे। भारत का प्राचीन नागरिक जीवन समृद्ध और उन्नत हो सका, इसका मुख्य कारण नगर में आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था थी।²

1. बाजपेयी श्री कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुशास्त्र का इतिहास, पृ. 7

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 22

2.6.2 वैदिक पुर :-

ऋग्वेद में दीवारों वाले पुरों के उल्लेख मिलते हैं, जो चौड़े एवं विस्तृत होते थे। ऋग्वेद में पत्थर के बने पुरों (अश्वमयी पुर) कुछ धातु का भी प्रयोग होता था। बलोचिस्तान सिंध तथा पंजाब में हड़प्पा पूर्व तथा हड़प्पा युगीन कई इमारतें मिली हैं जिनमें पत्थर के प्रयोग का स्पष्ट पता चलता है।

मैकडॉनल तथा कीथ का यह विचार है कि वैदिक पुर मुख्यतः बाह्य आक्रमणों से रक्षा के साधन थे, वे खाई तथा 'शंकु' आदि से सुरक्षित कड़ी मिट्टी के प्राचीरों से युक्त होते थे। भारत में अनेक प्राचीन नगर स्थलों में उत्खनन से कई नगरों की रक्षा दीवारों को प्रकाश में लाया गया है। 'मध्यप्रदेश' के सागर जिले में एरण नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल की खुदाई में लगभग ई.पू. 1900 में वहाँ प्राकारयुक्त नगर बसने का प्रमाण मिला है। ताम्राश्वयुगीन वह बस्ती एरण में ई. पू. 700 तक कायम रही। नगर की रक्षा-दीवार काली-पीली मिट्टी से तीनों ओर घेरती हुई बनाई गई थी। चौथी ओर बीना नदी रक्षा पंक्ति का काम देती थी। प्राचीनतम रक्षा-दीवार लगभग 30 मीटर चौड़ी थी, बाद में उसकी चौड़ाई 46.97 मीटर हो गई। दीवार की ऊँचाई 6.41 मीटर पायी गई। इस दीवार से 16.47 मीटर की दूरी पर परिखा या खाई थी, जिसमें बीना नदी का जल भरा रहता था, इस खाई की चौड़ाई 36.60 मीटर तथा गहराई 5.49 मीटर थी।¹

2.6.3 - पूर्व में पुर निर्माण को जाति व वर्ण के आधार पर नियोजित किया जाता था।²

पूर्व दिशा - व्यापार, शिल्पकार, क्षत्रिय

पश्चिम दिशा - लघु उद्योग, कारीगर, चमड़े के कारखाने, सेवक, शुद्र

उत्तर दिशा - संन्यासियों की कुटिया, ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञानी

दक्षिण दिशा - वैश्य, सुरा एवं मांस व्यापारी, मनोरंजन स्थल

उत्तर-पूर्व - गौ शाला, घी बेचने वाले, फल व डेयरी

उत्तर-पश्चिम - औषधालय, बाजार, नौकर, शराब बेचने वाले

दक्षिण-पूर्व - स्वर्णकार, लोहार, लेखापाल, कर्मशालाएँ

दक्षिण-पश्चिम - शास्त्रागार, वनौषधि, भंडार, केवट

नगर नियोजन में आठ प्रकार के नगरों का उल्लेख निम्न है -³

1. राजधानी 2. नगर 3. केवल 4. पुर 5. खेट 6. खरबत 7. कुब्जक 8. पट्टन

1. ऋग्वेद - 1, 166, 8; 7, 15, 14

2. शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ, समराङ्गण सूत्रधार, वास्तुशास्त्रीय भवन निवेश, पृ. 99, 108

3. शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ, मानसार 10/44/66

4. मैकडॉनल तथा कीथ, वैदिक इण्डेक्स, जिल्द 1, पृ. 538-39

राजधानी – जिस नगर में राजा का महल मध्य में हो, जहाँ धनी व विद्वान लोग निवास करते हों जो नदी के किनारे हो व जिसमें विष्णु भगवान का मंदिर नगर के द्वार पर हो ऐसे नगर को 'राजधानी' कहते हैं।

नगर – जिस नगर में चार बड़े द्वार चारों दिशाओं में हों, गोपुर नगर कहलाते हैं।

केवल – जिस नगर में छावनी, व्यापारी वर्ग, दुकानें अधिक हों, ऐसे नगर को केवल कहा जाता है।

पुर – जिस नगर में बगीचे ज्यादा होते हैं, सभी वर्गों के लोगों का निवास होता है, सात भगवानों के मंदिर होते हैं, उन्हें पुर कहा जाता है।

खेट – वह नगर जो नदी या पर्वत के किनारे बसा हो जिसमें अधिक शुद्र निवास करते हों व नगर को घेरे हुए एक बड़ी दीवार हो, वह खेट कहलाता है।

खरबत – जिस नगर के चारों ओर की भूमि उठी हुई हो, विभिन्न जाति के लोग निवास करते हों, खरबत कहलाता है।

कुब्जक – वह नगर जो खेट और खरबत के बीच स्थित हो, सभी जाति के लोग निवास करते हों, व नगर को घेरने वाली कोई दीवार ना हो, कुब्जक कहलाता है।

पट्टन – वह नगर जो नहर, नदी आदि के पास हो, नगर को घेरे हुए बड़ी दीवार हो, सभी जाति के लोग रहते हों, व्यापारी वर्ग अधिक हो व गहने, कपड़े, कपूर आदि का व्यापार होता हो अर्थात् निर्यात होता हो, पट्टन कहलाता है।¹

मनुष्यालय चंद्रिका के अनुसार—

नगरस्य सहस्रादि द्विसहस्रान्तं च दण्डमान स्यात्

पत्तनसंज्ञं तद्वत् पोतान्वितवारि (नि) धितटोपेतम् ॥

नगर की चौड़ाई एक हजार से दो हजार दंड होती है, यही तट (समुद्र) के किनारे तथा पोत से समन्वित होने पर पत्तन कहलाता है।²

पुरमिति नरवरभवप्रधानमाहुर्वणिग्जनादियुतम्।

नगरं राजवरालयसकलजानागारमण्डितं विदितम् ॥

प्रधान (राजा) सहित वणिज आदि से युक्त होने पर पुर कहलाता है। राजा व सम्मानित जनों के आलय तथा सभी जनों के घरों से युक्त हो नगर कहा गया है।

1. झा तारिणीश, अग्निपुराण पृ. 568

2. अच्युतन ए., प्रभु बालगोपाल टी.एस., मनुष्यालय चंद्रिका अध्याय - 3, पृ. 100

2.6.4 नगर वास्तु व वास्तु पुरुष-मंडल

गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रेवं प्रतिष्ठिता देवाः ।

तेषु च यथानुरूपं वर्णा विप्रादयो वास्याः ॥

अर्थात् जिस प्रकार घर में वास्तुपुरुष है, उसी तरह संपूर्ण नगर व ग्राम में भी पद व वास्तु पुरुष की कल्पना करके ही निर्माण करना चाहिये । नगर-वास्तु के लिये 64 पद वास्तु को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिये । वास्तु चक्र में सभी देवता, नवग्रह तथा सूर्य-चंद्र आदि की रश्मियाँ, संज्ञाएँ निहित हैं, चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं सहित आकाश-पाताल का समग्र प्रारूप वास्तु पुरुष के 81 या 64 पदों में निहित है ।¹

सभी देशों की प्रगति वहाँ के सहज एवं जलीय यातायात के साधनों पर निर्भर करती है । देश के आंतरिक भागों के बीच के अंतर सहजता से सार्वजनिक एवं कच्चे माल की दुलाई के लिये कम हो सकते हैं, यह इस बात का संकेत देता है, कि देश भर में अच्छी सड़कों का निर्माण, सामान्य यातायात कितना आवश्यक है परंतु यह तभी संभव हो सकता है, जब हम यह देश के हर नगर पर लागू करें² ।

नगर निर्माण के पूर्व उसकी योजना तैयार करना, वास्तु की दृष्टि से उसकी कार्य प्रणाली निर्धारित करना अति-आवश्यक है । सभी प्रकार के वास्तु स्थापना का कार्य करने का आधार, भूमि है । वास्तु विद्या में भूमि चयन एवं विश्लेषण को बहुत महत्व दिया है, जिससे मानवों को बसाने की क्रिया नगर की स्थिति को ध्यान में रखकर, भवनों के मानचित्र, भूमि की अनुकूलता के आधार पर हो ।

निर्माण के पूर्व वास्तुशास्त्रीय नियमों को प्रथम स्थान देना चाहिये जैसे-

1. भूमि चयन 2. दिशा निर्धारण 3. भूमि का ढलान
4. जलवायु 5. जल की उपलब्धता 6. पर्यावरण
7. भूमि की स्थाई सीमा

इत्यादि बातों का ध्यान रखकर, उनका अवलोकन कर कार्य प्रारंभ करना चाहिये ।

2.6.5 प्राचीन शास्त्रानुसार कुछ साधारण सैद्धांतिक योजनाओं को व्यवहार में लाया जा सकता है ।

1. भूमि का उचित उपयोग जैसे- धार्मिक, सामाजिक, व्यापारिक, औद्योगिक तथा आवासीय भवनों के लिये उचित स्थान पर निर्माण करने की योजना तैयार करनी चाहिये । नगर/ शहर में सामाजिक संस्थान, शिक्षण संस्थान तथा अस्पतालों को मुख्य स्थान देना चाहिये । इन्हें इस तरह नियोजित किया जाना चाहिये कि इन स्थानों तक सहजता से पहुंचा जा सके ।³

1. मिश्र डॉ. सुरेशचन्द्र, बृहदसंहिता-वराहमिहिर, पृ. 587

2. नम्बूदरीपाद कन्नीप्पयूर कृष्णनन् - स्थपति, पृष्ठ - 35

3. प्रभु बालगोपाल टी.एस. अच्युतन ए. एटैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या, पृ. 134-135

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

2. शहर को खंडों में विभाजित करें व योजनानुसार हर खंड में दिशाओं व श्रेणियों के अनुसार निवास स्थान, व्यवसायिक स्थल, औद्योगिक संस्थानों को स्थान दें।
3. इन बिंदुओं के साथ-साथ उद्यान क्रीडास्थल, कुएँ, तालाब आदि भी एक स्मरणीय बिंदु हैं, जो सार्वजनिक रूप से अत्यंत उपयोगी हैं।
4. विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के लिये उन्हें अलग-अलग भागों में बांटा जाना चाहिये, जैसे मांस बिक्री की दुकानें, सब्जी बाजार इत्यादि श्रेणियों के अनुसार उनका विभाजन करना चाहिये।
5. इन सभी योजनाओं को पूर्ण करने के साथ-साथ सड़क निर्माण योजना तैयार करना अति आवश्यक है।
6. मुख्य बाजार, शिक्षण संस्थान, सिनेमा हॉल के आसपास की सड़क चौड़ी होनी चाहिये, क्योंकि सार्वजनिक स्थल होने के कारण इन स्थानों पर अत्याधिक भीड़-भाड़ होती है। गाड़ी पार्किंग की व्यवस्था सभी सार्वजनिक स्थलों पर होनी चाहिये जिससे वाहनों की अव्यवस्थाओं के कारण सड़क यातायात में अवरोध न उत्पन्न हो।
7. धार्मिक स्थलों के लिये भी बड़ी जगह का चुनाव करना आवश्यक है, क्योंकि त्यौहारों उत्सवों के समय मंदिरों में बहुत चहल-पहल होती है, मंदिर में प्रदक्षिणा के लिये, बड़े उत्सवों में शोभायात्रा व रथों के आने जाने के लिये मार्ग चौड़े होने चाहिये।
8. सभी प्रतिरूपों का आधार वास्तुपुरुष मंडल ही है, अतः अष्टवर्ग (8 x 8) भूमि का विभाजन बुनियादी जाल बनाता है, जो गाँवों के विकास व बड़ी आबादी वाले भागों को भी अनुकूल बनाता है, बशर्ते खंड की चौड़ाई 8 दंड से 16 दंड करें। अलग-अलग श्रेणी के लोगों के लिये मकान चुनने की स्वतंत्रता योजना में लचीली हो सकती है। बड़े खंड की चौड़ाई राजसी या शाही निवास के लिये स्वीकृत कर सकते हैं। आनुपातिक माप पद्धति वातावरण व विशेषताएँ छोटे या बड़े शहरों में बसने के लिये अलग-अलग खंड सुनिश्चित करता है।
9. नगर की दक्षिण दिशा व पश्चिम दिशा में यदि नदी, बड़ा तालाब आदि हो तो नदी के उस पार (अर्थात् नदी के दूसरे ओर पर) भी नगर का निर्माण करना चाहिये। दूसरी ओर निर्माण करने से दक्षिण व पश्चिम दिशा में नदी या अन्य जलीय स्थान होने से जो भी हानि, नुकसान व अन्य प्रभावों के कारण तरक्की में रुकावट होती थी, उस पर रोक लगाई जा सकती है एवं ऐसा करने से नगर भी प्रगति की ओर अग्रसर होगा। उदाहरण के तौर पर, सूरत जो कि गुजरात राज्य में स्थित है ट्विन सिटी (Twin City) के नाम से भी जाना जाता है, वहाँ भी नदी के दोनों ओर नगर का निर्माण किया गया है। वह नगर कपड़ा-व्यवसाय में दिनोंदिन तरक्की कर रहा है।

2.7 वास्तु शास्त्र की प्रांत एवं देशस्थ प्रासंगिकता

‘वसुधैव कुटुंबकम्’ की विचारधारा से युक्त हमारे देश की संस्कृति ने सदैव अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना का परिचय दिया है तथा प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करते हुए “सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयः” की भावना व्यक्त की है। यह प्रार्थना आज भी दोहराई जाती है, वेदों का सबसे प्रिय सिद्धांत विश्व-स्तर पर भिन्नता में एकता है, वैदिक संस्कृति के आज तक जीवित रहने का प्रतीक यह प्रार्थना है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपनी मूलप्रकृति में आध्यात्मिक है, लेकिन आज भारत में बहुत परिवर्तन आ चुका है, संक्रमण की प्रक्रिया अब भी चल रही है। गतिशीलता, आर्थिक अवसर, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, औद्योगिक, राजनैतिक आधार के विस्तार व जनमाध्यमों के प्रभावों ने पुरानी परंपराओं को समाप्त कर दिया है। इसके फलस्वरूप आक्रामक भौतिकवाद का प्रभाव अत्यधिक बढ़ता जा रहा है और हमारी पुरानी भारतीय संस्कृति धूमिल पड़ती जा रही है।

जीवन को सुखी-सुरक्षित और शांत बनाने के लिए मनुष्य जितने भी साधन जुटा रहा है, वह उतना ही दुखी व अशांत होता जा रहा है। भारतीय जीवन शैली पर पश्चिमी शैली ज्यादा ही प्रभावी होती जा रही है और हिंसा भ्रष्टाचार, संघर्ष, अत्याचार, प्राकृतिक प्रकोप भी उसी गति से बढ़ रहे हैं। पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने इस संपूर्ण विश्व को भौतिकवादी यांत्रिकी दृष्टि से देखा और यह माना कि विश्व अपने आप प्राकृतिक शक्तियों से चलने वाली मशीन है जिसके कल-पुर्जे निश्चित नियमों से चलते रहते हैं।

न्यूटोनियन और डार्विनियन सिद्धांत के अनुसार मनुष्य की सत्ता सर्वोच्च है और उसे प्रकृति का चाहे जैसा उपभोग करने का विज्ञान सम्मत अधिकार मिला हुआ है। फलस्वरूप मनुष्य इस धरती और ब्रह्मांड का अपनी वैज्ञानिक बुद्धि और शक्ति से शोषण करने लगा। मनुष्य ने प्रकृति के साथ मिल कर नहीं, उससे लड़कर और उस पर अपनी जीत दर्ज कर जीना सीखा। परिणाम में पर्यावरण विनाश की समस्या प्राकृतिक प्रतिक्रिया के रूप में सामने है, जितना उपाय करते हैं समस्या उतनी ही जटिल होती जा रही है।¹

अपनी सुविधाओं की आपूर्ति के लिए दूसरों के सुख को नष्ट करो, फिर क्षणिक सुख के पश्चात् स्वयं दुखी बन जाओ, यह प्रवृत्ति आदर्श नहीं होगी एवं आगामी पीढ़ी के लिए अत्यंत दुखदायक साबित

1. शर्मा प्रो. सुरेश्वर, विज्ञान भारती प्रदीपिका भाग-2 पृ. 3

होगी। इन परिस्थितियों से बाहर आने के लिए, सुख-शांति को अपनाने के लिए, प्राचीन संस्कृति को अपनाने के लिए फिर एक बार भूतकाल पर नजर डालना आवश्यक है। प्राचीन काल में शांति नहीं थी, उसी शांति की खोज में महर्षियों ने बहुत काम किया, इन महर्षियों के मस्तिष्क से अनेक शांतिक प्रणालियाँ विकसित हुई, उन प्रणालियों में स्थापत्यवेद (वास्तुशास्त्र) की भी अहम् भूमिका थी।

नगर प्रांत व देश के लिए वास्तु का महत्व - पुर-निवेश अथवा नगर-निवेश का वास्तु अनुरूप संरचना में विशेष महत्व है। 'समरांगण सूत्रधार' में इस संबंध में विस्तृत वर्णन है 'वास्तव में भवन-निवेश, पुर निवेश का अंग है या ऐसा कहें कि भवन निवेश के लिए पुर-निवेश प्रथम इकाई है।

हम देखते हैं कि कई घर, भवन, नगर, प्रांत व देश बहुत सम्पन्न हैं तो कई पिछड़े हुए हैं। किसी की संपन्नता का या विपन्नता का आँकलन वहाँ की पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा औद्योगिक प्रगति से किया जाता है, जब कि वास्तुशास्त्र की दृष्टि से यदि वहाँ की भौगोलिक व भूखंड की स्थिति पर विचार किया जाए तो आश्चर्य जनक तथ्य सामने आते हैं।

भारत में अनेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ है, अनेकानेक आक्रमण भारत ने झेले हैं। विगत पन्द्रह सौ वर्षों में युद्ध, राजनैतिक अस्थिरता व झंझावतों के थपेड़े लगते रहे हैं, उसका मुख्य कारण पूर्व, दक्षिण से पश्चिम तक तीनों दिशाओं में क्रमशः बंगाल की खाड़ी, हिंद महासागर और अरब सागर से घिरा होना है। इसलिये यह बार-बार विदेशी घुसपैठ, षड़यंत्र व आक्रमण का शिकार होता रहा है। लेकिन भौगोलिक स्थिति में 'वास्तु के अनुसार' भारत की भूमि की पूर्व दिशा की ओर ढलान रहने से यह देश अपनी प्रभुता स्थापित करता है।

यह देश पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण इन चारों दिशाओं में सिकुड़ता चला गया है। भारत के ईशान्य कोने में पानी या गर्तों के विपरीत हिमालय की ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं। कश्मीर की समस्या के कारण इस देश का महत्वपूर्ण ईशान्य के कोने का हिस्सा कम हो गया है, यह भी वास्तुशास्त्र के विपरीत है। भारत के पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी, पश्चिम की ओर अरब सागर तो दक्षिण की ओर हिंद महासागर है, अर्थात् आग्नेय और नैऋत्य दिशाओं की ओर पानी होने के कारण प्राचीनकाल से आक्रमण होते रहे हैं। प्राचीनकाल में भारत की पूर्व दिशा भी बहुत लंबी चौड़ी थी परंतु आज बंगाल का कुछ भाग ब्रम्हदेश (म्याँनमार) या नेपाल इनका भारत के मानचित्र पर कोई स्थान नहीं रहा इसलिए भारत की प्राचीन काल की समृद्धता भी आज नहीं रही किंतु भारत देश की भूमि का झुकाव

पूर्व दिशा की तरफ होने के कारण हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक विचार धाराएँ पूरी दुनिया को प्रभावित करती हैं ।

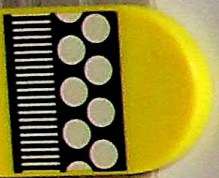
“वास्तु” का संबंध किसी एक घर, मुहल्ले, ग्राम व नगरों से नहीं है । वास्तु का संबंध हर उस स्थान से है जहाँ भवन निर्माण होता है , जिस स्थान पर निर्माण हो रहा है वह तो वास्तुनुरूप बनाया है, किंतु जिस स्थान अथवा क्षेत्र में हम रह रहे हैं, वह वास्तु के अनुरूप नहीं है, तो हमारे घर में किए गये वास्तु को पूर्णता प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि उस घर के साथ-साथ उस मुहल्ले, कॉलोनी का निर्माण भी वास्तुनुरूप होना चाहिये एवं जिस नगर में हम रह रहे हैं उस नगर को वास्तुशास्त्रानुसार निर्माणित किया जाना चाहिये और प्रांत व देश भी अगर वास्तुशास्त्र के अनुसार निर्माणित किये जाते हैं तो हमारा देश वर्तमान की तुलना में कई गुना आगे होगा ।

आज हम भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालें तो आजादी के बाद भारत में नए प्रांतों का निर्माण व सीमांकन किया गया, जो तात्कालिक परिस्थितियों व भाषायी आधार पर किया गया ना कि वास्तुअनुसार किया गया । इसलिये हम भारत के कई प्रांतों में व्यापक असंतोष और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक असंतुलन देखते हैं । पिछले 4-5 सालों में कुछ प्रांतों का विभाजन हुआ जैसे मध्यप्रदेश में छत्तीसगढ़, बिहार में झारखंड व उत्तरप्रदेश में उत्तरांचल राज्यों का सीमांकन व विभाजन हुआ एवं नई भौगोलिक रचना के अनुसार नए राज्यों का उदय हुआ ।

भवन निर्माण के साथ अगर हम नगर, प्रांत व संपूर्ण देश को वास्तुनुरूप बनाने की एक सफल कोशिश करें तो हमारा देश सुख-शांति व समृद्धि प्राप्त करेगा ही साथ ही अमेरिका, जापान जैसे देशों की बराबरी करने में भी पीछे नहीं रहेगा ।

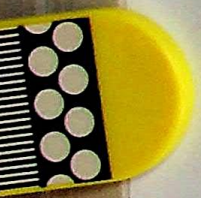
आज विश्व में अशांति मानव जीवन के हर क्षेत्र में अत्यंत तीव्र गति से व्याप्त हो रही है । आज मानव जिस भौतिकवादी वैज्ञानिक प्रगति से आशा लगाए बैठा है कि वह सुख, समृद्धि और सुरक्षा प्रदान करेगी, वही इस विश्व के समस्त वैभव, सौंदर्य और मानव संस्कृति को ही समूल नष्ट करने का कारण बन रही है ।

सौभाग्य से हमारे पास वास्तुशास्त्र है । मनुष्यमात्र को इसकी परम् आवश्यकता है, अपने सुखी और सुरक्षित जीवन के साथ दिव्य व्यक्तित्व निर्माण के लिये, अपनी संस्कृति एवं जीवन शैली के साथ सामूहिक राष्ट्र भावना को प्रखर बनाने के लिये और राष्ट्रीय व्यक्तित्व के दिव्य विकास के लिये जो हमारी चेतना के स्पंदन को आत्मा के मूल बिंदु से युक्त कर सकें । जो आत्मा की वृत्ति ‘वेद’-वेद की अभिव्यक्ति ‘विश्व’-विश्व रूप ‘ब्रम्ह’ से साक्षात्कार करा सकें । यही भावभूमि शोध-विषय ‘केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन’ का दिशा निर्देश है ।



अध्याय - तृतीय





3. वास्तुशास्त्रीय अनुशीलन की आधार भूमियाँ

3.1.1 भारतीय वास्तु शास्त्र का इतिहास

वैदिक वास्तु अर्थात् वास्तु का आरंभिक काल ईसा से हजारों वर्ष पूर्व अर्थात् आदियुग के प्रथम चरण की देन माना गया है। आर्यों का भारत आगमन भी कुछ हजार वर्ष पूर्व की सिंधु घाटी की सभ्यता से जुड़ा है, परंतु वैदिक वास्तु तो तब से प्रचलित है जबसे देवताओं के वास्तुकार विश्वकर्मा ने स्वर्ग लोक में सोने, चांदी और लोहे आदि के महल बनवाये थे।²

हिमालय की चोटियों से लेकर कन्याकुमारी तक और उत्तर-पूर्व में म्याँमार (बर्मा) की सीमाओं से शुरू होकर कच्छ के रण तक भारत के वास्तुशिल्प का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। भारत के वास्तुशिल्प पर नजर डालें तो ज्ञात होता है कि ईसा के जन्म के तीन हजार साल पहले भी नगर निर्माण और वास्तुकला बेहद उन्नत स्तर की थी। पंजाब में 'हड़प्पा' और 'सिंध' में किये गये उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से पता चलता है कि उस समय के शहरों को बेहद नियंत्रित तरीके से बसाया जाता था। घरों में 'स्नानागार' बनाए गये थे और पानी की निकासी का निश्चित प्रबंध था, इस सभ्यता के बाद वैदिक-युग (काल) के पर्याप्त प्रमाण अब देखने को नहीं मिलते, लेकिन यह माना जाता है कि शहरों के चारों ओर सुरक्षा के लिये दीवार बनाने की परंपरा की शुरुआत हुई थी जो ईसा के बाद 16वीं 17वीं शताब्दी तक जारी रही। शहर के चारों ओर सुरक्षा के लिये दीवार तथा उन पर गुंबद और शहर में आने जाने के लिये बनाई गई दीवारें तो आज भी देखी जा सकती हैं।¹

3.1.2 भारतीय कला (स्थापत्य या वास्तुकला) – भारतीय वास्तुकला के विकास एवं विस्तार के दृष्टिकोण से मौर्यकाल को स्वर्णिम काल कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में भारतीय कला के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई, इसी काल में सबसे पहले भवन-निर्माण में लकड़ी के स्थान पर पत्थर का प्रयोग किया गया है।

मौर्य सम्राट अशोक भारत के महान निर्माताओं में से था, अशोक के निर्माण-कार्य चार भागों में बांटे जा सकते हैं— नगर, गुफा, गृह, स्तूप या स्तंभ। स्तंभ-स्तंभ निर्माण तथा इसकी शैली मौर्यकाल की ही देन है। मौर्यकालीन स्तंभ कलाकृतियों के अद्वितीय उदाहरण हैं। लुम्बिनी, सांची, सारनाथ, कौशाम्बी, आदि स्थानों पर निर्मित स्तंभ काफी विख्यात हैं।³

1. भारतीय संस्कृति एवं भारत दर्शन, पृ. 64-66

2. आचार्य मृत्युंजय, वास्तुशास्त्र, पृ. 21

3. राय उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन, अध्याय -2, पृ.9

भारतीय स्थापत्य गुप्तवंश के शासनकाल (320 ईस्वी से 750 ईस्वी के बीच) में अपनी चरम सीमा पर था। इस काल में मंदिर सपाट छत वाले चौकोर तथा सादे गर्भगृह वाले होते थे, तथा उनके सामने स्तंभो पर आधारित बरामदा या लघु मंडप होते थे।

गुप्तवंश के बाद सन् 650 से 900 के बीच दक्षिण में चालुक्य, राष्ट्रकूट और पल्लव तथा उत्तर में पालन वंश के राजाओं के कार्यकाल के दौरान भारतीय स्थापत्य और वास्तुशिल्प के नमूनों के अवशेष आज भी विद्यमान हैं।

चौथी शताब्दी में सीरिया से आये ईसाई धर्मावलंबियों ने 'केरल' में चर्च बनाने शुरू किये। 'केरल' में बनने वाले चर्चों में हिन्दु मंदिरों की स्थापत्य कला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

भवनों का प्रारूप (डिजाइन) और निर्माण करने का रहस्य पुरातन विज्ञान तथा कला वास्तुशिल्पशास्त्र का मूल स्थापत्य वेद में है, जो चारों वेदों में से एक अथर्ववेद का अंश है। वेद संसार के दूसरे भागों के लिये नए नहीं हैं, सभी स्तरों के अनेक लोगों ने उन वैदिक विचारों की गहराइयों, प्रेरणाओं तथा अंतर्दृष्टि की अनेक वर्षों तक सराहना की है। अखंड भारत जो केवल अपनी आध्यात्मिक परंपरा में ही नहीं वरन् भौतिक संपदा में भी समृद्ध था, अपने आप में एक विश्व था, वह उत्तर में हिमालय से घिरा था और दूसरी दिशाओं में सागर और अभेद्य वनों से ढका हुआ था। बाह्य जगत से संपर्क का इसका एकमात्र खुला द्वार सिंधु नदी के पास उत्तर-पश्चिम में था।

रामायण में सात या आठ मंजिलों की इमारतों का वर्णन मिलता है। महाभारत में मय द्वारा निर्मित मयसभा तथा विश्वकर्मा द्वारा इंद्रप्रस्थ के निर्माण का उल्लेख मिलता है। विश्वकर्मा वही दिव्य वास्तुशिल्प विशारद हैं, जिन्होंने भगवान कृष्ण के अनुरोध पर द्वारका का निर्माण किया था और वे सब निर्माण प्राचीन भारत के अकल्पनीय स्वप्नलोक थे।

3.1.3 प्राचीन कालीन भारतीय वास्तुकला – प्राचीन काल से भारत में अपनी विशिष्ट वास्तु कला का विकास हुआ था। जिसका मुख्य कारण भौगोलिक विलगीकरण था। इसके क्रमबद्ध विकास के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं:-

- | | |
|-------------------------|--------------------------|
| 1. प्राचीन कालीन | 2. बुद्ध कालीन |
| 3. हिंदु कालीन | 4. हिंदु - मुस्लिम कालीन |
| 5. वसाहत (कालोनी) कालीन | 6. समकालीन |

इनमें प्रथम तीन कालावधी प्राचीन काल से संबंधित हैं तथा तत्पश्चात् की तीन विभिन्न संस्कृतियों के भारतीय जीवन पर पड़े प्रभाव परिणाम स्वरूप हैं।

(अ) प्राचीन कालीन

(I) सिंधु घाटी निर्माण (वास्तु) - (3000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व)

भारतीय वास्तुकला की शुरुआत 3000 वर्ष ईसा पूर्व से सिंधु घाटी सभ्यता के साथ हुई। उसकी जानकारी मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के उत्खनन के बाद ही हुई। मोहनजोदड़ो जो पूर्व नियोजित शहर के रूप में जाना गया। दक्षिण-उत्तर व पूर्व-पश्चिम, मुख्य मार्ग से इस शहर को चौरस भागों में विभाजित किया गया था। भवनों को पूर्व दिशाभिमुख रखते हुए उसे स्वयं पूर्ण बनाते हुए, प्रदेश के अंतर्गत सम्मिलित रखा गया था। शासक वर्गों हेतु प्रासाद, महल आदि की सुरक्षा हेतु चारों दिशाओं में मजबूत दीवारों से घेराबंदी की गई थी।

भंडार गृह का ढांचा 70 मीटर x 23 मीटर क्षेत्र में फैला था जिसमें कई कक्ष थे, जिसके सामने और चारों ओर खुला क्षेत्र रखा गया था, दूसरा स्नान गृह जो (12 मीटर x 9 मीटर x 2.5 मीटर) था। छोटे कक्षों द्वारा परिवेष्टित था।

सिंधु घाटी कालीन निर्माण शैली बहुत ही उपयोगी व खुली थी इसमें साधारणतः दीवारों के निर्माण में धूप में सिकी या जलाई गई ईंटों का प्रयोग किया गया था। सिंधु घाटी के शिल्प की खोज से अनेक स्थानों पर उत्तर-पश्चिम भारत में उत्खनन किये गए और नए स्थानों के बारे में जानकारी हासिल हुई। इसके पश्चात् हुए उत्खनन से यह जानकारी प्राप्त हुई कि वे अपने मूलरूप के साधे निर्माण थे, जिसमें ईंट के प्रयोग का कहीं भी दृश्य नहीं हुआ वे वेदकालीन साधे निर्माण थे।

(II) वैदिक वास्तुशास्त्र काल (1500 ईसापूर्व से 250 ईसा वर्ष पूर्व)

इस वास्तुशास्त्र की जानकारी प्रमुखतः वैदिक साहित्य तथा तात्कालिक निम्न अवशेष के द्वारा ही प्राप्त हुई है। वैदिक कालीन लोग मुख्यतः घुमक्कड़ और ग्रामीण जीवन व्यतीत करने वाले थे, उनकी झोपड़ी पहले-पहले वृत्ताकार थी, जो कि कालान्तर से वर्गाकार तथा अन्य आकारों में अर्धगोलाकृति छत जो कि गोलाकार बांस तथा घांस आदि से बनते थे। उसके पश्चात् घोड़े की नाल के आकार के छतों का उपयोग बौद्ध समुदाय द्वारा उनके चैत्य (प्रार्थना स्थल) की खिड़कियों में किया गया। उस समय कुछ झोपड़ियों का एक ग्राम होता था।

जो कि 3 ऊर्ध्वगामी नुकीले शूलों जिन्हें 9 समानांतर दंडों में से छेदकर पिरोया जाता था, इसी प्रकार के प्रवेश द्वार, ग्रामों में बनाए जाते थे, इस तरह के प्रवेश द्वार जिन्हें तोरणद्वार के नाम से जाना जाता था, बौद्धकालीन सुरक्षा के साधन माने गये।

... नलिक नलिप (५)

... (१५५५) ...

... (१५५५) ...

... (१५५५) ...

कुछ वर्षों के कालान्तर से वैदिक समाज द्वारा कुछ विकास करते हुए मजबूत व सुंदर शहरों का निर्माण, जिसमें एक मौर्य राजाओं की राजधानी "पाटलीपुत्र" थी।

(ब) बौद्ध कालीन शिल्प काल - (250 ईसा पूर्व से 750 ईस्वी तक)

अलैक्जेंडर के आक्रमण के कारण वैदिक शिल्प धीरे-धीरे ग्रीको-परशियन शैली से प्रभावित होता गया। बौद्ध धर्म के उत्थान के बाद इसमें भी सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्य और उसके प्रदर्शक शिल्प कला में अतिशय बदलाव देखने में आता है।

(1) अशोक शाखा - बौद्ध धर्म को शासकीय (राजधर्म) धर्म के रूप में मानने के बाद अशोक के समय धर्म की उत्तरोत्तर प्रगति हेतु साधारण लोगों में धर्म के प्रति विश्वास निर्माण करने के प्रयास किये गए। इसके मुख्य माध्यम अशोक शाखाएँ थीं जैसे - 1. स्तूप स्तंभ और चट्टानों को काटकर बनाई हुई गुफायें थीं।

स्तूपों का निर्माण भी बुद्ध के अवशेषों की स्मृति में किया गया था जो एक वृत्ताकार ईंटों का निर्माण (शिल्प) था, ये "हर्मिका तथा छत्रयष्टी" से युक्त होते थे। स्तूप के घेरे को समाविष्ट करते उसे सुरक्षित किया जाता था उसका सर्वोत्कृष्ट नमूना हम "सांची" में देख सकते हैं। इस स्तूप का निर्माण अशोक के समय हुआ था। इसी को सुंगवंश के राजाओं द्वारा विस्तृत किया गया। प्रथम सदी में इसकी चारों दिशाओं में तोरण प्रवेश द्वार का निर्माण किया गया। जिसका बाद में सांची के स्तूपों में भी निर्माण किया गया, इसी से प्रेरणा लेकर विभिन्न आकार के स्तूपों का निर्माण जहाँ जहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ वहाँ निर्माण किया गया।

अशोक शाखा की सबसे श्रेष्ठतम निर्मिती "अशोक स्तंभ" के रूप में हुई थी। जो कि एक दंडगोलाकार 90 से.मी. तथा 9 से 12 मीटर ऊँचाई का दंड था। जो जमीन के ऊर्ध्वाकार था ताड़ के समान ऊपरी छोर में इसका व्यास क्रमशः कम होता जाता था। स्तंभ के उपर (शीर्ष स्थान पर) घंटों के ऊपर विभिन्न जानवरों के मुख उत्कीर्ण रहते थे जैसे दक्षिण दिशा में अश्व, उत्तर दिशा में सिंह, पश्चिम में बैल तथा पूर्व दिशा में हाथी। सारनाथ में इन चारों जानवरों के तथ्य में चारों दिशाओं में चार सिंह उत्कीर्ण हैं। इनके सिरों का आधार बनाते हुए "धर्मचक्र" है।

(स) हिंदुकालीन - (500 ईस्वी से 1500 ईस्वी तक)

भारतीय इतिहास में लंबे समय तक लगभग 1000 वर्ष तक कई राजाओं के शासन काल में भारत में अनेकों बड़े प्रसिद्ध नगर स्थापित हुये। जिसमें प्रमुखतः दोहरी उन्नती हुई है।

1. राजप्रसाद 2. मंदिर, प्रासादों के उच्चतम वास्तुशिल्प की जानकारी उपलब्ध साहित्य और अवशिष्ट पुरातत्व जो कि निर्जन स्थानों में हैं, से ज्ञात की जा सकती है परन्तु हिंदु राजप्रासादों से हिंदु मंदिरों की अवस्था आज भी बेहतर है।

भारतीय मंदिरों की बनावट साधारणतः एक सी होते हुए भी इसके क्षेत्र के अनुसार इसे वास्तुविदों ने दो पद्धतियों में विभाजित किया है। आर्य या उत्तर भारतीय तथा द्रविडियन या दक्षिण भारतीय पद्धति। उत्तर भारतीय पद्धति में मंदिर भीतर से वृत्ताकार रहते थे, जिसका शीर्षभाग गोलाकार रहता था, जिसका बाह्य रूप सरल रेखा में रहता था जबकि द्रविडियन पद्धति में मंदिरों के मीनार ज्यादातर चौरसाकृति होते हुए कटे हुए चौकोर रहते थे।

1. आर्यन पद्धति से बने उत्तरी मंदिरों का शिल्प - उत्तर-भारतीय मंदिरों के शिल्प में ओडिसी शाखा, मध्य भारतीय शाखा तथा गुर्जर शाखा। ओडिसी शाखा के उत्कृष्ट मंदिर शिल्प में भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर हैं। इसमें चार कक्ष एक ही श्रेणी में आते हैं। भोग या चढ़ावा कक्ष, नाट्यकक्ष, जगमोहन या जनता कक्ष इसके बाद में गर्भगृह। गर्भगृह के ऊपर शिखर वाली मीनार रहती थी, जो कि अंदर की ओर झुकी रहती थी। इसके ऊपर एक छतरीनुमा पत्थर होता था, इसी छतरी के ऊपर कलश रहता था। अन्य तीनों कक्षों की छत भी इसी प्रकार की परंतु क्रमशः छोटे मीनारों से सज्जित होती थी। जिसका केन्द्र मुख्य शिखर होता था। ओडिसी शाखा में मंदिरों के बाह्य भाग में भरपूर वैभवशाली नक्काशी रहती थी परंतु अंतर्भाग बिना सजावट के रहता था। कोणार्क के सूर्य मंदिर में इस तरह की नक्काशी देखने को मिलती है।

खजुराहो जो मध्यप्रदेश में स्थित है, इस शाखा का सर्वश्रेष्ठ नमूना है, इसमें पवित्र गर्भस्थान, सभामंडप, प्रवेशमंडप, आदिस्थल हैं। जो पूर्ण पवित्रता लिये हुये मंदिर का अभिन्न भाग लगता है। मंदिर का मुख्य शिखर पूर्ण ऊँचाई तक अपने केन्द्र बिंदु तक झुकता गया है तथा इसके साथ बने हुए सभी शिखर मुख्य शिखर की ऊँचाई तथा केन्द्र की ओर झुके हुये हैं। इसे देखने पर ऐसा मालूम होता है कि ये सब एक पर्वत की माला/शाखायें हैं।

2. द्रविड/दक्षिण परम्परा -

(i) पल्लव शाखा :- पल्लव शाखा के प्रथम मंदिर द्रविड परंपरा जैसे ही थे। पल्लव शाखा के मंदिर ज्यादातर समुद्री तट पर दृष्टिगोचर होते हैं। मम्मलपुरम तथा कांची के कैलाशनाथ मंदिर। इन मंदिरों में बौद्ध धर्म के अवशेष देखने को मिलते हैं। इनके शिखर कटे हुये पिरामिड की तरह हैं जो कि एक ठोस भट्टी की तरह है। जिससे बौद्ध स्तूपों की कल्पना की जा सकती है।

(ii) कोल शाखा - पल्लव शाखा की तरह ही कोल शाखा में ऊँचे चबूतरे पर मिलता जुलता मीनार रहता था, जिसके गुम्बज पर कलश रहता था। इसका उत्कृष्ट नमूना तंजौर का शिव मंदिर है। जिसकी ऊँचाई करीब-करीब 60 मीटर है। इस प्रकार की द्रविडीयन शिखरों की परंपरा थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज के आधुनिक युग में भी दिखाई देती है। काष्ठ कारीगरी से संपूर्ण मुक्तता यहाँ के वास्तुशिल्प में दिखाई देती है। कोल शाखा कालीन मंदिर में अधिक मात्रा में स्तंभ हैं जो कि सुंदर सजावट लिये हुए हैं।

(iii) पांड्यान शाखा - पांड्यान शाखा ने पल्लवों द्वारा निर्मित शिखर और मीनारों के महत्व में बदलाव करते हुये मुख्य पवित्र स्थल से लेकर प्रवेश द्वार तक चार दीवारी बनाने पर अधिक जोर दिया है। 12 वीं शताब्दी में यह एक परंपरा बन गई थी। मंदिरों को चारदीवारी से घेरकर उसे अच्छी तरह सुरक्षित किया जाता था। जिसमें गोपुर जो कि एक लंबाकृति पिरामिड (मीनार) की तरह थे। ये सभी महल या प्रासादों के सुरक्षा मीनारों की तरह थे। इस शाखा में ज्यादा से ज्यादा नक्काशी तथा जानवरों व पक्षियों की मूर्तियों से स्तंभों तथा मीनारों की सजावट की है। जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण - मदुरै का मीनाक्षी मंदिर व श्रीरंगम का रंगनाथ मंदिर है।

(iv) चालुक्य शाखा - ग्यारहवीं सदी के आरंभ में दक्खन में चालुक्य और होयसाल वंश के राजाओं ने मंदिर निर्माण कला में बहुत प्रगति की। इनके मंदिर केवल आयताकृत आकार में सीमित नहीं थे वरन् बहुभुजाकृति के मंदिर एवं बहुभुजाकृति चबूतरे बनाये जाते थे। चालुक्य तथा होयसाल शाखा के वैशिष्ट्य प्रमुखतः निम्नलिखित थे -

- (i) इनमें जानवरों, पक्षियों की तथा वंश परंपरागत विचारों की प्रचुरता पाई जाती थी।
- (ii) कीर्तिमुख (विशाल आँखों वाले जानवर के मुख) कलात्मक ढंग से बनाया जाता था।
- (iii) कमानीदार स्तंभ
- (iv) सपाट गुम्बज, कम शिखर

इस तरह के अलंकरण के कारण इनके ठोस अनुसरण के बावजूद इसमें अतिशय मोहकता व सौंदर्य निर्माण हुआ। इस शाखा के प्रसिद्ध मंदिरों में हलेबिड और बेल्लूर के मंदिर प्रमुख हैं।

(द) विजयनगर शाखा - द्रविडियन परंपरा की सर्वोत्कृष्ट वास्तुकला में विजयनगर शाखा के मंदिर सर्वश्रेष्ठ हैं। इन मंदिरों में नवीनतम तत्व देखने को मिलते हैं। जैसे देवियों का पूजास्थल भी मुख्य पूजास्थल के बराबर विशाल होता था। जिसमें स्तंभों से युक्त कक्ष, विवाह कक्ष तथा अन्य देवताओं का पूजा स्थल भी सम्मिलित होता था। स्तंभों पर भरपूर नक्काशी रहती थी।

इसलिये विजयनगर शाखा की कलात्मकता व सौंदर्य किसी भी भारतीय हिंदु मंदिरों से सर्वश्रेष्ठ है। हम्पी का विठ्ठल मंदिर इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

4. हिन्दु-मुस्लिम काल (12 वीं सदी से 17 वीं सदी तक)

साम्राज्यवादी शाखा - हिंदु व मुस्लिम वास्तुशास्त्र की शुरुआत पश्चिम एशियाई संबंधों के कारण हुई जो कि 3 प्रमुख शाखाओं में विभाजित की जा सकती है जैसे - साम्राज्य वादी, मुस्लिम तथा प्रादेशिक।

साम्राज्य शाही में दिल्ली विकास का प्रमुख केन्द्र बना रहा। 12 वीं सदी के अंतिम समय में 3 शतकों तक मुगलवंश के 5 देशों ने जैसे - गुलामवंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद तथा लोधी वंशों ने दिल्ली को ही प्रमुख केन्द्र मानकर उस पर अधिकार जमाने की कोशिश की और हर एक वंश के अनेकों अवशेष वास्तुरूप में अभी तक कायम हैं। इसमें से दो प्रमुख कुतुबमीनार और गियासुद्दीन का मकबरा तुगलक वंश की परम्परा है।

कुतुब मस्जिद दो कारणों से प्रसिद्ध है :- 1. विशाल मार्ग जो वृक्षों से ढका है, और 2. कुतुबमीनार। उस समय के भारतीय शिल्पियों ने अपने वरिष्ठ अधिकारियों के मौखिक आदेशानुसार सर्वप्रथम वृक्षों से आच्छादित मार्ग का निर्माण किया, जो कि भारतीय पद्धति के अनुसार यह एक उल्टी रखी हुई कमान की तरह, जिसमें बौद्ध शिल्प के अनुसार आले बने हुए है। 17 वीं सदी में यह कंगुरेदार उल्टी कमान मुस्लिम ढंग की एक सही कमान बनाई गई। दूसरा महत्वपूर्ण कारण, कुतुबमीनार जो कि अपनी अनूठी कारीगरी व आकार के कारण बेमिसाल है। इसके आधार का घेरा 14 मीटर व्यास से 3 मीटर व्यास तक कम होता गया। इसमें शिखर चार खंड में बना है, हर एक खंड अपने ढंग की कारीगरी में अलग है। पांचवा खंड कुछ काल पश्चात् बनाया गया, जिसका प्राथमिक उद्देश्य समर्पित भाव से ईश्वर आराधना व प्रार्थना ही था परंतु बाद में यह विजय स्तंभ के रूप में प्रसिद्ध हुआ उसी मीनार को बाद में आरंभिक मीनार का दर्जा दिया गया कतिपय इस्लामिक धार्मिक इमारतों में इसी प्रकार की मीनारें देखने को मिलती हैं।

गियासुद्दीन का मकबरा भी एक आरंभिक मकबरा है जो कि इस्लामिक वास्तु में मुख्य है जो कि चौरस आधार 18 मीटर और 24 मीटर ऊँचाई में बना है इसकी विशेषता यह है कि इसकी तीनों दीवारें सपाट हैं जिसमें मुस्लिम ढंग की कमानें बनाई गई हैं। तीनों कमानों के आधार में दरवाजे लगे हैं जिनके नीचे चौखट लगी हुई हैं, शायद यह उस समय के अनुसार कारीगरों के आग्रह पर रखे गए थे, परंतु चौथा जो कि पश्चिम दिशा को है, उसे मेहराब, जालियाँ बनाकर बंद

रखा गया है। मकबरा एक ही छत वाला कमरा है, इसका गुम्बज ठोस है जो कि ईंटों से बना है, इसके ऊपर संगमरमर की टाइल्स सीमेंट द्वारा लगाई गई हैं। जो कि कुछ समय बाद इस्लामिक परम्परा की खास पहचान बन गई, यद्यपि आने वाले समय में इसके आकार एवं पद्धति में क्रमशः कई परिवर्तन हुए हैं।

“ताजमहल” एक वैभवशाली वास्तु निर्माण है, जिसे अरब और भारत के श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा निर्मित किया गया है, यह यमुना नदी के किनारे और सुंदर बगीचे के मध्य स्थित है। इसका निर्माण इस तरह से हुआ है कि दर्शकों को एक ही दृष्टि में मोह लेता है। प्रमुख मस्जिदें एक ऊँचे चबूतरे पर बनी है, यह चबूतरा संगमरमर से बना हुआ है। इसका निर्माण बराबर ऊँचाई में दो भागों में बँटा है, यह दो मंजिला होने के साथ-साथ इसके ऊपर बहुत ही सुंदर गुम्बज है। गुम्बज की ऊँचाई 56 मीटर चमकदार लट्ठ की तरह है, गुम्बज के चारों कोनों पर छोटे चार गुम्बज हैं इसका सौन्दर्य इसके सामने बने हुए बगीचे के कारण और भी बढ़ जाता है। इसमें लगे संगमरमर बहुत ही नक्काशीदार और आकार में होने के कारण इसे संपूर्ण अलंकारिक रूप मिला है।

5. नई बस्तियों का निर्माण काल – 16वीं सदी से कई पश्चिमी सभ्यता जैसे पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी सत्ताओं ने अपनी-अपनी बस्तियों का निर्माण भारत में किया जो कि उनके देश में प्रचलित थी, वैसे ही भवनों का निर्माण उन्होंने भारत में किया, इनमें रहने के भवन, शालायें, प्रार्थनागृह, भंडारगृह तथा छोटे-छोटे गढ़ बचाव के लिये जरूरी थे इनके कुछ नमूने केरल व गोवा में देखे जा सकते हैं।

6. समकालीन – आधुनिक वास्तुकला एक विश्वव्यापी संहिता के रूप में इसी काल में भारत में प्रचलित हुई। मुख्यतः ले कारबुजर के द्वारा चंडीगढ़ में उच्च न्यायालय का निर्माण किया गया। इसके बाद कई निर्माताओं द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के निर्माण हुए। जिसमें फ्रैंक लायड राईट, मेस वान देर रोहे, फिलिप, जॉनसन आदि प्रमुख हैं। आधुनिक वास्तुशास्त्र शिक्षण शुरू होने के कारण यह पद्धति अधिक प्रसारित हुई, आधुनिक भवन, शहरों, गांवों में बिना किसी विचार के निर्माण हुए।

भारत जैसे विशाल देश में जब तक भारतीय वास्तुशैली को मान्य नहीं किया जाएगा, ऐसे ही निर्माण होते रहेंगे, कई सदियों तक भारतीय वास्तुशास्त्र में यहाँ की जलवायु के कारण कई

परिवर्तन हुए हैं, जिसमें प्रमुखता से जलवायु, उपलब्ध सामग्री, सामाजिक सुधार तथा आध्यात्मिक मूल्य रहे हैं। इन्हीं तत्वों के परिष्करण व सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक चलन ने भारतीय वास्तु को (भवन-निर्माण) को नई दिशा प्रदान की है। इसी कारण से जो परंपरागत वास्तु में एक नई राह मिली उसमें छिपी हुई आध्यात्मिकता प्रमुख है।

...
...
...
...
...



3.2 चीनी वास्तुशास्त्र की परम्परा

3.2.1 परिचय :- चीनी वास्तुशास्त्र अर्थात् चीन में जिसे फेंग शुई कहा जाता है। फेंगशुई वास्तव में पृथ्वी के साथ सामंजस्य पूर्ण ढंग से रहने की कला है। फेंग-शुई का शाब्दिक अर्थ है 'हवा' और 'पानी'। 'हवा' और 'पानी' का ऐसा संतुलन जो घर में स्वास्थ्य सुख, संपन्नता और सामंजस्य लाता है। इस शास्त्र (फेंग-शुई) को सामान्य शब्दों में 'आर्ट ऑफ प्लेसमेंट' भी कहा जाता है, क्योंकि यह शास्त्र भारतीय वास्तुशास्त्र के समान दिशाओं पर निर्भर नहीं हैं, इसमें घर के सारे वास्तुदोष एवं जन्म कुंडली के सारे ग्रहों का दोष, फर्नीचर के आकार-प्रकार, रंग-रूप को बदलकर और सजावट के सामान जैसे फोटो, पेन्टिंग और वस्तुओं, फूल आदि को सही तरह से व्यवस्थित करके किया जाता है।²

घर, जहाँ हम निवास करते हैं एवं जिसका हमने निर्माण करवाया है, हमारी महत्वाकांक्षा का एक अभिन्न अंग है। फेंग-शुई इस दिशा में आवश्यक मार्ग-दर्शन प्रदान करता है एवं साथ ही व्यवहारिक ज्ञान के माध्यम से इन कारकों का अन्य कारक के साथ सामंजस्य स्थापित करके लाभप्रद होने में सहायक होता है।

निर्माण सामग्री और भौतिक जगत में पंच तत्व अर्थात् पंचमहाभूतों से जिस प्रकार वास्तुपुरुष की संरचना हुई है, ठीक उसी भाँति चीन जैसे प्राचीन देश में भी आज तक के स्थापत्य के मिलते-जुलते तरीके से फेंग शुई स्थापत्य को 90 - 95 % तक अपनाया जाता है। चीन की प्राचीन महानगरी बीजिंग, हाँगकॉंग, सिंगापुर के अलावा समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया में चीनी वास्तुकला फेंग-शुई का आधिपत्य है।

चीनी विद्वान ह्वेनसांग और फाह्यान प्राचीन काल में भारत की यात्रा पर आए थे, उस दौरान भारत में वैदिक वास्तु का बहुत प्रचलन था, वैदिक वास्तु में ही पंचतत्व की जो मान्यता है, ठीक उसी को आधार मानकर चीनी वास्तु-कला फेंगशुई ने आदिकाल से लोकप्रियता हासिल की है।²

3.2.2 फेंगशुई शास्त्र का मुख्य आधार - फेंगशुई शास्त्र का मुख्य आधार भारतीय वास्तुकला है जिसका संबंध प्रकृति के पंचतत्वों से है। भवन निर्माण सामग्री के चयन में फेंगशुई के अन्दर जिन पाँच प्राकृतिक तत्वों को लिया गया है, उनमें सर्वप्रथम पानी, अग्नि, भूमि, धातु और लकड़ी हैं। इन पंचतत्वों का आनुपातिक ताल-मेल अगर सही है तो भवन में रहने वाला सुखी रहता है, अन्यथा उसे कई प्रकार के कष्ट, धन हानि, संघर्ष आदि का सामना करना पड़ता है।¹

1. आचार्य मृत्युंजय - वास्तुशास्त्र, पृ. 28

2. रमन प्रो. वी.वी. - वास्तुशास्त्र, पृ. 210

... १.१.१ ...
... १.१.२ ...
... १.१.३ ...
... १.१.४ ...
... १.१.५ ...
... १.१.६ ...
... १.१.७ ...
... १.१.८ ...
... १.१.९ ...
... १.१.१० ...
... १.१.११ ...
... १.१.१२ ...
... १.१.१३ ...
... १.१.१४ ...
... १.१.१५ ...
... १.१.१६ ...
... १.१.१७ ...
... १.१.१८ ...
... १.१.१९ ...
... १.१.२० ...
... १.१.२१ ...
... १.१.२२ ...
... १.१.२३ ...
... १.१.२४ ...
... १.१.२५ ...
... १.१.२६ ...
... १.१.२७ ...
... १.१.२८ ...
... १.१.२९ ...
... १.१.३० ...
... १.१.३१ ...
... १.१.३२ ...
... १.१.३३ ...
... १.१.३४ ...
... १.१.३५ ...
... १.१.३६ ...
... १.१.३७ ...
... १.१.३८ ...
... १.१.३९ ...
... १.१.४० ...
... १.१.४१ ...
... १.१.४२ ...
... १.१.४३ ...
... १.१.४४ ...
... १.१.४५ ...
... १.१.४६ ...
... १.१.४७ ...
... १.१.४८ ...
... १.१.४९ ...
... १.१.५० ...
... १.१.५१ ...
... १.१.५२ ...
... १.१.५३ ...
... १.१.५४ ...
... १.१.५५ ...
... १.१.५६ ...
... १.१.५७ ...
... १.१.५८ ...
... १.१.५९ ...
... १.१.६० ...
... १.१.६१ ...
... १.१.६२ ...
... १.१.६३ ...
... १.१.६४ ...
... १.१.६५ ...
... १.१.६६ ...
... १.१.६७ ...
... १.१.६८ ...
... १.१.६९ ...
... १.१.७० ...
... १.१.७१ ...
... १.१.७२ ...
... १.१.७३ ...
... १.१.७४ ...
... १.१.७५ ...
... १.१.७६ ...
... १.१.७७ ...
... १.१.७८ ...
... १.१.७९ ...
... १.१.८० ...
... १.१.८१ ...
... १.१.८२ ...
... १.१.८३ ...
... १.१.८४ ...
... १.१.८५ ...
... १.१.८६ ...
... १.१.८७ ...
... १.१.८८ ...
... १.१.८९ ...
... १.१.९० ...
... १.१.९१ ...
... १.१.९२ ...
... १.१.९३ ...
... १.१.९४ ...
... १.१.९५ ...
... १.१.९६ ...
... १.१.९७ ...
... १.१.९८ ...
... १.१.९९ ...
... १.१.१०० ...

फेंगशुई हमें इस बात का निर्देश देती है कि किस प्रकार एक भौतिक वातावरण हमारे ऊपर प्रभाव डालता है तथा किस प्रकार इसमें परिवर्तन करके या उसके अनुकूल बनाकर हम अपने जीवन में बदलाव ला सकते हैं। फेंग शुई के अनुसार वातावरण दो प्रकार के होते हैं :- पहले में हमारे आसपास के वातावरण के भौतिक तथा दृश्य विशिष्टता से हैं। इसमें पहाड़, नदी, भवन, सड़क तथा घर का पूर्वाभिमुखीकरण एवं फर्नीचर का रखरखाव आदि आता हैं और ये सभी अपना प्रभाव डाल सकते हैं। दूसरे प्रकार की शक्ति वातावरण में अदृश्य होती है, उसकी उत्पत्ति एक रहस्यमयी एवं निर्धारित शक्तियों के अनुसार होती है, चीनी लोगों ने कुछ ऐसी पद्धति-शक्तियों का प्रतिपादन किया है, जिसके अंतर्गत इस रहस्यमयी शक्ति का नियंत्रण एवं उसका उपयोग किया जा सके।

3.2.3 तत्व एवं ऋतुओं के साथ उनके संबंध:-

पंचतत्व एवं उनकी सहयोगी दिशाएँ, रंग और ऋतु :-

क्रमांक	तत्व	दिशा	रंग	ऋतु
1.	काष्ठ	पूर्व	हरा	बसंत
2.	अग्नि	दक्षिण	लाल	ग्रीष्म
3.	पृथ्वी	केन्द्र	पीला	संपूर्ण वर्ष
4.	धातु	पश्चिम	श्वेत	शरद
5.	जल	उत्तर	काला	ठंड

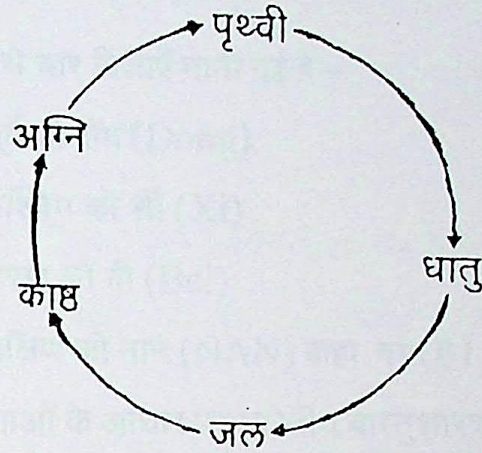
3.2.4 पंचतत्वों का पारस्परिक संबंध

ये पंचतत्व पारस्परिक ढंग से एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार ये एक दूसरे की सृष्टि या विनाश के लिए उत्तरदायी होते हैं। इन तत्वों के सृजन क्रम इस प्रकार हैं-

अग्नि - पृथ्वी,
 पृथ्वी - धातु
 धातु - जल
 जल - काष्ठ
 काष्ठ से - अग्नि

यही इनका उत्पादन चक्र है।

चित्र-



निम्न प्रकार से ये एक दूसरे को नष्ट करने की भी क्षमता रखते हैं।

पृथ्वी से जल शांत (नष्ट) होता है।

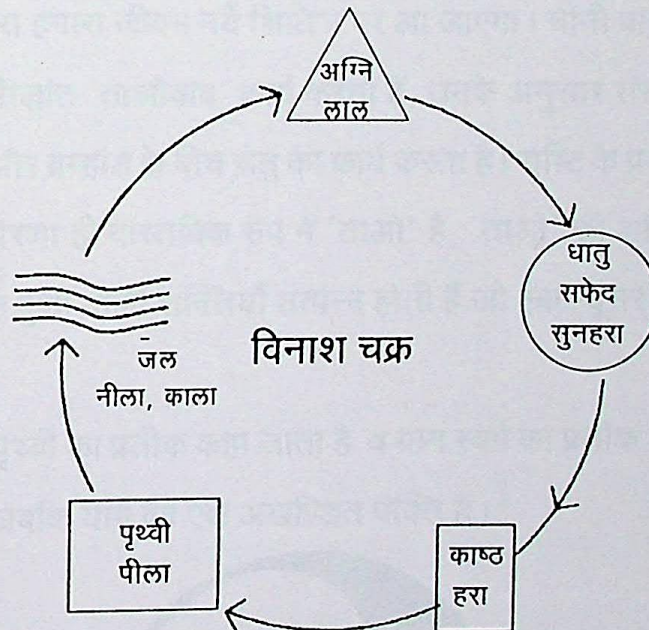
जल अग्नि का शमन कर देता है।

अग्नि धातु को नष्ट कर देती है।

धातु से काष्ठ समाप्त हो जाती है।

काष्ठ से पृथ्वी तत्व की हानि होती है।

चित्र-



इस प्रकार प्रत्येक तत्व अपने पूर्व तत्व की उत्पत्ति करने वाले तत्व से नियंत्रित किया जाता है। नियंत्रक तत्व द्वारा हानिकारक तत्व के अशुभ प्रभाव में कमी लाई जाती है, जिससे वास्तु की अनुकूलता प्राप्त होती है और वास्तविक अर्थों में फेंग शुई की उपयोगिता सिद्ध होती है।

फेंगशुई में दिशाएँ—

फेंगशुई में मुख्य रूप से चार दिशाएँ मानी गई हैं —

- पूर्व - पूर्व को दोंग (Dong)
- पश्चिम - पश्चिम को शी (Xi)
- उत्तर - उत्तर को बी (Bei)
- दक्षिण - दक्षिण को नान (NAN) कहा गया है।

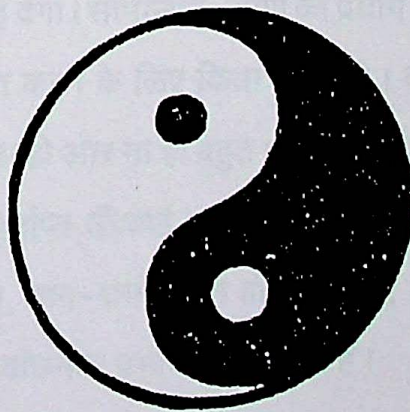
इन चार मूलभूत दिशाओं के आधार पर भारतीय वास्तुशास्त्र की भाँति चार कोण दिशाएँ और मानी गई हैं।

फेंग - शुई में यिन और यांग

Yang (—) Yin (— —)

यह एक शक्तिशाली दिव्य तंत्र है, जो यिन और यांग के अन्तः क्रिया द्वारा किए गए परिवर्तनों का तन्त्र है, जिसके द्वारा हमारा जीवन नये क्षितिज पर आ जाएगा। चीनी वास्तुकला के मूल में, चीन का एक धार्मिक सिद्धांत 'ताओवाद' कार्य करता है, उनके अनुसार संसार की हर वस्तु में 'ताओ' है जो मनुष्य और ब्रम्हांड के बीच सेतु का कार्य करता है। सृष्टि के प्रत्येक कण में अपना अस्तित्व रखने वाली प्रेरणा ही वास्तविक रूप में 'ताओ' है, 'ताओ' की शक्ति से ही यिन एवं यांग नामक दो विपरीत गुणों वाली शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो एक-दूसरे की पूरक भी होती हैं।

यिन शक्ति को पृथ्वी का प्रतीक कहा जाता है व यान स्वर्ग का प्रतीक है। यिन का प्रतीक एक खंडित पंक्ति है, जबकि यांग का एक अखण्डित पंक्ति है।¹



1. जोशी डॉ. बसंत, चौहान किशोर - फेंगशुई पृ. 16-17

यिन में बहुत सूक्ष्म प्रकाश तथा यांग में भी अति सूक्ष्म अंधकार होता है। इस प्रकार ये दोनों तत्व एक दूसरे पर निर्भर हैं। यिन और यांग में आनुपातिक संतुलन होने पर संसार में समरसता और सुख-शांति व समृद्धि पाई जाती है।

यांग:- इसकी दिशा दक्षिण है, यांग शक्ति का चिन्ह उष्णता है तथा यह ऊर्ध्वगामी है। ब्रम्हांड की धनात्मक शक्ति है, इसका संबंध स्वर्ण, पौरुष, घनत्व और ऊष्मा से है।

यिन:- इसकी दिशा उत्तर है, यह शीत का प्रतीक है एवं यह निम्नगामी है। यह ब्रम्हांड की ऋणात्मक शक्ति है, इसका संबंध नारीत्व, पृथ्वी, शीलता और तमस् से है।

चीनी विचारकों के अनुसार "यांग यिन" संतुलन ही पारिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि का आधार है।

दोष निवारक विधियाँ:- जीवन को खुशहाल व सरल बनाने की अनेक दोष निवारक विधियाँ हैं। इन विधियों के प्रयोग से वायु के प्रवाह में वृद्धि की जा सकती है, प्लॉट के अनियमित आकार को संतुलित किया जा सकता है, आर्थिक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है, मानसिक, शारीरिक समस्याओं का निराकरण हो सकता है। प्रत्येक निवारक विधि का एक विशेष अर्थ व उपयोग होता है।

मूलभूत निवारक तत्व:- ये आठ प्रकार के होते हैं :- 1. दर्पण 2. प्रकाश 3. पौधे 4. जल 5. पारदर्शी काँच की गेंद 6. घंटी 7. बाँसुरी 8. रंग

1. **दर्पण** - फेंगशुई में दर्पण का प्रयोग नकारात्मक ऊर्जा को समाप्त करने के लिए किया जाता है, यदि कक्ष का कोई भाग कटा हुआ हो या लुप्त हो तो दीवार में उस स्थान पर दर्पण लगा देने से वह क्षेत्र बड़ा हुआ दिखाई देगा। सामान्यतः दर्पण का प्रयोग वायु के प्रवाह को बढ़ाने के लिए एवं हानि के मार्ग को परिवर्तित करने के लिए किया जाता है। दर्पण का आकार चौकोर होना चाहिए व दर्पण ना तो बहुत बड़ा हो और ना ही बहुत छोटा। उसके आकार का चयन निवारक के अनुसार करना चाहिए दर्पण पर्याप्त ऊँचाई पर होना चाहिए, जिससे व्यक्ति का चेहरा पूरा दिखाई दे। दर्पण साफ-सुथरा, दाग-धब्बे रहित होना चाहिए, टूटा हुआ दर्पण प्रयोग में नहीं लाना चाहिए, क्योंकि इसके अवांछनीय प्रभाव पड़ सकता है।

प्रकाश:- फेंग-शुई के अनुसार प्रकाश ऊर्जा का स्रोत तथा सूर्य का प्रतीक है। फेंगशुई में प्रकाश को एक शक्तिशाली निवारक माना गया है। प्रकाश का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। 'एल' (L) आकृति वाले भवन में प्रकाश की उचित व्यवस्था लुप्त हुए कोने के दोष को समाप्त कर सकती है। प्रकाश जितना तेज होगा उतना ही अधिक प्रभावशाली रहेगा।

पौधे:- आवास के आसपास की हरियाली व रंग-बिरंगे फूलों से लदे पौधे तन-मन को शान्ति प्रदान करते हैं, जीवन को शांत व सौम्य बनाते हैं। पौधे प्रकृति एवं विकास के प्रतीक हैं, ये कक्ष में मंगलमय आगमन के सूचक हैं। स्वाभाविक व कृत्रिम दोनों ही प्रकार के पौधे विभिन्न प्रकार से कार्य कर सकते हैं। कमरे के कोने में पौधों को रखकर वायु में वृद्धि कर उसे संचारित किया जा सकता है, तेज धार वाले कोने में पौधा रखकर उसके दुष्परिणाम से बचा जा सकता है।

पौधों का चयन करते समय उसके आकार एवं रंग की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कृत्रिम पौधों का प्रयोग घर के आंतरिक भाग में किया जा सकता है क्योंकि इनके खराब होने व पत्ते पीले पड़ने की समस्या नहीं होती।

जल:- जल एक प्रमुख तत्व है साथ ही यह धन का प्रतीक भी है, घर या कार्यालय में जल सकारात्मक ऊर्जा का सूचक है, जिसका परिणाम सुखद होता है। जल की ऊर्जा में वृद्धि करने के लिए उस जगह पर एक छोटा सा फव्वारा या झरने का उपयोग किया जा सकता है।

चीनी मत के अनुसार दुकान या जलपान गृह के कैश-काउण्टर के समीप मछली का जलकुण्ड (फिश एक्वेरियम) रखने से धन में वृद्धि होती है साथ ही यह सौभाग्य सूचक है।

पारदर्शी काँच की गेंद :- पारदर्शी काँच की गेंद सकारात्मक ऊर्जा का स्रोत एवं ऊर्जा क्रियान्वयन की असाधारण शक्ति की प्रतीक है, यह सौभाग्य आगमन की भी प्रतीक है। काँच प्रकाश का परादर्शक होने के कारण अशुभ या अत्याधिक शक्तिशाली वायु को परिवर्तित करने तथा कक्ष से बाहर फैलाने में उपयोग किया जाता है। बहुत बड़ी गेंद का उपयोग नहीं करना चाहिए, छोटी गेंद अत्याधिक शक्तिशाली होती है।

घंटी:- घंटी का प्रयोग घर या कक्ष के बागवा में परिवर्द्धन करने के लिए किया जाता है। घंटी से वायु के प्रवाह को नियंत्रित या परिवर्तित किया जा सकता है, इसका उपयोग घर अथवा कार्यालय में सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त कराने में सहायक होता है। यह हानिकारक ऊर्जा से भी सुरक्षा प्रदान

करता है। घर अथवा कार्यालय में मुख्य द्वार व पिछला द्वार एक सीध में हो या लम्बा गलियारा, जिसमें बहुत से दरवाजे स्थित हों, वहाँ घंटी को उचित स्थान पर लगाकर वायु का प्रवाह संतुलित किया जा सकता है। घंटी का चयन सफलतापूर्वक करना चाहिए।

बाँसुरी:— बाँस से बनी बाँसुरी का उपयोग वायु के उत्थान के लिए लिया जाता है। बाँसुरी के बारीक छिद्र घर की उन्नति में सहायक होते हैं। बीम व कम ऊँचाई की छत के कारण उत्पन्न शक्तिशाली नकारात्मक ऊर्जा को नियंत्रित करने के लिए दो बाँसुरियों पर लाल फीता बाँधकर इसके मुख को नीचे की ओर करके छत या बीम से लटकाना चाहिए। बाँसुरी से गुजरने वाली वायु ऊर्जा शक्ति को ऊपर उठाती है, जिससे कमरे के नीचे आ रही ऊर्जा को निष्प्रभाव किया जा सकता है। बाँसुरी की उपस्थिति घर, कार्यालय अथवा दुकान में शांति, सुरक्षा व स्थिरता प्रदान करती है।

रंग:— फेंगशुई में रंगों का महत्वपूर्ण योगदान है, रंगों के समायोजन से ऊर्जा शक्ति को संतुलित किया जा सकता है। रंग हमारे जीवन पर अत्यंत गहरा प्रभाव डालते हैं, रंग से हमारे स्वभाव, मस्तिष्क व शरीर पर प्रभाव पड़ता है, इसलिए रंगों का चयन सही होना चाहिए।

हल्का रंग मानसिक और शारीरिक शक्ति में वृद्धि करता है। जबकि गहरा रंग स्थिरता व उत्तरदायित्व की भावना जागृत करता है। प्रत्येक रंग का संबंध पंचतत्वों से है, कौन सा रंग किस क्षेत्र के लिए व किस कार्य के लिए प्रभावशाली है, निम्नलिखित हैं :—

पंचतत्वों से संबंधित रंगों की विशेषता :—

लाल रंग :— लाल रंग अग्नि तत्व का प्रतीक है जो भाग्यशाली माना जाता है। लाल रंग के सकारात्मक व हानिकारक दोनों ही तरह के प्रभाव होते हैं, लाल रंग का सही उपयोग ऊर्जा शक्ति को बढ़ाता है, किन्तु अत्याधिक प्रयोग उन्हें उद्धेलित करता है। लाल रंग पाचन तंत्र को सक्रिय बनाकर पाचन प्रणाली की प्रक्रिया में सहायक होता है। यह रंग प्रसिद्धि, सौभाग्य, उन्नति व अधिक कार्यक्षमता का प्रतीक है।

पीला रंग :— पीला रंग सामाजिक प्रवृत्ति के प्रति प्रोत्साहित करता है, अग्नि भस्म में परिवर्तित होकर पृथ्वी की ऊर्जा को पोषण प्रदान करती है। पीला रंग प्रसिद्धि, प्रगति, एवं शासन (अधिकार) का सूचक है।

सफेद रंगः— सफेद रंग धातु का प्रतिनिधित्व करता है। यह शुद्धता एवं सादगी का प्रतीक है, शोक के अवसरों पर सफेद रंग का उपयोग होने के कारण चीनी लोग इस रंग का प्रयोग कम ही करते हैं।

कालाः—जल तत्व का संबंधित रंग काला है, यह रंग गहरा होने के कारण यह गहराई का अहसास कराता है, काले रंग का उपयोग अत्याधिक करने से निराशावादी वातावरण निर्मित होगा। इसका सर्वोत्तम प्रयोग चित्रकारी के किनारे या प्रेम के किनारे में होता है।

हरा रंगः— जल, काष्ठ को पोषण प्रदान करता है, यह रंग बसंत ऋतु का है। हरा रंग शांति व विकास का प्रतीक है, यह स्वस्थ वायु का सूचक है। हरा रंग कमरे में सुख व शांति का अनुभव कराता है किन्तु हरे रंग के अत्याधिक प्रयोग से व्यक्ति वास्तविकता से दूर कल्पना जगत में विचरण करने लगता है।

भारतीय वास्तुशास्त्र हो अथवा फेंगशुई, ये हमें घर में वायु, अग्नि, जल, आकाश व पृथ्वी तत्व के आनुपातिक सम्मिश्रण की श्रेष्ठता सिखलाते हैं। इनके आनुपातिक तारतम्य के बिगड़ने से ही घर में नाना प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। जिस प्रकार शरीर में वात, पित्त, कफ के गड़बड़ाने से शरीर व्याधियों से घिर जाता है और वैद्य द्वारा उनका संतुलन पुनः बिठाने पर ही शरीर स्वस्थ होता है, उसी प्रकार पंचमहाभूतों एवं दिशाओं का सही संतुलन होने पर ही किसी भी वास्तु से चाहे वह आवासीय हो, व्यवसायिक या औद्योगिक हो पूर्ण लाभ, सुख, शांति एवं आरोग्य प्राप्त किए जा सकते हैं।

3.3 वास्तुशास्त्र अनुशीलन की पाश्चात्य परंपरा

एक पृथक भूमिखण्ड-सा दिखायी पड़ने पर भी भारत संसार से कभी अलग नहीं रहा है। बहुत प्राचीन काल में भारत के निवासी अपने पड़ोसी देश के साथ स्थल तथा जलमार्गों द्वारा यातायात सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। पश्चिम में प्राचीन भारत के व्यापारिक सम्बन्ध अफगानिस्तान, ईरान, बेबीलोन, मिस्र और यूनान के साथ, उत्तर में मध्य एशिया, पूर्व में चीन के साथ तथा दक्षिण पूर्व एवं दक्षिण में बर्मा, हिंदचीन, हिंदेशिया तथा लंका के साथ रहे।

उक्त देशों के साथ दीर्घकाल तक आर्थिक सम्बन्ध स्थापित रहने के कारण भारत और इन देशों के बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान का होना अनिवार्य था। मौर्य सम्राट अशोक के समय से भारत के द्वारा सांस्कृतिक संपर्क बढ़ाने की प्रवृत्ति का स्पष्ट पता चलता है। अशोक ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदार भारतीय भावना को कार्य रूप में परिणित करने का सराहनीय प्रयत्न किया। उसने लंका, कंबोडिया, बर्मा, अल्जीरिया, मिस्र, मेसीडोनिया, एपीरस आदि देशों में अनेक विद्वान भेजे, जिन्होंने इन देशों को कल्याणकारी धर्म का सन्देश सुनाया। धर्म-प्रचारकों की यह परम्परा 12वीं शताब्दी के अंत तक जारी रही इन लोगों ने कितने ही भारतीय ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद कर धर्म के साथ-साथ साहित्य के संरक्षण एवं अभिवृद्धि में भी विपुल योगदान दिया।

व्यापारियों तथा धर्मप्रचारकों के विदेशों में आवागमन के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति की व्यापकता बढ़ी। एशिया महाद्वीप के अनेक देशों में न केवल यहाँ की भाषा, रहन-सहन और आचार-विचार को अपनाया गया, अपितु भारतीय स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला का भी वहाँ प्रसार हुआ।

अनुमानतः मध्य एशिया के स्तूपों की निर्माण शैली बहुत कुछ उसी ढंग की थी जैसी कि साँची या तक्षशिला के स्तूपों में मिलती है। हिंदचीन तथा हिंदेशिया के विभिन्न भागों से वास्तुकला एवं मूर्तिकला के जो सैकड़ों अवशेष उपलब्ध हुए हैं, उनसे एक लम्बे समय तक इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के व्यापक प्रसार का पता चलता है।¹

भारतीय स्थापत्य के विभिन्न अंगों का विकास विदेशों में दीर्घकाल तक हुआ। भारतीय संस्कृति ने अपनी उदारता के कारण अन्य क्षेत्रों की तरह वास्तुकला के क्षेत्र में भी अपना स्थायी

1. अग्रवाल श्रीमती सरला, ज्योतिष सागर, (लेख - वास्तुशास्त्र एवं फैंशुई) पृ. 11-12

2. अग्रवाल ईजी. पंकज, वास्तु, पृ. 2

प्रभाव स्थापित किया। शताब्दियों तक विभिन्न देशों के कलाकार भारतीय कला के सिद्धांतों से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी कृतियों को मण्डित करते रहे। आज वास्तुशास्त्र के सिद्धांत विश्वव्यापी हैं, भारत के अतिरिक्त एशियाई और अफ्रीकी देशों में इन्हें प्राचीन काल से ही विशेष रूप से मान्यता मिली है, और प्रयोग में भी लाया गया। सभी का अनुभव यही रहा कि वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार आवासीय एवं व्यवसायिक भवनों का निर्माण करने पर मनुष्य जीवन में भौतिक सुखों को पाने के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी करता है। वास्तुशास्त्र में व्यक्ति की अनुभूतियों पर अनुकूल प्रभाव डालने वाले नियमों का वर्णन है। लैटिन में वास्तुशास्त्र को "जिओमैन्शिया" कहा जाता है। अरब में इसे "रेत का शास्त्र" कहा गया है।

तिब्बत में वास्तुशास्त्र को "बागुवा तंत्र" के नाम से जाना जाता है। इसमें प्रत्येक वस्तु को आठ भुजाओं में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक भुजा का अपना पृथक प्रभाव होता है। आठ भुजाओं का प्रभाव इस प्रकार है -

1. ज्ञान 2. स्वास्थ्य 3. समृद्धि 4. प्रसिद्धि 5. दाम्पत्य
6. संतति 7. सामाजिक स्थिति 8. व्यवसाय।

इस प्रकार 'बागुवा तंत्र' मनुष्य जीवन को आठ प्रकार से प्रभावित करता है। वास्तु की जो भुजा दुर्बल होगी, वैसी ही समस्या उत्पन्न होगी।

अफ्रीका के वास्तुशास्त्र में वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल का विचार ब्रम्हाण्ड के चार मूल रूपों में किया गया है।

मिस्र में निर्मित पिरामिडों में वास्तुशास्त्र के नियमों का अनुपालन शत-प्रतिशत किया गया है। यही कारण है कि हजारों वर्ष की धूप, वर्षा, आँधी-तूफान सहते हुए आज भी वे ज्यों के त्यों सिर उठाए खड़े हैं।

जापान में भी वास्तुशास्त्र की बड़ी मान्यता है वहाँ की विश्व प्रसिद्ध पुष्पवाटिकाओं के निर्माण में वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का पालन किया जाता है।

चीन, हांगकांग एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में वास्तुशास्त्र को फेंगशुई कहते हैं। वहाँ के 90 प्रतिशत सामान्य जन फेंगशुई के आधार पर अपने होटल, दुकान एवं कमर्शियल कॉम्पलेक्स का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि आज हाँगकांग, बैकाक, सिंगापुर आदि विश्व के सबसे बड़े प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र हैं।

चीन में वास्तुशास्त्र को "कैन यू" के नाम से जाना जाता है, आज से लगभग 3500 वर्ष पूर्व इस शास्त्र पर विचार किया गया था और इसे वायु और जल का शास्त्र माना गया है।

3.4 प्रस्तुत अध्ययन पर आधारित तत्व

हम वेद, वाकोवाक्य - विधा - ब्रह्मविधा विज्ञ थे,
 नक्षत्र-विधा, क्षत्र-विधा, भूत-विधा विज्ञ थे,
 निधि- नीति-विधा, राशि विधा, पित्र विधा में बड़े
 सर्पादि-विधा, देव-विधा, दैव-विधा ये पढ़े,
 जिनकी महत्ता का न कोई पा सका है भेद ही,
 संसार में प्राचीन सबसे हैं हमारे वेद ही,
 प्रभु ने दिया यह ज्ञान हमको सृष्टि के आरंभ में
 है मूल चित्र पवित्रता का सभ्यता के स्तम्भ में।

(भारत-भारती)

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव-जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व और उसकी रक्षा, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनशील, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य संबंधी अनेक उपयोगी तत्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकस दृष्टि थी, वरन् उसकी रक्षा और महत्व को भी स्पष्ट किया गया था। उन लोगों की भी दृष्टि पर्यावरण-प्रदूषण की ओर थी, अतः उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पर्यावरण की रक्षा की और समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। वे भूमि को ईश्वर रूप ही मानते थे।¹

पर्यावरण की रक्षा, पूजा का एक अविभाज्य अङ्ग था, जैसा कि कहा भी गया है -

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रम्हणे नमः ॥

(अथर्ववेद 10/7/32)

अर्थात् “भूमि जिसकी पाद स्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तिष्क है, उन सबसे बड़े ब्रम्ह को नमस्कार है।”

यहाँ परमब्रम्ह परमेश्वर को नमस्कार कर प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश दिया गया है। वेदों के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का संबंध एक-दूसरे पर आधारित है।

1. कल्याण वेद कथांक 1999 पृ. 473,307

प्रकृति एवं पुरुष – जो कुछ भी हम देख सकते हैं, वह प्रकृति है, यह एक सिद्धांत है जो सभी पदार्थों को निर्मित करता है और उसके निर्माण और भाव (Nature) को निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए :- प्रकृति हमारी विशेष भौतिक, मानसिक और भावुक निर्माण को निर्धारित करती है और हमारे स्वभाव और व्यवहार को निर्मित करती है। प्रकृति एक कर्तरि (क्रियाशील) बल है, जो कि पुरुष से संबद्ध है और पुरुष निष्क्रिय बल है, पुरुष सभी पदार्थों में जीवन के सिद्धांत को प्रस्तुत करता है। यह ऐसी आत्मा और शक्ति है, जो तत्वों को स्फुरणित और स्पंदित करती है। अन्य शब्दों में प्रकृति हमारे शरीर को भौतिक पक्ष प्रदान करती है, जबकि पुरुष अदृश्य आत्मा या शक्ति को दर्शाता है। अंतिम उद्देश्य प्रकृति की सीमा से पुरुष की तुलना करना होता है।

हमारा शरीर जो प्रकृति की देन है, समय सीमा से बंधा हुआ है परंतु पुरुष निराकार और अनंत है, मानव स्वरूप में हम शरीर और प्रकृति को देख सकते हैं, उसकी व्याख्या कर सकते हैं परंतु आत्मा की नहीं आत्मा शक्ति / पुरुष है जिसे शरीर / प्रकृति धारण करती है। आज जीवविज्ञान और भौतिक शास्त्र के प्रमाण जीवन के वैदिक सिद्धांत और शक्ति एवं पदार्थ के संबंध के लिए सहायक हैं। शोधों के द्वारा भू-जीववैज्ञानिकों व भौतिक-शक्तियों ने यह ज्ञात किया कि एक पुष्प को, एक दीवार को, एक कण को माइक्रोस्कोप से देख कर यह जाना जा सकता है, कि प्रत्येक स्वरूप का कण-कण स्पंदित होता है और अपनी तरंगदैर्घ्य को बनाता जाता है।

जब वैदिक शास्त्र, तरंगदैर्घ्य और स्पंदन की समकालिक परिभाषा को प्रयोग नहीं करते थे, तब ऐतिहासिक वास्तु मार्ग दर्शक यह स्पष्ट कर देते थे कि वैज्ञानिक अदृश्य शक्तियों से संबंधित सिद्धांत को समझ सकते थे, जिसे वे लौकिक शक्ति के रूप में दर्शाते थे। आध्यात्मिक वैज्ञानिक एवं वास्तु शास्त्रियों ने यह भी ज्ञात कर लिया था कि प्रत्येक जीवंत रूप, स्पंदन का अनुभव करता है और इन स्पंदनों से जुड़ा है, जो किसी भी स्फुरणित रूप या मानव शरीर पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं।

प्रत्येक वस्तु में स्पंदन ऊर्जा (शक्ति) के कारण होता है, इसलिए यह निश्चित है कि इन स्पंदनों का हमारी संपदा में, हमारे गृह में और हमारे कार्यस्थल में भी इसका अस्तित्व है। कोई स्थान जो वास्तु मार्ग दर्शकों का अनुसरण करता है वह व्यवस्थित रहता है या उस स्थान में नकारात्मक स्पंदन के प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न होती है “वास्तुशास्त्रियों का उद्देश्य भवनों के स्पंदन को आसपास के वातावरण के साथ तालमेल बनाने में सक्षम बनाना होता है”¹

जिस वास्तु भवन की कल्पना महाराजा भोज ने की थी, उसका अभिप्राय यह है कि संपूर्ण राष्ट्र, नगर, बस्तियाँ, सभा-भवन, प्रासाद, सामान्य लोगों के घर, उनके द्वार, आँगन, परकोटा, पलंग, उठने-बैठने के आसन, पूजास्थल, पाकशाला आदि जिस घर में हो, वही घर पंचतत्व की ऊर्जा देने वाला और मनुष्य शरीर के लिए कल्याणकारी है।

इस कथन पर अगर हम गौर करें तो हमें यह ज्ञान मिलता है, कि जिस प्रकार मनुष्य-शरीर पंचमहाभूतों से निर्मित हुआ है (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु), उसी प्रकार एक घर का निर्माण पंचमहाभूतों को साथ ले कर करें तो वह घर कल्याणकारी होगा क्योंकि उससे पंचतत्वों की अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश की संतुलित ऊर्जा बराबर मिलती रहेगी। अर्थात् जिस भूमि पर हम मकान या घर बना रहे हैं। वहाँ जल आदि की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। वायु एवं प्रकाश के लिए दिशाओं का ध्यान रखना चाहिए साथ ही अग्नि यानी सौर ऊर्जा देने वाले सभी महत्वपूर्ण तत्व मकान के अंदर होना चाहिए।

पंचतत्वः— वास्तु को समझने के लिए हमें ब्रम्हांड के निर्माण के वैदिक सिद्धांत को समझना आवश्यक है। ब्रम्हांड के निर्माण के लिए ब्रम्ह देव ने अपने ही सार में से पाँच मौलिक तत्वों का सृजन किया। सर्वप्रथम आकाश का सृजन हुआ, तत्पश्चात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी की रचना हुई।

प्रत्येक तत्व के विकास के साथ प्रत्येक बाद वाले तत्व में पहले वाले तत्व के गुण समाहित होते हैं। आकाश में केवल आकाश है किंतु वायु में वायु और आकाश दोनों हैं। गुणों के ग्रहण (शोषण) का यह क्रम पाँचवे तत्व पृथ्वी तक जारी रहा। पृथ्वी में आकाश, वायु, जल, अग्नि सभी के गुण समाहित हैं। ये पंचतत्व सभी पदार्थों के निर्माण में सहभागी होते हैं।

वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि सभी प्रक्रम व पदार्थों में इन पाँच तत्वों के मिश्रण या यौगिक होते हैं। ये तत्व पुनः प्रयोग में जाने योग्य हैं, अब तो वैज्ञानिकों ने तत्वों की आवृत सारणी का निर्माण कर लिया है। वास्तु के अनुसार ये पंचतत्व-आकाश, पृथ्वी, वायु, अग्नि तथा जल प्रत्येक स्थान पर विद्यमान हैं, हमारे अंदर और हमारे आसपास प्रत्येक तत्व की उपस्थिति भी हमारे लिए लाभदायक है। विशेष रूप से हम अपने भीतर इन तत्वों को देख सकते हैं, पाचन-अग्नि भोजन को पचाने में सहायक होती है, यह अग्नि कैलोरी को जलाती है, जिससे हमें ऊर्जा मिलती है। श्वसन क्रिया में वायु -प्रवाह रक्त को शुद्ध करता है और हमें जीवित

रखता है, हमारे शरीर के निर्माण में जल $2/3$ भाग होता है, जल की उपस्थिति के बिना हम में से कोई भी जीवित नहीं रह सकता। इन तथ्यों के द्वारा हम कह सकते हैं कि हमारे शरीर को आकाश की आवश्यकता है और यह आवश्यकता तब तक बनी रहेगी, जब तक आकाश का अस्तित्व है और पृथ्वी की गुणवत्ता हमारी हड्डियों में उपस्थित है एवं हमारे सभी खनिजों में भी उपस्थित है जैसे - जस्ता, लोहा इनकी उपस्थिति हमारे खाद्य पदार्थों में स्वास्थ्यवर्धक होती है।

वास्तु के अनुसार ये पाँच तत्व वास्तुशिल्प में भी उपस्थित रहते हैं, प्रत्येक तत्व मिलकर एक स्थान पर पूर्वनिर्धारित स्थापन के लिए अंशभागी होता है। यह सिद्धांत प्रत्येक स्थान, भवन और प्रत्येक कमरे के लिए लागू होता है। ब्रम्ह, आकाश के तत्व का प्रतिनिधित्व करता है, वायु, वायु के तत्व का, अग्नि, अग्नि तत्व का, इसा (ISA) जल के तत्व का और पितरी (Pitri) पृथ्वी के तत्व का प्रतिनिधित्व करता है।

तत्वों का उनकी ईश्वर्यता के साथ सम्मान प्रकृति के नियमों का सम्मान करना है। तत्वों का सम्मान ब्रम्हांड का पूर्ण शासन करने वाले सामंजस्य और क्रम का भी सम्मान करना है। वास्तु, समस्याओं से सुरक्षा और समस्या में सुधार इस प्रकार करता है कि प्रत्येक तत्व की ईश्वर्यता अव्यवस्थित नहीं होती है।

प्रकृति एवं पर्यावरण :- वास्तु 'जीवन' और 'पर्यावरण' के मध्य संबंध स्थापित करने वाला एक सेतु है, पर्यावरण का हमारे शरीर, स्वास्थ्य व मन से गहरा संबंध है। यदि पर्यावरण स्वच्छ होगा तो हमारा शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न होगा। "मनुष्य और प्रकृति का आपस में प्रगाढ़ संबंध है, इसलिए हमारे पूर्वजों ने कहा है- "प्रकृति हमारी माँ है, जो सभी कुछ अपने बच्चों को अर्पण कर देती है। चाणक्य ने कहा था कि "साम्राज्य की स्थिरता पर्यावरण की स्वच्छता पर निर्भर करती है।"

लेमार्क तथा डार्विन जैसे सुविख्यात वैज्ञानिकों ने भी पर्यावरण को जीवों के विकास में महत्वपूर्ण कारक माना है।

यदि पर्यावरण प्रदूषित होता है, तो उसका प्रभाव जीव जगत् पर भी निश्चित ही पड़ेगा, पर आज मनुष्य अपनी सुख-सुविधाओं को देखते हुए कार्य कर रहा है, इसके लिए वह पर्यावरण व प्राकृतिक ऊर्जा को अपने घर में लाने के बजाय अविवेकपूर्ण ढंग से पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। इस सौरमंडल में यदि पृथ्वी को देखें तो यह एक बड़ी चुम्बक है, जब हम किसी चुंबक को

पर्यावरण में घुमाते हैं, तो उसमें विद्युत पैदा होती है, ठीक उसी तरह से हमारी पृथ्वी जो कि एक बहुत बड़ा चुम्बक है, अपनी धुरी पर घुमते हुए सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती हुई पूरे पर्यावरण में विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करती है। यह विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र मानव जीवन के लिए एक आवश्यक तत्व है, जिसके कारण जीवन सुरक्षित रूप से क्रियावान है।

वायुमंडल में लगभग 70% नाइट्रोजन, 21% ऑक्सीजन, 03% कार्बनडायऑक्साइड तथा शेष अक्रिय गैसों पाई जाती हैं। चक्रों द्वारा वायुमंडल में व्याप्त गैसों का संतुलन बना रहता है।

मनुष्य अपनी शक्ति अनुसार पर्यावरण बदलता रहता है। यदि हम मनुष्य का इतिहास उठाकर देखें, पृथ्वी के इतिहास से इसकी तुलना करें तो पाएंगे कि अगर पृथ्वी का जीवन 1 वर्ष का है तो मनुष्य का मात्र 15 सेकण्ड का होगा। इन 15 सेकण्ड में मानव ने पूरे पर्यावरण को इतना दूषित कर दिया है कि आज विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती जा रही हैं।

विभिन्न ग्रह अपनी स्थिति के अनुसार ऊर्जा पुंज बनाते हैं। इसका मनुष्य जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन ऊर्जाओं को ब्रम्हाण्डीय ऊर्जा कहते हैं। भूगर्भीय ऊर्जा जमीन के अंदर चट्टानों के बीच की दरारों एवं जमीन के अंदर बहने वाली जलधाराओं के कारण ऊपर आती है। इन ऊर्जाओं की मात्रा, कारक तत्वों पर निर्भर करती है। यह ऊर्जाएँ हम किस स्थान पर माप रहे हैं। इन ऊर्जाओं की मात्रा अक्षांश, देशांश, ऊँचाई आदि पर निर्भर है। विभिन्न जलवायु के अनुसार ऊर्जाओं की मात्रा परिवर्तित होती रहती है।

आज मानव ने पूरी पृथ्वी पर विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का जाल सा बिछा दिया है, कांक्रीट के बड़े-बड़े जंगल खड़े कर दिए गए हैं। औद्योगीकरण की तीव्रता बढ़ती जा रही है। इन सभी का प्रभाव जीव-जगत् पर पड़ रहा है। मानव की मूलभूत आवश्यकता है- 'पानी', जिसके लिए हमने जगह-जगह नदियों को रोककर बड़े-बड़े बाँध बना दिए हैं। हमने सिंचाई करने के लिए अलग-अलग जगह नहरें बना दी हैं, अतः पानी को पाने के लिए पर्यावरण परिवर्तित कर दिया है। हमने बड़े-बड़े विद्युत स्टेशन, रासायनिक संयंत्र लगाए हैं। इनसे निकलने वाला प्रदूषण हम पर दूषित प्रभाव डाल रहा है।

वायुमंडल में बढ़ती गैसों प्राणरक्षक कवच 'ओजोन परत' को नष्ट करती है। ओजोन परत मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ओजोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को ढाल की तरह रोककर इन किरणों के दुष्प्रभाव से जीव-जगत को बचाती हैं। ये हानिकारक किरणें भूमंडल पर आकर हमारे शरीर में त्वचा कैंसर पैदा करती हैं।

... ३ विष्णु ...
... ५ ...
... १० ...
... १५ ...
... २० ...
... २५ ...
... ३० ...
... ३५ ...
... ४० ...
... ४५ ...
... ५० ...
... ५५ ...
... ६० ...
... ६५ ...
... ७० ...
... ७५ ...
... ८० ...
... ८५ ...
... ९० ...
... ९५ ...
... १०० ...
... १०५ ...
... ११० ...
... ११५ ...
... १२० ...
... १२५ ...
... १३० ...
... १३५ ...
... १४० ...
... १४५ ...
... १५० ...
... १५५ ...
... १६० ...
... १६५ ...
... १७० ...
... १७५ ...
... १८० ...
... १८५ ...
... १९० ...
... १९५ ...
... २०० ...
... २०५ ...
... २१० ...
... २१५ ...
... २२० ...
... २२५ ...
... २३० ...
... २३५ ...
... २४० ...
... २४५ ...
... २५० ...
... २५५ ...
... २६० ...
... २६५ ...
... २७० ...
... २७५ ...
... २८० ...
... २८५ ...
... २९० ...
... २९५ ...
... ३०० ...
... ३०५ ...
... ३१० ...
... ३१५ ...
... ३२० ...
... ३२५ ...
... ३३० ...
... ३३५ ...
... ३४० ...
... ३४५ ...
... ३५० ...
... ३५५ ...
... ३६० ...
... ३६५ ...
... ३७० ...
... ३७५ ...
... ३८० ...
... ३८५ ...
... ३९० ...
... ३९५ ...
... ४०० ...
... ४०५ ...
... ४१० ...
... ४१५ ...
... ४२० ...
... ४२५ ...
... ४३० ...
... ४३५ ...
... ४४० ...
... ४४५ ...
... ४५० ...
... ४५५ ...
... ४६० ...
... ४६५ ...
... ४७० ...
... ४७५ ...
... ४८० ...
... ४८५ ...
... ४९० ...
... ४९५ ...
... ५०० ...
... ५०५ ...
... ५१० ...
... ५१५ ...
... ५२० ...
... ५२५ ...
... ५३० ...
... ५३५ ...
... ५४० ...
... ५४५ ...
... ५५० ...
... ५५५ ...
... ५६० ...
... ५६५ ...
... ५७० ...
... ५७५ ...
... ५८० ...
... ५८५ ...
... ५९० ...
... ५९५ ...
... ६०० ...
... ६०५ ...
... ६१० ...
... ६१५ ...
... ६२० ...
... ६२५ ...
... ६३० ...
... ६३५ ...
... ६४० ...
... ६४५ ...
... ६५० ...
... ६५५ ...
... ६६० ...
... ६६५ ...
... ६७० ...
... ६७५ ...
... ६८० ...
... ६८५ ...
... ६९० ...
... ६९५ ...
... ७०० ...
... ७०५ ...
... ७१० ...
... ७१५ ...
... ७२० ...
... ७२५ ...
... ७३० ...
... ७३५ ...
... ७४० ...
... ७४५ ...
... ७५० ...
... ७५५ ...
... ७६० ...
... ७६५ ...
... ७७० ...
... ७७५ ...
... ७८० ...
... ७८५ ...
... ७९० ...
... ७९५ ...
... ८०० ...
... ८०५ ...
... ८१० ...
... ८१५ ...
... ८२० ...
... ८२५ ...
... ८३० ...
... ८३५ ...
... ८४० ...
... ८४५ ...
... ८५० ...
... ८५५ ...
... ८६० ...
... ८६५ ...
... ८७० ...
... ८७५ ...
... ८८० ...
... ८८५ ...
... ८९० ...
... ८९५ ...
... ९०० ...
... ९०५ ...
... ९१० ...
... ९१५ ...
... ९२० ...
... ९२५ ...
... ९३० ...
... ९३५ ...
... ९४० ...
... ९४५ ...
... ९५० ...
... ९५५ ...
... ९६० ...
... ९६५ ...
... ९७० ...
... ९७५ ...
... ९८० ...
... ९८५ ...
... ९९० ...
... ९९५ ...
... १००० ...

वायु प्रदूषण से बचाव का एकमात्र उपाय वनस्पतियों तथा वन को काटने से रोकना हैं। हमें प्रकृति के साथ सफलतापूर्वक जीने की कला सीखनी है। पर्यावरण के प्रति उदासीनता के इस वातावरण में कुछ आशा की किरणें भी दिखाई देती हैं। वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवियों का पर्यावरण के लिए विभिन्न रूप से आंदोलन प्रारंभ हुआ है। इसमें प्रदूषण के कारणों को दूर करना, कार्बनडाइऑक्साइड फैलाने वाले वाहनों को रोकना, भवन निर्माण वास्तु अनुरूप करना आदि है। जब हम इस ओर अपना लक्ष्य तय कर लेंगे तभी स्वास्थ्य एवं समृद्धि की कामना की जा सकती है।

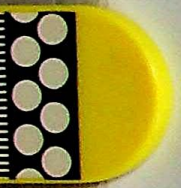
विद्युत चुंबकीय ऊर्जा:- हमारा सौरमंडल पूर्णतः विद्युत चुंबकीय तरंगों से भरा हुआ है। सूर्य से निकलने वाली किरणें, ऊर्जा की तरंगें तथा सौर-मंडल में भ्रमण कर रहे ग्रहों की गति आदि विद्युत चुंबकीय तरंगें पैदा करती हैं। सौर-मंडल का उपग्रह हमारी पृथ्वी है एवं इसमें चुंबकीय शक्ति होती है।

हमारे शरीर में विद्युत चुंबकीय तरंगें होती हैं जिनके कारण हमारा हृदय क्रियाशील रहता है, मस्तिष्क सक्रिय रहता है, इन्द्रियाँ अपना काम करती हैं और हाथ पैर कार्य करते हैं। यह विद्युत ही मनुष्य को जीवनशक्ति अर्थात् चेतना प्रदान करती है। आज विज्ञान बहुत उन्नत और विकसित हो गया है, वैज्ञानिकों ने अच्छे-अच्छे आविष्कार किये हैं। वर्ष 1882 में विद्युत का आविष्कार हुआ था - डायरेक्ट करंट के रूप में इसके बाद इसको विकसित किया गया और अल्टरनेट करंट 110 वोल्ट, 220 वोल्ट, 440 वोल्ट के बाद आज हजारों मैगावाट सामने आए। आज तो बिना तारों के, एक जगह से दूसरी जगह, वायुमंडल के माध्यम से तरंगें भेजी जा रही हैं। ये तरंगें अदृश्य होती हैं, और हमारे शरीर के चारों ओर रहती हैं।

आज कल हम अपने मनोरंजन के लिये अपने शयन-कक्ष में टी.वी., म्यूजिक-सिस्टम, एयरकंडीशनर आदि लगाकर रखते हैं, हमारे पलंग पर लगे बिजली के स्विच या साइड लैंप से विद्युत तरंगें हमारे शरीर तक पहुँचकर एक तरह से तनाव पैदा करती हैं जिस कारण कई तरह की बीमारियाँ पैदा होती हैं। विद्युत चुंबकीय तरंगें ऋणात्मक ऊर्जा उत्पन्न करती हैं अतः स्वस्थ, सबल और स्फूर्तिदायक बने रहने के लिये हमें बाहरी उच्च विद्युत चुंबकीय तरंगों से बच कर रहना चाहिये। विद्युत के स्विच, उपकरण तथा यंत्रों को यथा संभव दूर रखना चाहिये, जिससे हम अपनी दिनचर्या में विद्युत चुंबकीय तरंगों के प्रभाव से बच सकें।

अध्याय - चतुर्थ





भूमिका

दक्षिण भारत के भौगोलिक लक्षण

यह आम धारणा है कि मानव इतिहास के विकास के दौर में वहाँ के भूगोल तथा प्ररूपणों (परिस्थितियों एवं लक्षणों) का प्रभाव पड़ता है अतः किसी स्थान के इतिहास का अध्ययन प्रारंभ करने के पूर्व उसके भूगोल से परिचित होना अनिवार्य है। अतएव हम सर्वप्रथम दक्षिण-भारत के भूगोल की एक झलक देखते हैं। भारतीयों ने पौराणिक काल से ही एक एकल इकाई के रूप में भारत की अवधारणा विकसित कर ली थी। निम्न विष्णु पुराण से ली हुई निम्नलिखित प्रार्थना तथ्य की पुष्टि करती हैं -

उत्तरम यत् समुद्रस्य हिमदृश्चैव दक्षिणम्।

वर्षम् ताद् भारतम् नामा भारति यत्र संथैतिः। (विष्णुपुराण 2.3-1)

दूसरे शब्दों में उत्तर में महान हिम आच्छादित पर्वतों तथा दक्षिण में महान महासागर के मध्य की धरती 'भारत' थी जिसमें 'भरत मुनि' की पीढ़ियाँ निवास करती थीं, अतः भारत को दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत के रूप में विभाजित करना उचित नहीं है। वैसे भी दक्षिण भारत एक पृथक भूखंड नहीं हो सकता, क्योंकि वह कभी भी शेष भारतीय उपमहाद्वीप से विलग (कटा हुआ) नहीं था। बहरहाल केवल मानसिक सहूलियत के दृष्टिकोण से ही इस विभाजन को किया जा सकता है।

सभी प्रायोगिक उद्देश्यों हेतु दक्षिण-भारत का अर्थ है वह भूमि जो विंध्य पर्वतमाला के दक्षिण की ओर स्थित है। वह धरती जो इस (विंध्य) के उत्तर में स्थित है, जिसमें हिम पर्वत श्रृंखलाएँ भी शामिल हैं, 'उत्तर भारत' है। दक्षिण भारत, नर्मदा, ताप्ति नदियों, विंध्यपर्वत, सतपुड़ा, पर्वतमाला तथा महाकन्तर नामक घने जंगलों के द्वारा बनी पंच परत विभाजक रेखा की सहायता से 'हिंदुस्तान' के उत्तरी मैदानों से विभाजित है।

विंध्य पर्वतमाला के बाँई ओर महान महासागर तक विस्तार लिये हुए पूरे भूखंड के अपने स्वयं के भौगोलिक चारित्रिक लक्षण हैं, जमीन का यह खंड तीव्र ढलान/चढ़ाई लिये नर्मदा घाटी तक बढ़ता चला जाता है। नर्मदा नदी के दक्षिणमें सतपुड़ा श्रृंखला एवं महादेव पहाड़ी दीवार उपस्थित है। ताप्ति नदी सतपुड़ा पर्वतमाला की दक्षिणी ढलानों से नर्मदा नदी के समानांतर पश्चिम की ओर बहती है। पूर्व में महानदी बंगाल की खाड़ी तक जाती है। यह भौगोलिक स्थिति प्राकृतिक रूप से प्रायः द्वीपीय भारत को उत्तर के मैदानी क्षेत्रों से अलग रखती है, बहरहाल यह नहीं कहा जा सकता कि

किसी भी काल में उत्तर तथा दक्षिण के मध्य कोई अंतर रहा या संचार बाधित हुआ था। पूर्व ऐतिहासिक काल से निरंतर इन दोनों भागों के मध्य अखंड तथा सतत् सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संपर्क के सूत्र पाए जाते हैं।

भारत वर्ष के नक्शे पर डाली गई एक दृष्टि से ही पता चल जाता है कि प्रायः द्वीपीय भारत स्वयं को महासागर में तीव्रता से आगे बढ़ाता है। इसके दोनों ओर पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी, इसके तटों पर हिलोरें लेते रहते हैं। "कैप कोमोरिन" पर जैसे-जैसे भूमि हिंद महासागर पहुंचती है, धरती संकीर्णतर होती जाती है। "कैप कोमोरिन" उत्तर पश्चिम दिशा में मालाबार तट तथा उत्तर-पूर्व दिशा में कोरोमंडल तट हजार मील तक चलते जाते हैं। दोनों ही ओर कुछ प्राकृतिक पोत-आश्रय हैं। समुद्री यातायात हेतु पश्चिमी तट कोरोमंडल तट की अपेक्षा अधिक लाभदायक हैं, जैसा कि विद्वान प्राध्यापक श्री.के.एन.नीलकंठ शास्त्री का अवलोकन है पश्चिमी तट पर गोवा, कोचीन तथा मुंबई अति-उत्तम बंदरगाह हैं। यह बंदरगाह जहाजों के लिये उत्तर लंगर के काम आते हैं। वे कहते हैं "भूमध्य सागर तथा अफ्रीका से चीन के बीच के समुद्री मार्ग के मध्य स्थित होने के कारण से प्रायः द्वीपीय भारत के दोनों ओर (चीन-अफ्रीका) के देशों से भारत का स्फूर्तिदायक व्यापार बना रहा और उसकी बंगाल में फैली पूर्वी भूमि के उपनिवेशन में महती भूमिका रही।"

दक्षिण भारत की मुख्य भूमि पनपती वनस्पति, महान पर्वत श्रृंखला, पश्चिमी घाटों, पूर्वी घाटों तथा लाभकारी नद् प्रणाली से समृद्ध है। इस वनस्पति में सागौन, शीशम् तथा जंगली बाँस के घने जंगल शामिल हैं। इस भूमि में कॉफी, इलाइची तथा कालीमिर्च आदि प्रचुरता से उगाई जाती है। सामान्यतः दक्षिण में वर्षा की दर निम्न है। अलग-अलग वर्षा दर इन फसलों को बहुत प्रभावित करती है। पश्चिमी घाट या सह्याद्री श्रृंखला नीलगिरी से विभक्त हो जाती है तथा पश्चिमी तट के साथ-साथ फैलती जाती है। विभिन्न बिन्दुओं पर इसकी ऊँचाई 2000 से 9000 फुट तक परिवर्तित होती रहती है, पूर्वी घाट इतने ऊँचे नहीं है, इन पर्वत श्रृंखलाओं के बीच बृहत् समतल भूमि है जहाँ समृद्ध संस्कृतियों का उदय हुआ।

दक्खन पठार एक ऊँची सपाट त्रिकोण भूमि है, जो कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के उत्तर में स्थित है। विंध्य तथा सतपुड़ा पर्वतमालाओं द्वारा उत्तरी मैदानों से विभक्त है, इसके आगे के पूर्वी घाट तथा पश्चिमी घाट आपस में मिलकर इसे सुदूर दक्षिण से विलग कर देते हैं। कोरोमंडल तट पूर्वी घाट तथा बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थित है। पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के बीच मालाबार घाट तथा कोंकण स्थित हैं।

दक्षिण भारत की नदियाँ प्रचुर मात्रा में कृषि हेतु अति उत्तम सुविधाएँ प्रदान करती हैं। नर्मदा, महानदी तथा तुंगभद्रा कृषि हेतु अनुकूल नहीं हैं वे गहरी तथा चट्टानी सतह वाली हैं, किन्तु कुछ समय तक उन्होंने उत्तरी घुसपैठियों के लिए प्राकृतिक बाधा के रूप में भूमिका का निर्वहन किया। दक्षिण भारत के इतिहास में पूरे समय कृष्णा, गोदावरी और कावेरी नदियाँ जीवनदायी घटक रही हैं। महासागर में मिलने के पहले उन्होंने खेतों को सींचा तथा सम्पन्न वनोपज का कारक बनीं। वास्तविकता तो यह है कि पवित्र गंगा की तुलना में इन नदियों की पवित्रता का मूल्य कहीं से भी कम नहीं रहा और यह तथ्य उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, पवित्र कावेरी कुर्ग के ब्रम्हगिरी में अपने उद्गम से सम्पूर्ण दक्षिण कर्नाटक तथा तमिल देश से बहती है।

दक्षिण के वातावरण की जलवायु ने सुपारी, नारियल, धान तथा अन्य उष्णकटिबंधीय फसलों हेतु सुविधाएँ प्रदान की हैं। इन सभी घटकों ने दक्षिण-भारत को अपना स्वयं का एक विशिष्ट अस्तित्व तथा अपनी स्वयं की एक विभिन्न संस्कृति प्रदान की है। बहरहाल शनैः शनैः जब 'आर्यीकरण' प्रारंभ हुआ दक्षिण भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर लिया गया और एक संश्लेषण में दक्षिण भारतीय संस्कृति ने अपना प्रभुत्व कायम रखा।

आधुनिक काल में भी ये भौगोलिक घटक दक्षिण भारत के लोगों के जीवन में अविस्मरणीय भूमिका निभा रहे हैं। पश्चिम तट तथा पूर्वी तट पर स्थित बंदरगाह मूल्यवान विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं। इस क्षेत्र के विकास में नदियों ने काफी सहायता की है उन पर विद्युत उत्पादक परियोजनायें तथा सिंचाई परियोजनाएँ स्थापित की गई हैं। पहले सारा पानी बहकर महासागर में चला जाता था, किन्तु अब यह पानी समुद्र में मिलने के पहले लाखों एकड़ भूमि को सिंचित करके फिर उसमें समाता है।

4. केरल प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

केरल यह एक छोटा सा राज्य है, जो भारतीय उपमहाद्वीप के दक्षिण-पश्चिम समुद्र तट पर स्थित, सुदृढ़ भाषाई ईकाई है, जिसका सतत एवं अभूतपूर्व इतिहास तथा परंपरा है, जिसने दीर्घ काल तक विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों को आत्मसात किया है।

केरल राज्य - "केरा + आलयम्" अर्थात् नारियल का देश। केरलम् से ही केरल बना है। ईस्वी सन् 52 में ईसा के शिष्य "सेंट-थॉमस" ने यहाँ आकर ईसाई धर्म की नींव रखी। केरल प्रदेश के कई नाम थे चेरलम्, केरम तथा सेरम। चेरा नामक देश ईसा से तीन शताब्दी पूर्व भी विद्यमान था। काडवेल ने 'कंपेरिटिव ग्रामर ऑफ द्रविडियन लैंग्वेज' में कहा है कि केरम यहाँ का सबसे प्राचीन नाम था। यह एक वृक्ष (नारियल) का नाम है जो केरल में बहुतायत से होता है, क्या वृक्ष का नाम ही प्रदेश का नाम है? कुछ लोगों का मत है कि नारियल केरल में ईसा से पूर्व नहीं जाना जाता था। इस मत के पक्ष में कहा जाता है कि ग्रीक पैरीपल्स (एक ग्रीक-ग्रंथ जो ईसा के पश्चात प्रथम शताब्दी में लिखा गया) में ऐसा कहा गया है।¹

एम.आर.बालकृष्णन् वैरीयर ने अपनी पुस्तक "प्राचीन केरलम्" में लिखा है कि द्रविडियन शब्द चेर में "एल" को जोड़ कर "चेरल" शब्द बना है यह प्रदेश पहाड़ों द्वारा जुड़ा हुआ है किंतु "चेरल" क्रिया के रूप में समस्त शब्द का अर्थ बताने में असमर्थ है। संस्कृत में "चेरा" को "केरा" कहते हैं और आलम् का अर्थ है "देश" इस प्रकार केरल का अर्थ है चेरा लोगों का देश।²

4.1 केरल की उत्पत्ति - 'करेलोलपन्ति, नामक प्राचीन ग्रंथ में केरल की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि परशुराम नामक पौराणिक नायक ने समुद्र में से जमीन को निकाला और चौंसठ ग्रामों (नंबूदरी ब्राम्हणों का गाँव) का निर्माण किया तथा इन्द्र के पौत्र केरलन (जयंत के पुत्र) का नाम इन ग्रामों को दिया। इस प्रदेश के भाग्य निर्माण में समुद्र तथा पहाड़ों का विशेष योगदान रहा है। बहुत सी पौराणिक कथाएँ तथा विश्वास इनसे जुड़े हैं। परशुराम की कथा इस प्रदेश के निर्माण के महत्वपूर्ण युग तथा लोगों पर प्रकाश डालती है। इस कथा को ऐतिहासिक सत्य नहीं कह सकते। विष्णु के अवतार परशुराम ने क्षत्रियों को मारने के अपराध से मुक्ति पाने के लिये ब्राम्हणों को भूमि दान दी। उन्होंने समुद्र के देवता वरुण से प्रार्थना की और समुद्र-देवता के आदेश से समुद्र पीछे हट गया, निश्चय ही यह उस युग की कथा है जब से यह प्रदेश कुलीन ब्राम्हणों के आधिपत्य में आया।³

1. दत्त रोमेश चन्द्र, इन एन्सिएन्ट इंडिया, खंड - 1 पृ. 153

2. अय्यंगार टी.आर.शेषा, द्रविडियन इंडिया, पृ. 185

3. पन्नीकर केरलम् नाशायण, केरल लोक सांस्कृतिक और साहित्य, पृ. 1

Digitized by eGangotri, Karoundi, Jabalpur, MP Collection.

एक पौराणिक कथा यह भी है कि परशुराम ने अपना फरसा समुद्र में फेंका जहाँ तक वह फरसा गया वहाँ तक समुद्र पीछे हट गया, इस कथा को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता। भौगोलिक परिवर्तन होने के कारण केरल की निचली भूमि समुद्र तट से नीची हो सकती है। संभव है कि भूमि के आंतरिक परिवर्तनों द्वारा यह ऊपर आ गई समुद्री तट पर इस प्रकार के परिवर्तन अब भी होते रहते हैं। कुछ लेखकों का मत है कि परशुराम की कथा अति प्राचीन नहीं हो सकती उनका विचार है कि इस चरित्र का निर्माण बाद में हुआ। परशुराम की क्षत्रियों से लड़ाई वास्तविक लड़ाइयों पर आधारित है जो (1400-1600 ई.पूर्व) पुजारियों के बीच हुई, इसी समय जाति प्रथा का निर्माण हुआ। यदि यह कथन सत्य है तो केरल के निर्माण का दायित्व परशुराम को नहीं दिया जा सकता क्योंकि केरल के विषय में ई.पूर्व 150 पतंजलि ने अपने ग्रंथों में लिखा है, " महाभारत, रामायण, वायुपुराण, मत्स्य पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण में भी इस प्रदेश के विषय में चर्चा हुई है, महाभारत, रामायण, तथा हरिवंश में केरल को हुन, पुलिंद, चांडाल, स्वपेच आदि घृणित लोगों का स्थान बताया है।²

4.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-

केरल का इतिहास- ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले हमें चेर राजवंश का पता चलता है। 113 ई.पूर्व से लगभग 427 ईस्वी तक इस प्रदेश पर चेर राजवंश के पेरुमल राज्य करते थे। पेरुमल का अर्थ होता है चक्रवर्ती। इनमें उनियन चेरन नाम का एक प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट हुआ था। उस समय छोटे-छोटे राज्य मिलकर एक हो गये और इस प्रदेश का नाम हुआ चेरनाडू। इसी काल में आर्य लोग उत्तर से आए। इनके पहले यहाँ गणतंत्र था। आर्य ब्राह्मणों ने आकर संघशक्ति का निर्माण किया। पाँचवी शताब्दी के बाद चेर राजवंश के इतिहास का कुछ पता नहीं लगता। यह काल अंधकार युग के नाम से जाना जाता है। फिर 825 में कुलशेखर से चेर नरेशों के शान का नया अध्याय शुरू हुआ।

दसवीं सदी के आरंभ तक इसके एक भाग पर बीच-बीच में कुछ दिनों के लिये तमिल के चोल राजाओं का अधिकार भी रहा। खिलजी सुल्तान के सेनापति मलिक काफूर ने इसका अंत कर दिया। सत्रहवीं सदी में इस प्रदेश का उत्तरी भाग मैसूर के राजा के अधीन रहा। टीपू ने भी कुछ समय तक इसे अपने अधिकार में रखा था, शेष भाग पर स्थानीय राजा राज करते थे।¹

केरल के उत्तरी भाग पर कालिकट के सामुतिरियों का बहुत समय तक शासन रहा। इस समय अरब के व्यापारी यहां आया करते थे और यहीं पर 24 अप्रैल 1498 के दिन पुर्तगाल का यात्री

1. प्रभाकर विष्णु, एक देश एक हृदय - पृ. 147

2. पन्नीक्कर कवलम नारायण, केरल-लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 4

वास्कोडिगामा आया था, फिर डच का आगमन हुआ, डच और पुर्तगाली लंबे समय तक संघर्ष करते रहे और अंत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने तिरुवितांकूर (त्रावणकोर) राज्य को अपने अधिकार में ले लिया। स्वाधीनता के बाद 1 जुलाई 1949 को तिरुवितांकूर (त्रावणकोर) और कोचीन की रियासतों को मिलाकर तिरुक्कोच्ची की स्थापना हुई। 1956 में भाषावाद राज्यों की स्थापना के समय मालाबार और मद्रास के कुछ भाग इसमें शामिल हो गये और कन्याकुमारी का क्षेत्र इससे अलग हो गया। मालाबार माले शब्द से निकला है, पश्चिमी तट के एक बंदरगाह को, जहाँ कालीमिर्च पैदा होती है, विदेशी यात्रियों ने "माले" कहा है। अरबी में "बार" का तात्पर्य महाद्वीप होता है तथा "माले" तथा "बार" से मिलकर मालाबार बना है।

4.3 भौगोलिक स्थिति - केरल ($8^{\circ}15$ से $12^{\circ}45$ और $75^{\circ}52$ से $77^{\circ}08$) यह भारत के दक्षिण - पश्चिम प्रायः - द्वीप पर स्थित एक सँकरी पट्टी है। जिसकी चौड़ाई उत्तर और दक्षिण में 30 किलोमीटर से परिवर्तित होकर मध्य भाग में 130 किलोमीटर तक है। यह 38,854.97 किलोमीटर के भाग में फैला है जो संपूर्ण भारत के क्षेत्रफल का 1.18 % है।

केरल प्रांत के पूर्व में पश्चिमी घाट एक प्राकृतिक सरहद निर्मित करते हैं। मालाबार क्षेत्र में घाट केरल को एक सतत 2000 से 8000 फुट ऊँचाई तक की दीवारों (बाधा) के द्वारा कुर्ग, नीलगिरी से पृथक् कर देते हैं। इस दीवार में पालघाट दरार के सहारे 18 मील चौड़ा विघ्न निर्मित है। घाट लंबे पर्वत स्कंधों के सहारे बाधित है। जो समुद्र सतह से 5000 फुट की ऊँचाई तक ऊँचे उठ जाते हैं। पूर्व में स्थित 'अन्नामुडी चोटी' की अधिकतम ऊँचाई समुद्रतल से 8837 फुट है। इसके चारों ओर स्थित अनेकानेक चोटियों के गुच्छ को 'उच्च श्रृंखलाओं' का नाम दिया गया है। इस समूह के दक्षिण में 'अन्नामलाई और इलायची पहाड़ियाँ' हैं। जहाँ भूमि एक पर्याप्त चौड़ाई के पठार का रूप 5000 फुट तक जाने वाली पहाड़ियों के साथ-साथ ले लेती है। इस 'उच्च श्रृंखला' की बाकी लंबाई में 4000 फुट उठाव लिए एक पहाड़ी टीला समाया है जिनमें 'अगरस्त' तथा 'महेन्द्रगिरी' चोटियाँ सबसे प्रमुख हैं।

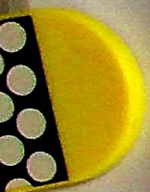
केरल प्रांत के पश्चिम दिशा की ओर अरब सागर है, भारत प्रायद्वीप के पश्चिमी घाट के उच्च शिखरों से लगभग 44 नदियाँ निकली हैं और उनमें से 41 नदियों का पानी या तो वापस लौटता है या अरब सागर में जाता है।

भौगोलिक दृष्टि से केरल को तीन प्राकृतिक भागों में विभाजित कर सकते हैं :²

1. निचली भूमि
2. मध्य भूमि
3. उच्च भूमि

1. सिंह गोपाल, भारत का भूगोल पृ. 4, 2

2. जनरल, कर्नाटक हिस्ट्री ऑफ़ केरल, पृ. 31
 Digitized by eGangotri, Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



Ker
sica

aksh
S

adwe

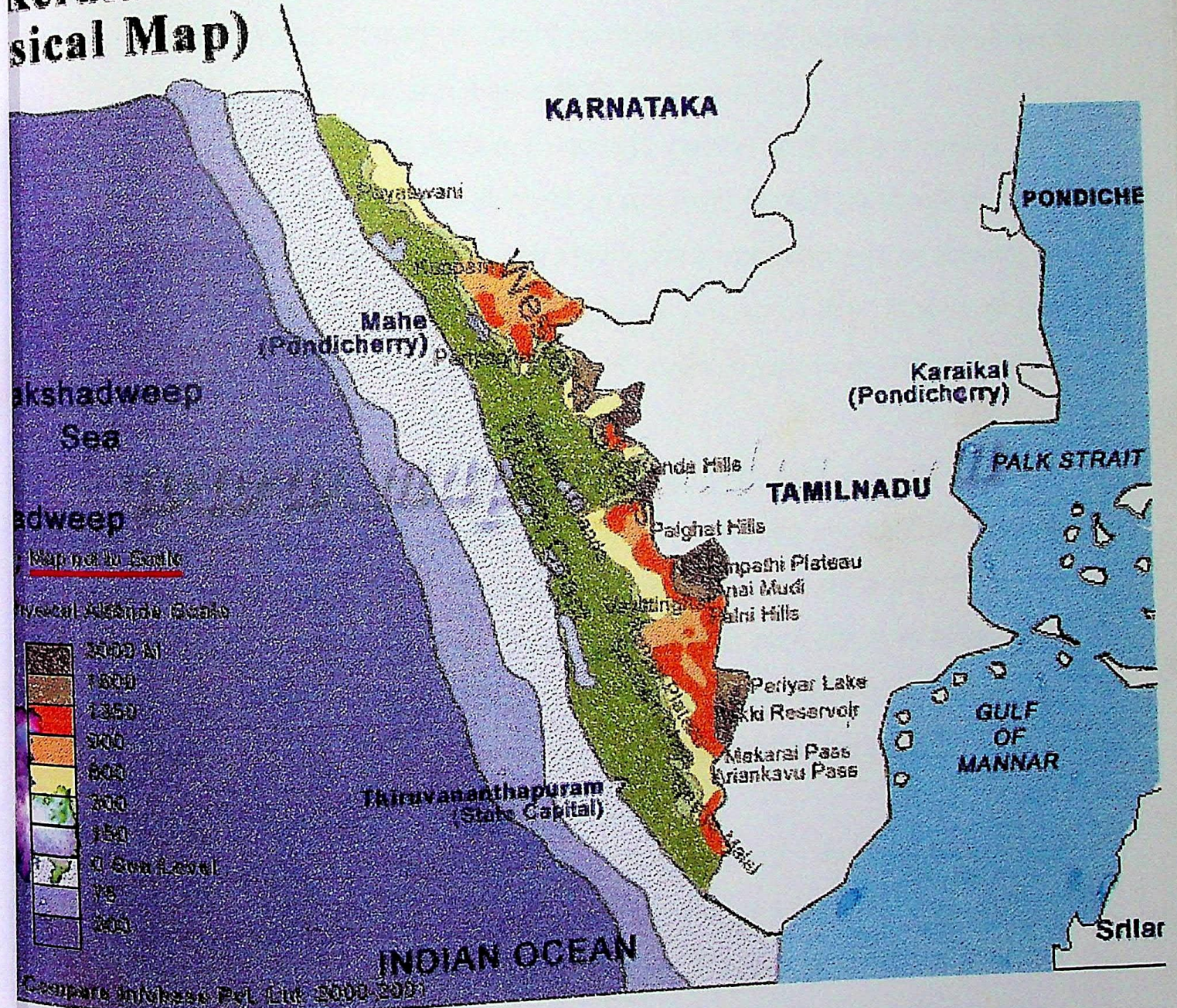
7/1/19

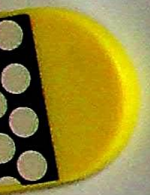
1/1/19



Comp

Kerala Physical Map)





1. निचली भूमि अर्थात् निचला समुद्र तटीय भाग बाढ़ से खेती में जमी धूल और मिट्टी से भरा है। इनमें रेत का किनारा लगातार बढ़ना, समुद्र किनारे छोटे-छोटे गड्ढे, अवरोधक, नदी के मुहाने से वापस आया हुआ पानी समुद्र की जमीनी शक्ल को बदल देता है। यह वापस आया हुआ पानी आमतौर पर समुद्र किनारे से समानांतर बहता है यदा-कदा समुद्र में स्थाई या मौसमी समुद्र कटाव द्वारा मिलता है। केरल के निचले भाग में सर्वाधिक अस्वाभाविक पहलु अर्थात् वहाँ के प्रसिद्ध पश्चजल (Back - Water) जो कण्णूर से दक्षिण में लगभग कोवलम की दूरी तक फैलते हैं। निचले भाग में दक्षिण में 900 मि.मी. तथा उत्तर में 3500 मि.मी. की औसत वर्षा है।

2. मध्य भूमि का भाग लाल मिट्टी का है। मध्य भूमि श्रृंखलाओं की ऊँचाई 8 से 75 मीटर तक है जो कई नदियों और जलधाराओं को काटती है। लाल मिट्टी की ऊँची समतल भूमि का विस्तार पहाड़ी जमीनी भाग में लगातार हल्के उतार और समुद्र तट के पास समतल समुद्र तट और समुद्र तल एक में मिलते हैं। चौरस बाह्य तल की श्रृंखलाएँ (नष्ट होती सतह व मिट्टी के कटाव की क्रिया सूचित करती हैं) इस क्षेत्र में जानी गई हैं। मध्य भूमि में दक्षिण में 1400 मि.मी. तथा उत्तर में 4000 मि.मी. की औसत वर्षा होती है।

3. उच्च भूमि जहाँ पर धूसर सख्त पत्थर और चार्नोकाइट की चट्टानें हैं। उच्च भूमि में केरल प्रांत की पूर्व दिशा में पश्चिमी घाट की पश्चिमी ढलान भी शामिल है। जो शुरु से आखिर तक पहाड़ी टीलों एवं पहाड़ों की श्रृंखला से होती हुई समभूमि के तुलनात्मक रूप से कम ऊँचाई वाले भाग तक गई है। पश्चिमी घाट का पूर्वी पार्श्व भाग कई स्थानों पर सीधी ढलान वाला है जो तमिलनाडू की समभूमि पर सीधी ढलान के साथ ही समाप्त होता है। उच्च भूमि में दक्षिण में 2500 मि.मी. तथा उत्तर में 4000 मि.मी. की औसत वर्षा है। यह विस्तृत परिवर्तन वहाँ के भौतिक लक्षण प्रदर्शित करता है।

दृश्यभूमि की विविधता इस प्रदेश का विशेष लक्षण है। करीब-करीब 40,000 वर्गमील (1.02,400 वर्ग कि.मी.) क्षेत्र में प्रसार लिये और अपने एक ओर लक्ष्यद्वीप समुद्र तथा दूसरी ओर पश्चिमी घाट की ऊँचाईयों को रखते हुए केरल 375 मील (600 कि.मी.) लंबा है व 47 मील (75 कि.मी.) चौड़ा ही है। समुद्रतल एवं ऊँचे पर्वतों के मध्य केरल की ऊर्वरा धरती पर मानसून, जो कि 2 से 3 माह के अन्तराल से आता है, के द्वारा तथा उन 41 नदियों जो पर्वतों से पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर बहती हैं के द्वारा अच्छी तरह सिंचित है। यह नदियाँ मुख्यतः वर्षा के पानी से भरती है, तथा उनमें से अधिकतर स्थायी स्वरूप भी है। वर्षा ऋतु में नदियाँ विप्लवकारी रूप में बहती

हैं एवं बड़ी नदियाँ हमेशा खतरे के निशान से 3-4 मीटर ऊपर बहती हैं। जिसके कारण मध्य तथा समुद्रतटीय भूमि पर दूर-दूर तक बाढ़ की स्थिति होती है। केरल की नदियों का कुल बहाव लगभग 2,50,000 दशलक्ष (million) फुट है जो कि संपूर्ण भारत के पानी की शक्ति का 5% है। केरल प्रांत का समुद्र किनारा लगभग 560 कि.मी. लंबा है। वहाँ 7 समुद्रताल तथा 27 नदी के मुहाने हैं। जिसमें वेम्बनाद तालाब सबसे बड़ा है, जिसका क्षेत्रफल 205 कि.मी. है।

जलवायु का प्रभाव :- वर्षा की अधिकता, सूर्य की प्रखरता तथा प्राकृतिक सौंदर्य इस क्षेत्र के प्रमुख आकर्षण है। केरल वेलांचल युक्त राज्य है, नीची भूमि में पूरे वर्ष औसत तापमान 26.7° सेन्टीग्रेड के आसपास रहता है। जाड़ों का औसत तापमान 23.8° - 26.7° सेन्टीग्रेड तक और ग्रीष्मकाल में 26.7° से 29.4° से तक बदला करता है। मई के अधिकतम तापमान का औसत 32.2° से. तथा दिसंबर और जनवरी के न्यूनतम तापमान का औसत 21.1° से. है। पहाड़ियों पर सालभर तक अपेक्षाकृत मौसम ठंडा रहता है। जून के प्रारम्भ से सितंबर के अन्त तक तटीय मैदान में दक्षिण-पश्चिम मानसून के बादलों का काला और मोटा घटाचक्र काफी नीचे मंडराया करता है। ऊँचे पश्चिमी घाट को पार करने के प्रयत्न में बादल ऊँचे उठकर भारी वर्षा करते हैं। इन चार महिनों में मैदानों में 254 सेंटीमीटर और पश्चिमी घाट पर 500 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा होती है। वर्षा इतनी सुनिश्चित है कि लोग अनावृष्टि को जानते भी नहीं। दक्षिण केरल में अक्टूबर से दिसंबर के मध्य तक की अवधि में थोड़ी-थोड़ी वर्षा होती रहती है। जनवरी और फरवरी में मौसम सुहावना होता है, इन दिनों आकाश साफ रहता है, आर्द्रता कम (60 से 70 % तक) रहती है और रातें ठंडी होती हैं। मार्च, अप्रैल और मई में गरम और उमस वाला मौसम होता है, क्योंकि समुद्र से बहुत सी भाप वायु में पहुँचती है।

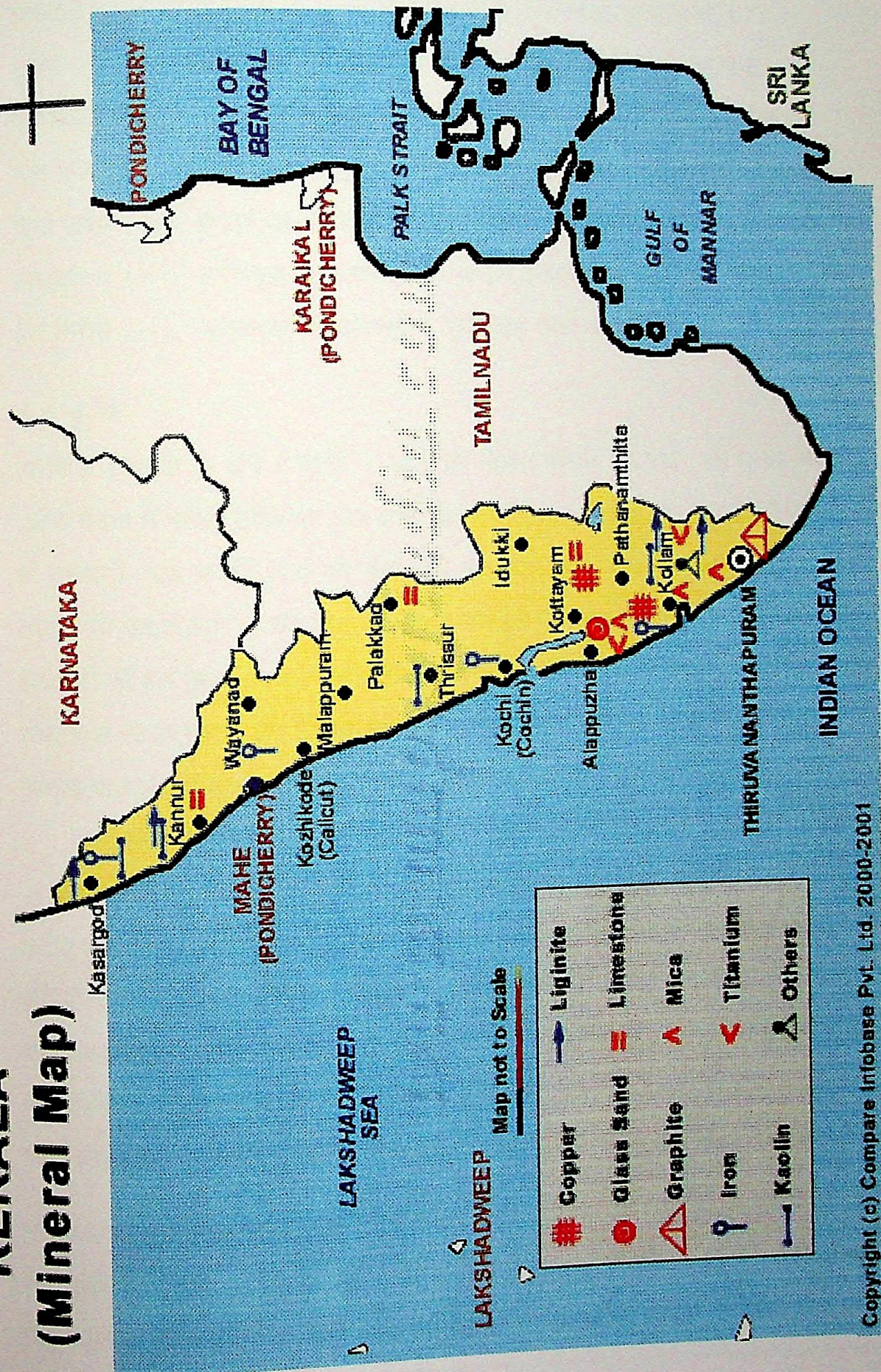
जल स्रोत - केरल प्रांत जल संपदा से पूर्ण है, इस प्रांत में 40 से अधिक नदियाँ हैं जिनमें से प्रमुख नदियाँ पेरियार, मलम्पुझा, भरतपूझा, पम्बा, अच्छनकोविल इत्यादि हैं। अन्य छोटी नदियाँ हैं, जो वर्षा काल में भरती है तथा उनमें से अधिकांश स्थायी स्वरूप हैं।

खनिज पदार्थ - खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह प्रांत संपन्न है। विभिन्न प्रकार के खनिज जैसे - इल्मेनाइट, मोनाजाइट, जिर्कॉन, सिलिमेनाइट, श्वेतमिट्टी, अभ्रक, ग्रेफाईट, चूने के पत्थर, लिगनाईट आदि के भंडार यहाँ पर हैं। केरल प्रांत के किस भाग में कौन सा खनिज पाया जाता है निम्नलिखित है -

2

www.mapsofindia.com

KERALA (Mineral Map)



Copyright (c) Compare Infobase Pvt. Ltd. 2000-2001

- तांबा - कोट्टायम एवं अल्लपूझा में तांबा पाया जाता है।
- ग्रेफाइट - त्रिवेन्द्रम जो केरल की राजधानी है, में ग्रेफाइट पाया जाता है।
- लोहा - कासरगोड, वायनाड, कोच्चि, अल्लपूझा में लोहा पाया जाता है।
- केयोलिन - कासरगोड, कन्नूर, अल्लपूझा, कोल्लम में यह खनिज पाया जाता है।
- भूरा कोयला - कासरगोड, कन्नूर, अल्लपूझा, कोल्लम में भूरा कोयला पाया जाता है।
- चूना पत्थर - कन्नूर, पल्लकड, कोट्टायम में चूना - पत्थर पाया जाता है।
- अभ्रक - अल्लपूझा, कोल्लम एवं त्रिवेन्द्रम में अभ्रक पाया जाता है।
- टिटैनियम - अल्लपूझा एवं कोल्लम में टिटैनियम पाया जाता है।

4.4 कृषि

आर्थिक विकास के क्षेत्र में कृषि - खेती की विविध फसलें इस राज्य की मुख्य विशेषता हैं। तटीय मैदान में चावल, टैपियोका और गन्ना की फसलें तथा नारियल और सुपारी की पैदावार, चाय के बागानों एवं काली मिर्च की बेलों की प्रधानता है। अधित्यकाओं (uplands) में रबड़, चाय, कहवा, सागौन और काजू के बागान और इन पेड़ों पर चढ़ती हुई काली मिर्च, अंगूर और इलायची की बेलें मुख्य उपज हैं। परवर्ती वनों के बीच में हरे-भरे धान के खेत उद्यान-आवासों के साथ इधर-उधर छिटके हुए हैं। इस राज्य के लगभग 27 % भूमि पर वन फैले हुए हैं, इन वनों से सागौन, रोजवुड, और महोगनी के वृक्ष काटकर निर्यात किये जाते हैं।¹

इस प्रदेश में गुजारा खेती और रोपण खेती (बागान) दोनों मिलती हैं। आधी से अधिक भूमि पर खेती होती है और बोई हुई भूमि के लगभग तिहाई भाग पर एक से अधिक बार खेती होती है। तटीय मैदान की गरम और तर जलोढ़ मृदा धान की खेती के लिये बहुत अनुकूल है। नदी घाटियों और डेल्टाओं में इसकी खास पैदावार होती है। क्षेत्रफल की प्रति इकाई में नारियल और अन्य रोपण फसलें चावल की तुलना में ज्यादा मूल्य की पैदा होती हैं। इन फसलों द्वारा अधिक मुनाफा मिलने के कारण लोग जहाँ तक संभव हो सकता है चावल के मुकाबले में इन्हीं फसलों को बोना पसंद करते हैं। फलस्वरूप, इस प्रदेश का मुख्य भोजन चावल होते हुए भी यह चावल की कमी वाला राज्य है।²

नारियल - यह प्रदेश भारत में नारियल उत्पादन के लिये विख्यात है। भारत में उत्पादित कुल नारियलों का लगभग दो तिहाई भाग केरल में पैदा होता है। नारियल, केरल के आर्थिक ढांचे में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। इस फसल ने बहुत से कुटीर उद्योगों को जन्म दिया है। इन

1. प्रभाकर विष्णु, एक देश एक हृदय - पृ. 141

2. सिंह गोपाल, भारत का भूगोल पृ. 415, 416

उद्योगों में गोले का तेल निकालना, नारियल के खोपड़े को लैगूनों के खारे पानी में या नदियों की तली में 6 से 10 महीने तक सड़ाकर उससे जटा निकालना, जटा के तंतुओं से चटाई और रस्सी बुनना और नारियल के पत्तों से टोकरियाँ बुनना शामिल हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नारियल इतना महत्वपूर्ण है कि इससे किसान की सम्पत्ति नापी जाती है। यह बताना आवश्यक है कि लैगून नारियल के छिलके को सड़ाने के लिये आदर्श स्थान है और यदि केरल में बहुत लैगून न होती तो शायद नारियल की जटा का उद्योग अपनी वर्तमान ऊँचाई पर न पहुँच पाता।

काजू - संसार के बाजार में काजू की पूर्ति के लिये भारत का लगभग एकाधिकार है। इसकी पैदावार मुख्यतः उच्चभूमि में होती है। भारत में काजू का प्रमुख उत्पादक राज्य केरल है। काजू को तैयार करने और पैक करने वाली फैक्ट्रियाँ पूरे प्रदेश में फैली हुई हैं किंतु इनका केन्द्रीकरण कोल्लम में है, जो काजू के कड़े फल एकत्र करने वाला मुख्य केन्द्र है। इस प्रदेश में कण्णूर जिला काजू का प्रमुख उत्पादक केन्द्र हैं।

काली मिर्च - यह बड़ी मूल्यवान नकदी फसल है, इसका पौधा आरोही लता होता है, जो आम, कटहल, सुपारी आदि पेड़ों पर चढ़ा दिया जाता है। अधिकांश घरों में काली-मिर्च को बाग की फसल की तरह उगाया जाता है। यह प्रदेश काली मिर्च का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है, और यहाँ सारे देश में उत्पन्न काली मिर्च का लगभग 75% पैदा होता है।

इलायची और लौंग अन्य महत्वपूर्ण नकदी फसलें हैं। इसकी पैदावार मुख्यतया: इडुक्की और कोट्टयम जिलों में होती है। भारत में उत्पन्न कुल इलायची की लगभग 40 % इस प्रदेश में पैदा होती है। चाय, कहवा और रबड़ के बागानों का महत्व पहाड़ियों पर है। केरल भारत का प्रमुख रबड़ उत्पादक राज्य है। देश में रबड़ के लिये प्रयुक्त कुल भूमि का लगभग 92% इसी राज्य में है। इस प्रदेश में चाय की पत्तियाँ चुनने का काम साल भर होता है। चाय की पैदावार मुख्यतः कोट्टायम जिले में होती है। अदरक और दालचीनी भी इस प्रदेश की उपज हैं। सारे देश में जितना अदरक होता है उसका आधे से अधिक इस प्रदेश में होता है।

मत्स्यन - केरल में बहुत से छोटे-बड़े जलाशय हैं, जिनमें झीलें, लैगून और नदियाँ शामिल हैं। ये जलाशय अन्तः स्थलीय मत्स्यकी के लिए महत्वपूर्ण हैं - समुद्र में कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। जिनमें मेकरेल, सोल, मुल्लन, कवच आदि होती हैं। कवचप्राणी की किस्में जो इस क्षेत्र में मिलती हैं झींगा, चिंगट और महाचिंगट हैं। आजकल कोच्चि बंदरगाह से हिमशीतित चिंगट और महाचिंगट का निर्यात होता है।

www.mspofindia.com



इस अत्यंत घने आबाद प्रदेश में खाद्यान्नों की पूर्ति लोगों की जरूरत से कम होती है। अतः मछली लोगों के लिए भोजन का महत्वपूर्ण भाग है। केरल में अन्तः स्थलीय मत्स्यन और उपतरमत्स्यन मछलियों का महत्व है। मछली पकड़ने के लिए डोंगियों, कैटामरैन नावों का प्रयोग होता है। मछली का तेल निकालने का कार्य भी यहाँ होता है इसमें विटामिन 'ए' और डी की भरपूर मात्रा है। पश्चजलों (Back Waters) और समुद्रतट से प्राप्त घोंघों को इकट्ठा करके जलाया जाता है और चूना बनाया जाता है।

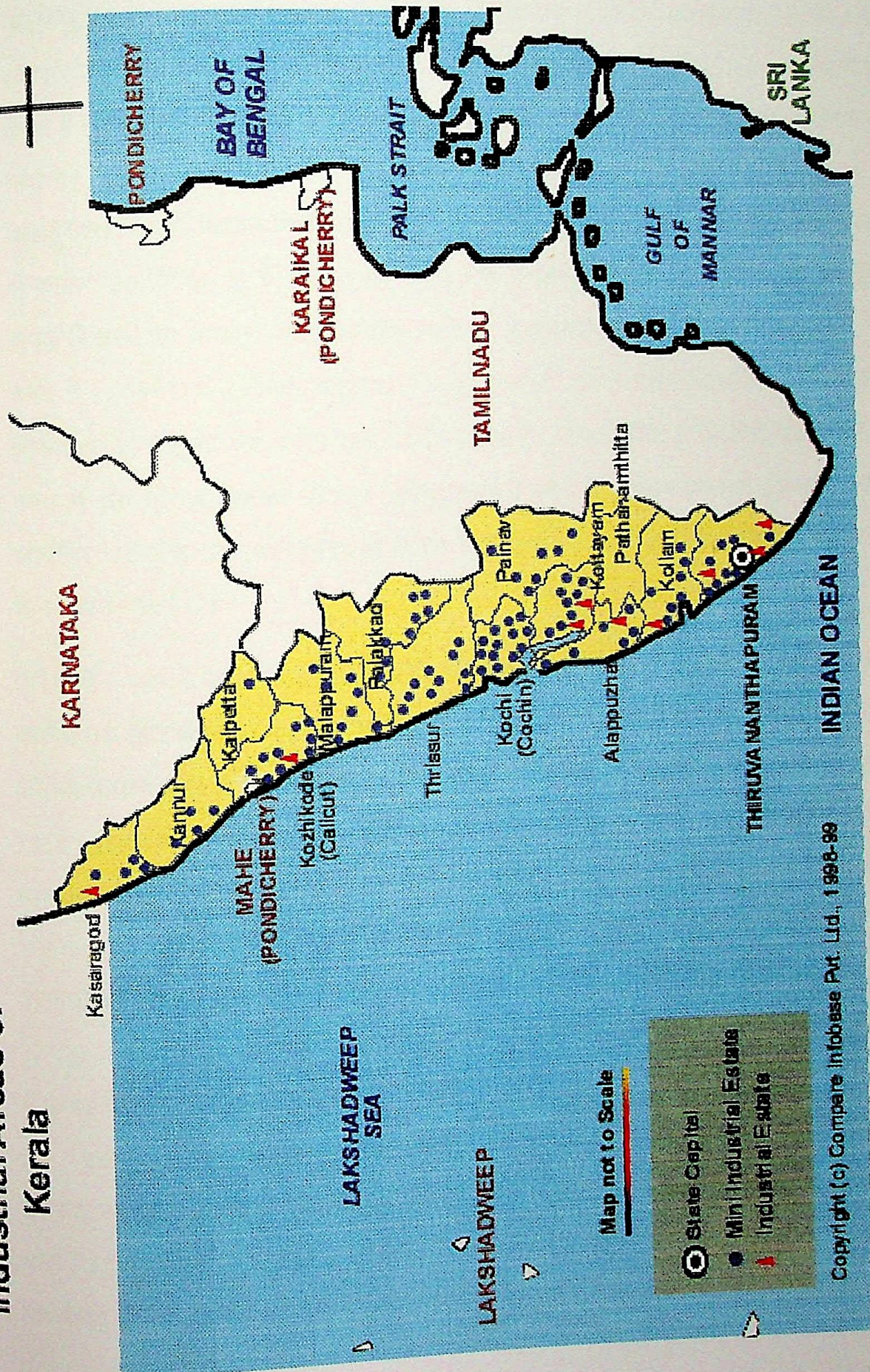
4.5 उद्योग

निर्माण उद्योग – भारी वर्षा वाले इस प्रदेश में जल बिजली बनाने के स्थान पूर्व की ओर ऊँचे पहाड़ी भागों में उपलब्ध हैं। कोयले के अभाव के कारण केरल में खपने वाली सारी बिजली पानी से बनती है। जलबिजली इलायची की पहाड़ियों में स्थित देवीकोलम ताल्लुके में पेरियार नदी और उसकी सहारा नदियों से विकसित की गई है। किंतु भारत के इस अत्यंत घने व आबाद राज्य में औद्योगिक प्रगति के लिये ज्यादा बिजली प्राप्त करने के लिये पम्बा, पन्नियार और शोलायर नदियों पर भी बिजली विकसित की गई।

अधिकांश उद्योग दक्षिणी भाग में केन्द्रित हैं क्योंकि केरल के दक्षिण में भी जल बिजली का विकास हुआ है, उत्तर के मालाबार जिले में जलशक्ति का विकास बहुत कम है। अतः मालाबार में बड़े पैमाने का उद्योग नहीं है किन्तु सूती हथकरघा उद्योग काफी महत्वपूर्ण है। एल्यूमिनियम निर्माण और समुद्र तट के रेत से मोनाजाइट निकालने के उद्योग को छोड़कर खनिज पदार्थों पर आधारित उद्योग इस राज्य में नहीं है। कृषिजन्य उद्योग विशेषकर कुटीर उद्योग महत्वपूर्ण हैं। इन उद्योगों में गोला और नींबूघास से तेल निकालना, नारियल जटा से रेशे, रस्सियाँ और पायदान बनाना तथा काजू को संसाधित करना मुख्य हैं। ये उद्योग तटीय पट्टी पर नहरों और लैगूनों के सहारे विशेष महत्वपूर्ण बन गए हैं।

बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग कम हैं किन्तु महत्वपूर्ण हैं। बड़े उद्योगों में सूती कपड़ा, रसायन, रबड़ के टायर और द्यूब, मशीनी औजार, मृत्तिका शिल्प, रेयॉन लुग्दी और बिजली का सामान बनता है। आलुवा, कुण्डारा और तिरुवनंतपुरम् इनमें से कई उद्योगों के केन्द्र हैं। कैसिलराक के समीप के ओलिन के विशाल भंडार हैं जिनके कारण कोझिकोड और कोच्चि में मृत्तिका के टायल बनते हैं, इन टायलों को मंगलूर टाइल कहते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में इनका निर्यात होता है। इमारती लकड़ी के मुख्य शहर कल्लै में प्लाइवुड (परती लकड़ी) और फर्नीचर बनाने का काम प्रसिद्ध है।

Industrial Areas of Kerala



औद्योगिक स्थल

अलप्पुझा :- अलप्पुझा नारियल जटा बुनने और निर्यात करने का सबसे बड़ा केन्द्र है। इस व्यापार नगरी को 'भारत का वेनिस' कहा जाता है। अलप्पुझा में पायदान भी विशाल पैमाने पर बनते हैं। बन्दरगाह की सुविधा होने के कारण इस शहर में नारियल की जटा बनाने का उद्योग पनप गया है।

आलुवाय :- यह विशाल पैमाने के उद्योगों का प्रमुख केन्द्र है, यह पेरियार नदी पर स्थित है। यहाँ से कोच्चि 35 कि.मी. दूर है, पल्लिपुरम् शक्ति ग्रहों से सस्ती बिजली मिलती है। यहाँ पर सूती कपड़े बिजली का सामान, एण्टीबायोटिक, उर्वरक, गंधक का तेजाब कार्बोस्टिक सोडा आदि भी बनते हैं। कलमेस्सरि (निकट अलूवाय) में द्रुत गति की खराद मशीनें बनती हैं। चेंगनस्सरि (एरनाकुलम्) में शुष्क सेल बनाने वाला संयंत्र स्थापित है। रेयॉन के लिये लुग्दी कोझिकोड जिले के भावूर में और पारदर्शी कागज पेरंभवूर (एरनाकुलम्) में बनते हैं। कार्बन कज्जल इसका उपयोग स्वचलित वाहनों के टायर, छापे की स्याही, कार्बन पेपर बनाने में होता है। इसका कारखाना एरनाकुलम् के अम्बला-पुलई में है।

कोच्चि- कोच्चि केरल राज्य का प्रमुख बंदरगाह है। दस द्वीपों का समूह 'अरब सागर की रानी' कोच्चि एक सुंदर प्राकृतिक बंदरगाह वाली नगरी है। इसे केरल का 'ब्यूटी स्पॉट' भी कहा जाता है। कोच्चि प्राचीन काल से बन्दरगाह और देशी-विदेशी व्यापारियों के आवागमन का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। इसकी स्थिति ऐसे बिंदु पर है जहाँ पश्चजल (Back Waters) समुद्र के साथ जुड़ा हुआ है। पश्चजल (Back Waters) के द्वारा कोच्चि का संबंध नारियल जटा और उसके उत्पाद, काजू और मसाले आदि पैदा करने वाले क्षेत्रों से जुड़ा है। इन उत्पादों तथा चाय, अदरक, कच्चा रबड़ आदि वस्तुओं को लादकर असंख्य नावें पश्चजलों और नहरों में होती हुई कोच्चि पहुंचती हैं। इस प्रदेश के आयात और निर्यात के लिए कोच्चि ही प्रमुख केन्द्र है। व्यवसाय व वाणिज्य के क्षेत्र में पश्चिम भारत में मुम्बई के बाद कोच्चि बंदरगाह का ही स्थान है।

एरणाकुलम और कोच्चि को ट्विन सिटी (Twin City) के नाम से भी जाना जाता है। एरणाकुलम और कोच्चि के मध्य में एक झील है जिसमें आवागमन का साधन जहाज है एवं सड़क मार्ग है। एरणाकुलम एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र भी है, एरणाकुलम व केरल के अन्य शहरों में जहाँ पश्चजल है वहाँ पर व्यापारिक कार्य इन्हीं झीलों के माध्यम से होते हैं।

कोल्लम - यह समुद्र तट त्रिवेन्द्रम का एक बंदरगाह है। कोल्लम में बिजली की मोटरें बनती हैं। काजू और कालीमिर्च यहाँ से बाहर भेजा जाता है। काजू को साफ करने के कारखाने पूरे राज्य में बिखरे हैं, किन्तु कोल्लम और कोझिकोड में इन कारखानों का केन्द्रीकरण कुछ अधिक है। कन्नूर जिले के मगक्तपुरम् स्थित कैल्ट्रन नगर में संधारित्र (Capacitors) मोटर प्रवर्तक, चलचित्र प्रोजेक्टर, और इलेक्ट्रानिक वस्तुएं बनती हैं।

तिरुवनंतपुरम् - यह केरल राज्य की राजधानी है, यह केरल के दक्षिण में तटीय मैदान में स्थित है और राज्य के सभी शहरों और बंदरगाहों से जुड़ा है।

यहाँ सूती कपड़े, रसायन, रबड़ के टायर और ट्यूब, मशीनी औजार, मृत्तिका शिल्प, रेयॉन, लुग्दी और बिजली का सामान बनता है। आलुवाय, कुण्डार और तिरुवनंतपुरम् इनमें से कई उद्योगों के केन्द्र हैं।

इसे दक्षिण भारत का 'काश्मीर' कहा जाता है। यहाँ ऊँचे-ऊँचे पहाड़, हरी भरी घाटियाँ, नारियल वृक्ष, विशाल समुद्री झीलें, रबड़ तथा सुपारी के लंबे लंबे पेड़ और दूर तक फैले सागर-तट तिरुवनंतपुरम् को रमणीक नगर की गरिमा प्रदान करते हैं।¹

4.6 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि -

समाज, धर्म एवं संस्कृति - केरलवासी खुद को मलयाली कहते हैं, यहाँ पर विभिन्न धर्म, जाति और मान्यताओं वाले लोग अनेकता में एकता के सूत्र को साथ रखते हुए, केरल के वास्तविक चरित्र को चरितार्थ करते हैं। कई मानव विज्ञानियों का मानना है कि यद्यपि केरल की मूलभूत संस्कृति, 'द्रविड़ियन संस्कृति' है, तब भी जैन एवं बौद्ध धर्म की जड़ें तीसरी शताब्दी ईसा-पूर्व तक की पाई जाती हैं, किन्तु यह दोनों ही धर्म बाद में हिंदु धर्म में सम्मिलित हो गये। आर्य संस्कृति का फैलाव केरल में पाँचवी शताब्दी के प्रारंभ में हो चुका था जाति व्यवस्था केरल के सामाजिक परिवेश में मिश्रित हो चुकी थी।¹

नबूंदरी, नायर, एरव, थिया, द्रविड मूल की जातियाँ थी, जिनमें नबूंदरी ब्राम्हणों का दर्जा सर्वोपरि था, जिसके बाद क्षत्रियों एवं शूद्रों का स्थान आता था, द्रविड समूह में नायर प्रमुख थे। प्रारंभिक काल में नायरों और नबूंदरियों के पास व्यापार करने के सामाजिक अधिकार नहीं थे, व्यापार का कार्य विदेशियों जैसे रोमन और ग्रीकों के हाथ में था। जब इन सभ्यताओं का पतन हुआ तब इनकी जगह यहूदियों और अरबों ने ली, जिन्होंने मानसून के चक्र को समझते हुए अपने अनुकूल जहाजी हवाओं

1. पन्नीकर, कवलम नारायण, केरल लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 58

2. प्रभाकर विष्णु, एक देश एक हृदय, पृ. 149

को पहचाना और केरल में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए। 1565 में पुर्तगालियों के आगमन के साथ यहूदियों को क्रांगणनोर छोड़कर कोचीन जाना पड़ा, कोचीन में यहूदियों ने प्रख्यात् 'श्वेत यहूदी पूजास्थल' साइनागांग (Synagogue) का निर्माण सन् 1567 में करवाया। यह पूजा स्थल आज भी कोचीन के यहूदी कस्बे 'मत्तनचेरी' में एक प्रमुख ऐतिहासिक ईमारत के रूप में स्थान रखता है।

दो-तीन हजार वर्ष पूर्व सामान्य लोगों का जीवन, जैसा कि संघम् साहित्य से विदित होता है, जाति-प्रथा पर आधारित नहीं था, जनता कार्य के अनुसार विभक्त थी, यह विभाजन भी इस बात पर निर्भर था कि उनके पास कौन सी भूमि है। कु र्चि (पहाड़ी भूमि), पालै (मरुभूमि), मुलै (चारागाह), मरुतम (गीली भूमि) तथा नेताल (समुद्र-तट) बँटवारे के माध्यम थे। बहुत सी प्राचीन जातियाँ केरल के अलग-अलग भागों में रहती थीं। 'चेरमन का अर्थ चेरुमक्कल जिसका तात्पर्य है कि ये खेतों के बेटे हैं ('चेरा का अर्थ है 'सेतु' और मेक्काल का अर्थ है बच्चे') 'चेरु' का अर्थ है मिट्टी। इस शब्द का तात्पर्य इससे भी जुड़ा हो सकता है, 'चेरुमार' को 'चेरामर' भी कहते हैं जिसका अर्थ है चेरा भूमि के बेटे। ये जातियाँ खेतिहर हैं तथा इनमें 'पुलयन' अधिक हैं। पुलयन 'पुला' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है अशुद्ध यह अर्थ ठीक है अथवा नहीं यह दीगर बात है पर बहुत से लोग अपने को पुलयन कहलाना पसंद नहीं करते। बहुत से लोग धर्म-परिवर्तन कर ईसाई बन गए क्योंकि हिंदुओं का उच्च वर्ग उन्हें अस्पृश्य मानता था, उनका हिन्दुओं में कोई उचित स्थान नहीं था। उन्हें तथा अन्य निम्न जातियों को, जिनमें एजवास भी सम्मिलित थे, विशेष सड़कों पर जाने की अनुमति नहीं थी। ईसाई और हिंदु नेताओं के कारण पुलया जाति के लोगों को बार-बार धर्म परिवर्तन करना पड़ा तथा इस जाति को बहुत कष्ट सहना पड़ा।

ईसाई धर्म— ईसाई धर्म यहाँ पर पहली शताब्दी A.D. (ईसा पश्चात) में संत थामस, जो कि ईसा के परम् शिष्य थे के द्वारा लाया गया, जो सर्वप्रथम मलियंकारा में उतरे और यहाँ पर कई ब्राम्हण परिवारों का धर्म परिवर्तन किया एवं केरल में सात गिरिजाघरों की स्थापना की।

मुस्लिम धर्म— अरब के साथ व्यापारिक संबंध के कारण सन् 634 ईस्वी में इस्लाम धर्म यहाँ आया। पैगंबर मोहम्मद के शिष्य मलिक इबिन-दिनार ने केरल में इस्लाम धर्म का प्रचार किया, इसी समय केरल में पहली मस्जिद का निर्माण हुआ, केरल के कुछ राजघरानों से इस्लाम धर्म को राजकीय मान्यता भी मिली, समय के साथ इस्लाम समस्त केरल में फैला, हिंदुओं और ईसाईयों के बाद इस्लाम के धर्मावलंबी केरल में सर्वाधिक हैं।

हिन्दु धर्म – इसके बाद केरल में हिन्दु धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ श्री जगत् गुरुशंकराचार्य (788-820) ने वैदिक हिन्दु धर्म की पताका फहराई थी, जिनका जन्म इसी राज्य में हुआ था। नायर, द्रविड़ जाति के लोग हैं, ये लोग देश के सैन्यबल थे, द्रविड़ों के प्रशासन का सबसे प्रभावशाली भाग 'तरा' था जिसका अर्थ था मैदान या गाँव। 'तरा' में रहने वाले निवासी एक छोटे से प्रजातंत्र में रहते थे जिसे गाँव के वयोवृद्ध लोग चलाते थे। नायर एक वंश है जाति नहीं, कुछ लोगों का विचार है कि नायर शब्द नागर से निकला है और लोग प्रारंभिक समय में बंगाल से आनेवाले द्रविड़ हैं, ये लोग सर्प के उपासक हैं। जाति-प्रथा के अनुसार ये लोग क्षत्रिय न होकर शूद्र हैं क्योंकि ये सब, ब्राम्हण और क्षत्रियों के यहाँ कार्य करते थे।

मलयाली ब्राम्हण या नम्बूदरी अधिकांशतः भूमि के स्वामी थे, वे अपना संबंध प्रौद्योगिक काल बताते हैं जब परशुराम ने वंशों की स्थापना की थी।

जाति प्रथा – मोटे तौर से हिन्दु समाज चार भागों में विभक्त था – ब्राम्हण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। तमिल ब्राम्हणों को जाति प्रथा में सदैव ऊँचा स्थान मिला परंतु इस प्रथा के अंतर्गत नम्बूदरी ब्राम्हणों का स्थान सर्वश्रेष्ठ था। ब्राम्हणों की बहुत सी उपजातियाँ हैं जैसे इलयतु मुत्ततु, उन्नी, पिशारोटि, नंबिटि, गुरुक्कल आदि।

हम देखते हैं कि केरल में अलग-अलग धर्म विश्वास और दृष्टिकोण के लोग सदियों से काफी हद तक शांति और सद्भाव के साथ-साथ रहते आए हैं। देश के स्वतंत्र होने के बाद लोगों के दृष्टिकोण में पूर्ण रूप से अंतर आया है। अब सामाजिक एकता को निश्चित वास्तविकता मान लिया गया है जो स्वतंत्रता का परिणाम है।

केरल के लोगों की यह विशेषता है कि वह चाहे किसी भी धर्म अथवा जाति के हों, उनका बाह्य तथा आंतरिक जीवन सीधा-सादा है, उनकी सादी वेश-भूषा से जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का पता चलता है, उनका शांतिप्रिय स्वभाव उन्हें देश का कर्मठ कार्यकर्ता बनाता है।

धार्मिक आचरण – केरल एक पिघला बर्तन है, जहाँ नैतिक और धार्मिक गुट मिलते हैं, जातीय रचना सख्त होने के बावजूद अलग-अलग विचारों के लोगों का असाधारण आदरातिथ्य केरल में देखने मिलेगा। देशांतर पर आए धार्मिक लोगों का खुले हाथ से आदरातिथ्य करने का पूर्वोतिहास यहाँ रहा है। त्रावणकोर एवं कोच्ची के महाराज तथा मालाबार के जमींदारों ने भी इन लोगों को आदर से स्वीकार किया।

यहाँ के हिंदु, हिंदु धर्म के सभी प्रमुख देवी-देवताओं की पूजा अर्चना करते हैं और साथ ही साथ अधिदेवता को भी मानते हैं। प्रमुख देवताओं में शिव षष्ठ (स्कंद), विष्णु, भगवती और अधिदेवताओं में परशुराम, ब्रम्हा, सरस्वती, मरिअम्मन, हनुमान आदि हैं। इन देवताओं के अलावा यहाँ के लोग नाग-पूजा, वृक्ष-पूजा और राक्षस पूजा भी करते हैं। पेड़ों की पूजा केवल इसलिये नहीं कि उनके द्वारा जीवन की रक्षा होती थी, बल्कि इसलिये कि पेड़ों में देवी और दानवी आत्माओं का निवास है, कुछ शक्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण थीं कुछ कम। पीपल और पाल के वृक्षों पर सृष्टि के आरंभ से अब तक की सब मृतात्माएँ रहती हैं तथा इन वृक्षों का पैर काली मां का पैर है, मंदिरों की परिधी में पीपल के वृक्ष लगाये जाते थे तथा उनकी रक्षा की जाती थी, पेड़ के चारों तरफ चौकोर चबूतरा बनाया जाता था और भक्तगण उसके चारों ओर चक्कर लगाते थे। अधिकांशतः यह पूजा शनिवार को की जाती है, इस प्रथा का वैज्ञानिक कारण भी हो सकता है। पीपल का वृक्ष चारों तरफ के वातावरण को शुद्ध करता है, श्रद्धालुओं के लिये इन पेड़ों पर ब्रम्हा (सृजनकर्ता) तथा विष्णु (रक्षक) का निवास है। केरल में कोई भी मंदिर ऐसा नहीं है जहाँ पीपल का वृक्ष (अश्वत्थ) न हो।

धर्म का जन्म मनुष्य के अनुभव से होता है, ईसाई समुदाय चर्च एवं उसके नियमों को मानता है, और सभी ईसाई अपने-अपने पेरिश अथवा चर्चों में रविवार एवं अन्य उत्सवों में आयोजित प्रार्थना सभा में सम्मिलित होते हैं। मुस्लिम समुदाय इस्लाम के 5 फर्जों का पालन करता है, जिनमें शहादत का गान, पांच वक्त की नमाज, निस्कारा, रमजान के रोजे, खैरात और हज है, जुमे को मुसलमान मस्जिद में नमाज अदा करते हैं। केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम् के हृदय में आप हिंदु मंदिर, मस्जिद एवं गिरिजाघर अगल-बगल में देख सकते हैं। आगे आनेवाले समय में केरल के सामाजिक और आर्थिक ढांचे में पूर्ण रूप से परिवर्तन आ गया, आज केरल का समाज प्रगतिशील, आधुनिक और शक्तिशाली है।

त्यौहार - केरल के प्रसिद्ध त्यौहारों में 'ओणम' 'विषु' और 'तिरुवातिरा' ये तीन उल्लेखनीय हैं। इनमें भी 'ओणम' सर्वश्रेष्ठ है। यह शुक्लपक्ष के श्रवण (तिरुओणम) नक्षत्र में अगस्त-सितंबर महीने में पड़ता है। ऐसी मान्यता है कि, राजा महाबली इस दिन स्वयं अपनी प्रजा को देखने आते हैं। वास्तव में यह फसल का त्यौहार है, सभी लोग जातिपांति का भेदभाव भुलाकर इसे मनाते हैं। दस दिन तक मिट्टी की बनी बामन की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। नये-नये वस्त्र नाना प्रकार के व्यंजन, खेल कूद, नाच-रंग और नावों की दौड़, आदि का आनंद उठाते हैं। यह नाव प्रतियोगिता इस प्रदेश की विशेषता है। एक-एक नाव में सौ-सौ केवट तक रहते हैं। विषु त्यौहार अप्रैल में पड़ता

है, मलयाली पंचांग के अनुसार कोल्लवर्ष का प्रथम दिन होता है। इसका संबंध भी प्रकृति से ही है। उस दिन धन-धान्य की पूजा होती है। तिरुवातिरा दिसंबर जनवरी में पड़ता है, यह मुख्यतः स्त्रियों का त्यौहार है। गांव की सारी युवतियाँ इकट्ठी होकर पार्वती की पूजा करती हैं। दशहरा-दीवाली के समय सरस्वती की पूजा होती है।

वस्त्र – केरलवासी सिर्फ अपने घरों को ही स्वच्छ नहीं रखते, स्वयं भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं। पुरुष चादर और कमीज, स्त्रियाँ साड़ी या लुंगी और चोली पहनती है। लुंगी को ये लोग मुंडू और चादर को तार्तू कहते हैं। चादर को कंधे के गिर्द लपेट लिया जाता है। स्त्रियाँ विशेष रूप से जूड़ा बनाती हैं, और उन्हें फिर फूलों से सजाती है। सोने के गहने इन्हें प्रिय हैं।

भोजन – इनका मुख्य भोजन चावल है, लेकिन चूँकि ये यथेष्ट चावल पैदा नहीं कर पाते, इसलिए निर्धन लोग टेपिओका पर ही गुजारा करते हैं। इडली, डोसा, रसम, सांबर, पायसम (खीर) कुछ मुख्य खाद्य पदार्थ हैं।

4.7 भाषा एवं साहित्य – मलयालम भाषा का प्रादुर्भाव 'परातमिल' भाषा से हुआ है जो कि विभिन्न उपभाषाओं में विभाजित हुई, इसमें संस्कृत और तमिल भाषा की स्पष्ट छाप है। समय बीतने के साथ ही मलयालम एक अलग भाषा के रूप में परिष्कृत और परिपक्व हुई। आरंभ में मलयालम भाषा "मणिप्रवाल" भाषा जो कि मलयालम और संस्कृत का मिश्रण थी, के रूप में प्रचलित थी। एरुथाचन की रचनाएँ जिनमें प्रमुख "आध्यात्म रामायणम्" और "महाभारत" हैं, अपने मूल संस्कृत काव्यों के आधार पर 'किलिपट्टू' शैली में रची गईं।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में मलयालम भाषा गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में पर्याप्त रूप से समृद्ध हुई। नाट्य विद्या इस काल में एक जनप्रिय कला के रूप में विकसित हुई, यह वह समय था जब मलयालम भाषा विभिन्न प्रांतोत्तर भाषाओं से प्रभावित एवं समृद्ध हुई और खास बात यह थी कि इस भाषा में की गई रचनाएँ सर्वथा मौलिक थीं। मलयालम साहित्य में एवं (मलयाली) समाज के जीवन में अच्छी एवं खूबसूरत वस्तुओं के प्रति प्रेम, विनोदप्रियता साफ तौर पर परिलक्षित होती है।

कला – पारम्परिक लोककला में केरल समृद्ध है। केरल के आदिवासियों ने लोककला की परंपरा को वहाँ के पर्यावरण एवं प्राकृतिक चिकित्सा के साथ संभाल के रखा। केरल की लोक कलाओं में कलियट्टम, मुदियेट्ट, कोलमयुल्ल कोलकलि, पूरवकली, कम्पदकुलि, वेलक्कली, कन्नियार कली, परिथमुट्टु कली, मोपलकली, थप्पुकली, कुरवरकली, कईकोट्टीकली कुम्मी आदि प्रमुख हैं।

थैयम केरल की प्रमुख लोक-कला है जो विभिन्न स्वरूपों में पाया जाता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले मुखौटे कलाकारी के उत्कृष्ट नमूने हैं। केरल के प्रदर्शन कलाओं का मुख्य संबंध वहाँ के मंदिरों में मनाये जाने वाले मुख्य उत्सवों से है। जो साधारणतः जनवरी से मई के महीनों में होते हैं। इन उत्सवों का मुख्य आकर्षण पेटोमाइस, नृत्यनाट्य कथकली एवं सोपान संगीतम् होते हैं। केरल के राजा रवि वर्मा ने चित्रकारी के क्षेत्र में और 'स्वाति तिरुनाल' ने संगीत के क्षेत्र में न केवल केरल की सांस्कृतिक संपत्ति को आगे बढ़ाया है वरन् भारत को भी इन क्षेत्रों में समृद्ध किया है।

कथकली यह केरल का अर्थ स्पष्ट करता है एवं अति सभ्य व शास्त्रीय नृत्य है। यह कला खलबलजनक है, कलाकार के हर तंतू पर अधिकार जमाती है, बल्कि दिल को छूने वाली तीव्र भावना है। इसका मूलरूप केरल के महाराजों के दरबार से है। यह कृष्णनट्टम और रामनट्टम के मूल रूप की कृत्रिम कला समझी जाती है। यह लोकनाट्य नहीं है, बल्कि उच्चस्तरीय शास्त्रीय कला है।

कलारी, केरल की नृत्य संस्कृति का वह भाग है जो शक्ति से परिपूर्ण है कलारी नृत्य द्वारा प्रत्येक नर्तकी और नर्तक के शरीर में लचीलापन आ जाता है और वह नृत्यकला में प्रवीणता प्राप्त कर लेता है।

कलारियापयन्तु यह ग्यारहवीं सदी की केरल की पारंपरिक शौर्य की कला है, यह कुंगफू और कराते जैसी पूर्व की अग्रगामी कला है, ऐसा मानना है, यह जापान की जू-जित्सू के जटिल पद्धति का अनुसरण करते हैं। कलारिया पयन्तु के प्रशिक्षण का लक्ष्य मन एवं शरीर के लिए पूरक है, पारंपारिक कलारि शिक्षण में देशी वैद्यकीय विशिष्टीकरण उद्योग भी शामिल है, कलारि यह धार्मिक पूजा स्थल के केन्द्र भी हैं।

संगीत – केरल के समृद्ध, पारंपरिक गायन एवं वाद्य संगीत ने भारत की सांस्कृतिक धरोहर को सँवारा है, ईश्वरोपासना के लिए यहाँ के लोगों ने विभिन्न प्रकार के वाद्य-संगीत जैसे कुथू, कूडियट्टम, अष्टपदियट्टम, और नाट्य संगीत जैसे कृष्ण नाट्टम, रामनाट्टम, कथकली आदि शैलियों को विकसित किया है। इन सभी शैलियों में नाट्य एवं वादन के साथ-साथ गीतों का भी प्रमुख स्थान है।

1. अय्यंगार, टी.आर. द्रविडियन इंडिया, पृ. 185

2. मेनन, संकुन्नी, इन त्रावणकोर हिस्ट्री

Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

4.8 केरल में वास्तु शिल्प का विकास - वास्तु निर्माण में साधारण तरीकों का उपयोग करते हुए भी भारत में विशेषतः केरल के पश्चिमी समुद्री तट पर शिल्प कला का विकास हुआ। इसका मुख्य कारण यहाँ की जलवायु तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। जो भौगोलिक रूप से केरल भूमि की, एक पतली पट्टी के रूप में पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के मध्य प्राकृतिक अवरोधक का कार्य करता है। यहाँ पर विघटनकारी विदेशी आक्रमणों व अधिनता का प्रकोप नहीं हुआ है। यहाँ विदेश व्यापार उत्तरी भागों की तुलना में शांतिपूर्ण ही रहा। इसलिए केरल वास्तुशिल्प के विकास के आधारभूत अध्ययन के लिए बेहतर अवसर प्रदान करता है। प्रागैतिहासिक शिलालेख, प्राकृतिक गुफाएँ, मंदिर, राजमहल एवं भवनों में वास्तु शिल्प के विकास की निरंतरता इसमें देखी जा सकती है।

जलवायु अनुरूप भवन निर्माण - वर्षा की अधिकता एवं सूर्य का तेज केरल की सुंदरता को बहुत आकर्षक बना देता है। इसलिए संयोगवश प्रकृति से मेल खाते हुए यहाँ के निवास छोटे-व साधारण हैं। ढलुवा छत एवं बाहर निकले लटकते हुए छाजन वर्षा एवं जलवायु से बचने तथा तादाम्य स्थापित करने हेतु बनाए जाते थे। ऊँचे जमीनी तल, पानी, एवं नमी से बचाने हेतु बनाए जाते थे। नीची दीवालें बारिश से तो बचाव करती ही थीं बल्कि पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित करने में मदद देती। अलग-अलग भूखंडों पर दूर-दूर बने मकान वायु के उन्मुक्त आवागमन में सहायक होते हैं। आंतरिक सुविधाओं की व्यवस्थाएँ भी वायु-दिशा एवं सूर्य-रश्मियों की अनुकूलता के अनुसार ही की जाती है, इसके कारण गर्मी एवं नम जलवायु में भी भवन आरामदेह होते थे।

भवन निर्माण के मिश्रित प्रकार :- भवन निर्माण सामग्री जैसे- मिट्टी, पत्थर, नारियल पत्ती, लकड़ी आदि केरल में बहुतायत से मिलती है। लेटेराइट ब्लॉक जो कि आसानी से काटकर तैयार किए जाते हैं भूतल एवं भवन निर्माण में प्रमुखता से काम आते हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार की भवन निर्माण सामग्री है, जो कि हवा से संपर्क कर मजबूत और टिकाऊ हो जाती है। ग्रेनाइट पत्थर जो कि यहाँ पर कम पाया जाता है बहुधा राजमहल तथा मंदिरों के निर्माण के लिए सुरक्षित रखा जाता है। प्रासादों में भी ग्रेनाइट ज्यादातर भूतल पर ही इस्तेमाल किया जाता था तथा दीवारों के लिए लेटेराइट का ही उपयोग होता था। जहाँ लेटेराइट आसानी से प्राप्त नहीं होता वहाँ पर कच्ची मिट्टी या पक्की मिट्टी के बने ईंटों का इस्तेमाल भी किया जाता है।

केन्द्रीय तथा दक्षिण केरल में केरल के प्रसिद्ध शिल्प "आरा" और "नीरा" देखे जा सकते हैं जो कि बहुधा लकड़ी की दीवारों तथा छतों से युक्त कमरे होते हैं, इन कमरों की छतों को पहले

लकड़ी के फ्रेम पर बनाया जाता फिर उस पर नारियल के पत्ते, खप्पड़ों अथवा धातु की चादर रख ढँक दिया जाता। संक्षिप्त में यहाँ पर उपलब्ध निर्माण सामग्री के संतुलित उपयोग ने केरल में मिश्रित व्यवस्था के विशेष गुण, युक्त वास्तुशिल्प को जन्म दिया।

गृहवास्तु – केरल में भवन शैली की धारा भारतीय, दक्षिण भारतीय तथा क्षेत्रीय एक साथ सभी कुछ थीं। प्राथमिक अवस्था में ये गोलाकार अथवा वर्गाकार झोपड़ों के रूप में हुआ करते थे, जिन्हें बाँसों को मोड़ कर बनाए गये, प्रारूप के ऊपर सूखी पत्तियाँ रखकर ढाँक दिया जाता था। आयताकार प्रारूप नितंबनुमा छत डालकर इन्हें उपयोग में लाया जाता था। संरचनात्मक दृष्टि से छत के ढाँचों को खंबों या दीवारों के ऊपर रखा जाता तथा ये खंबे अथवा दीवालें जमीन से ऊपर उठाई गई नींव पर रख दिये जाते। ऊंची नींव, नमी, सीलन तथा कीड़े-मकोड़ों से बचाव करती थीं। ज्यादातर दीवारें लकड़ी की ही बनाई जाती थीं। छत के ढाँचे के लिये मध्य कड़ी जिस पर छत का ऊपरी हिस्सा तथा दीवारों पर रखी पट्टियाँ जिस पर छत का निचला हिस्सा रखा जाता था। राफ्टर तथा छत का भार संभालने के लिये मध्य कड़ी लचीली मजबूत छप्पड़ों के निर्माण के समय भी एक आवश्यकता बन गया था। छत के त्रिकोणीय हिस्से में ऊपर की ओर दोनों छोरों पर हवा के आने-जाने के लिये दो छोटी छोटी खिड़कियों का निर्माण किया जाने लगा। राफ्टर के बाहर निकले भाग से (छाजन से) वर्षा एवं धूप से मकान की रक्षा होती थी।

केरल में सामान्यतः 'एक शाला' का निर्माण तथा उसके चारों ओर बड़े हुए छाजन देखने में आते हैं। 'द्विशाला' 'त्रिशाला' अथवा 'कट्टुशाला' भी दिखाई पड़ती है। कट्टुशाला यहाँ का विकसित रूप है, जिसमें आवश्यक तौर पर एक आँगन होता था। मध्य में आँगन होने से वायु-प्रकाश खुला वातावरण अनुकूल रूप से प्राप्त होता है। चार बड़े कक्षों से युक्त भवन में पढ़ने के लिए, साथ बैठकर भोजन करने के लिए, शयन हेतु एवं भंडारण हेतु उपयोग में लाए जाते थे। परिवार की क्षमता एवं आवश्यकता के अनुसार दो मंजिला तथा तिमंजिला भवनों का निर्माण भी किया गया है।

कट्टुशाला में भी आँगन में तथा बाहर की ओर खुले स्थान पर अतिरिक्त निर्माण कर अपने अनुकूल बनाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। कट्टुशाला में प्रायः बगीचे भी बनाए जाते थे। बगीचे में तबेला, अनाज-भंडार, नहानी, कुँआ, कृषि-गृह, प्रवेश द्वार, पारिवारिक श्रद्धा की मूर्तियों अथवा पूजा घर हुआ करते थे। पूरी संरचना को चहार दीवारी अथवा बाड़ी से घेर दिया जाता था, चहार दीवारी के अंदर सभी संरचनाएँ अपने आकार-प्रकार, स्थान के अनुकूल जैसे पेड़-पौधों के स्थान, पूजा

गृह, तबेला, नहानी आदि का निश्चय 'वास्तु-पुरुष मंडल विधान' के अनुसार ही किया जाता था। गृह निर्माण की योजना एवं रूपरेखा निर्धारित करने के लिए ऐसे योग्य "स्थपति" की सेवाएँ ली जाती थीं, जो खगोलीय, तकनीकी एवं पारंपरिक नियमों का जानकार एवं ज्ञाता होता था।

केरल शैली - केरल की भौगोलिक और जलवायु की स्थिति जो भारत के अन्य क्षेत्रों की भौगोलिक और वातावरणीय स्थिति से भिन्न है ने भी उनका "आवास कैसा होना चाहिये" की मनोदशा को स्थितिज किया।

एक जाने माने इतिहासकार के अनुसार केरल वासी का एक मापक आवास का नाप पूर्व से पश्चिम 64 कोल तथा उत्तर से दक्षिण में इतने ही कोल का हुआ करता था। किसी आवास के वास्तविक निर्माण के पहले एक बड़े वर्ग को चार समान वर्गों में बाँट दिया जाता था, जिसमें आवास के प्रमुख खंडों का निर्माण होता था। पुरुषों और महिलाओं के लिये पृथक-पृथक कक्ष होते थे, और एक स्वतंत्र रचना के रूप में रसोईघर सामान्यतः इन कक्षों के उत्तर में स्थित होता था। उत्तर में अनाज इत्यादि पीसने हेतु 'उखपुरा' या दहलान होती थी, जबकि दक्षिण में विशेष रूप से परिवार के लिये बना हुआ मुखानि स्थल होता था। कुल मिलाकर केरल आवास एक सुंदर छवि प्रस्तुत करता था।

प्राचीन भारत निर्माण शैली में जिसे "चतुःशाला" कहते हैं, वह केरल गृहनिर्माण का अर्न्तनिहित अंग है। किसी भी चतुःशाला में उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व की दिशा में चार विशिष्ट रचनाएँ होती हैं, और प्रत्येक का उसकी दिशा के अनुरूप नामकरण होता है। इसके केन्द्र में खुली जगह 'अन्कन' (आँगन) होता है, जो मुख्य रूप से बाह्य प्रकार और ताजी हवा के घर में प्रवेश के लिये होती है।

केरल में शताब्दियों से जो भवन निर्माण को आकार दिया गया, भले ही इन्होंने वर्तमान में अपना मूल्य खो दिया हो फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से जानना रुचिकर होगा।

किसी आवास का निर्माण प्रारंभ के पहले शास्त्रों में वर्णित निर्देशों के पूर्णतः अनुरूप उसके लिये भूमि का चयन करना होगा। ऐसा संभव हो सकता है कि कोई व्यक्ति किसी मंदिर से लगी भूमि का स्वामी हो, ऐसी भूमि गृहनिर्माण के लिये उपयुक्त नहीं होती, उसे किसी अन्य स्थल का चुनाव करना होगा।

वृक्षारोपण किस जगह करें, एवं किस-किस प्रकार के वृक्ष कहाँ लगायें? यह जानना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिये :- बरगद का पेड़, निवास के पश्चिम की ओर हुआ तो, अनिष्ट की संभावना हो सकती है। पूर्व दिशा में श्रेष्ठ स्थिति है। अंजीर का वृक्ष दक्षिण दिशा में हो तो पवित्र होगा अन्यथा नहीं।

किसी भी स्थिति में भवन के अत्यंत निकट कोई भी वृक्ष नहीं होना चाहिये, यदि कोई व्यक्ति वृक्ष लगाना चाहता है तो भी उसे वृक्ष की पूर्ण विकसित होने पर अधिकतम ऊँचाई से दुगुनी दूरी पर भवन बनाना चाहिये ।

4.9 काष्ठ प्रयोग - प्राचीन काल में ना केवल छतें, बीम और राफ्टर (शहतीर) बल्कि घरों की दीवारें तक लकड़ी की बनती थीं। इस क्षेत्र में इमारती लकड़ी के कई प्रकारों की बहुतायत से उपलब्धता आश्चर्यजनक भी नहीं था। पीढ़ी दर पीढ़ी कल्पनाशील और पेशेवर काष्ठकारों की हथौड़ियाँ ने सुंदर प्रतिरूपों और आकृतियों के ऐसे प्रारूप नक्काशी से उकेर दिए, जिनकी कलाकारी की भव्यता को शायद ही किसी और स्थान पर मात मिली हो।

यहाँ तक कि जब दीवार के निर्माण में ईंट ने लकड़ी का स्थान ले लिया उसके बाद भी लंबे समय तक छत जिसका अधिकांश भाग बीम और राफ्टर का होता था। उसमें लकड़ी का ही वर्चस्व रहा। परंतु आज के समय में वन-विनाश की वजह से लकड़ी की कीमते और आसमान छूती महंगाई तक बढ़ जाने और कम उपलब्धता के कारण छत से लकड़ी का प्रयोग लगभग विलुप्त हो गया है।

4.10 वास्तुकला - केरल की वास्तुकला को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. साधारण जीवन से जुड़ी हुई वास्तुकला
2. धार्मिक या मंदिरों की वास्तुकला

पारंपरिक घर और 'नालकेट्टू' पहली श्रेणी में आते हैं। तिरुवनंतपुरम् की सार्वजनिक इमारतें व केरल के विभिन्न प्रांतों में पाये जाने वाले राजमहल पुरातन वास्तु के नमूने हैं। धार्मिक वास्तु यहाँ के मंदिरों, मस्जिदों एवं गिरजाघरों में देखने को मिलती है। हाँलांकि आजकल 'नालकेट्टू' आवास उपयोग में नहीं लाये जाते फिर भी केरल में ऐसी कई इमारतें हैं, जो केरल के पारंपरिक वास्तु के साथ-साथ आज की उपयोगिता को प्रदर्शित करती हैं। वास्तु की दृष्टि महत्वपूर्ण कुछ इमारतें जैसे-संग्रहालय, कोवाडियार और कनककुन्नू के राजमहल, गोल्फ पेवेलियन, सार्वजनिक पुस्तकालय, ललित कला महाविद्यालय आदि प्रदेश की राजधानी के मुख्य आकर्षण हैं। इन सभी इमारतों की विशेषता उनके विशिष्ट केरलीय पद्धति से बने छत और उभरे हुये गुंबद हैं जो लकड़ी पर की गई श्रेष्ठ कारीगरी को प्रदर्शित करते हैं। पद्मनाभपुरम का प्राचीन महल, मत्तनचेरी का उच्च महल पारंपरिक केरलीय वास्तु के उत्कृष्ट नमूने हैं। ये दोनों ही महल "नालकेट्टू शैली" में बनाये गये हैं।

पद्मनाभपुरम-महल :- तिरुवनंतपुरम् से 33 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में स्थित पद्मनाभपुरम्-महल केरल के भवन-निर्माण कला के सबसे जाने-माने तथा प्रशंसित भवनों में है। जब से भाषायी आधार पर राज्य बने हैं, तब से कन्याकुमारी जिले में शुमार हो गया है, तब तक यह त्रावनकोर का आंतरिक भाग था, और वहाँ के राजसी खानदान से यह लम्बे समय तक जुड़ा रहा।

महल के चारों ओर लगभग ढाई मील की परिधि में 15 से 25 फुट चौड़ी लैटेराइट और ग्रेनाइट की दीवारें हैं। महल की चहरदीवारी चार मुख्य सपील कोणों (किले की दीवार का उभरा कोना) तथा उतनी ही संख्या में प्रवेश द्वारों से सज्जित है। संरचना के अंदर कड़ी-लकड़ी का विपुल प्रयोग हुआ है, जो सूक्ष्म कारीगरी को प्रदर्शित करता है। लम्बे बरामदे, तिरछी छतों में सज्जित उभरी खिड़कियाँ पैंने त्रिकोणीय छप्परोँ और दीवारों के संगम आनुपातिक संरचनाओं का बहुगुणन, ये सभी इस भवन को केरल के सर्वाधिक छाप छोड़ने वालों में से एक बनाते हैं।

इस भव्य भवन के अन्य उल्लेखनीय अंगों में प्रमुखता से 'उप्पिरिक्का मलिका' जो कि तीन मंजिली है। संरचना का सर्वप्राचीन भाग 'थाईकोट्टरम' जिसमें खुले बरामदे और लकड़ी के पिलर हैं। 'नवरात्रि मंडपम्' जिसमें ग्रेनाइट के कई पिलर और देवताओं की पच्चीकारी कृत मूर्तियों के लिए हॉल है। 'नवरात्रि मण्डपम्' सिर्फ 66 x 27 फुट का किन्तु इसका निर्माण कुछ इस तरह से कि प्रेक्षक को यह काफी बड़ा प्रतीत होता है। खुले सभागार के दोनों ओर फूलदार शीर्षयुक्त स्तम्भ पौराणिक चरित्रों युक्त आधार इस प्रासाद को एक निराला आकर्षण प्रदान करते हैं।

मत्तनचेरी महल :- मत्तनचेरी महल केरल राज्य में एरणाकुलपम् से 12 कि.मील. दूर स्थित है। लगभग 1555 में इस महल के बगल में बने मंदिर को लूटने के बाद राजा को संतुष्ट करने के उद्देश्य से पुर्तगालियों द्वारा यह महल बनवाया गया और इसे कोचीन के राजा वीर केरल वर्मा (1537-1561) को भेंट किया गया। बाद में डचों ने इस भवन का पुनरुद्धार किया जिसके कारण यह डच महल के नाम से भी प्रसिद्ध है।

नालकेट्टू शैली में बना चतुर्भुजी संरचना वाला डच भवन दो मंजिला है। इसके मध्य में एक प्रांगण है, जिसमें शाही परिवार की संरक्षक देवी पाझयानूर भगवती को समर्पित समकालीन मंदिर स्थित हैं।

मेहराबों के स्वरूप एवं इसके विशाल कक्षों में यूरोपीय वास्तुकला की झलक मिलती है, तथापि इसकी स्वदेशी बनावट लम्बे, खुले हॉल, लकड़ी की आकर्षक दिल्लेदार छतें हैं एवं परछत्ती व्यवस्था उतनी ही सुन्दर है। इस भवन का डिजाइन एवं निर्माण मुख्य रूप से शाही परम्परा एवं उनके रहन-सहन की सभी आवश्यकताओं के अनुरूप किया गया है।

1. प्रभु बाल गोपाल टी.एस. अच्युतन ए. ए टैकस्ट बुक ऑफ वास्तुविधा, पृ. 41, 42, 49, 57, 58

नालकेट्टू शैली - नालकेट्टू केरल के भवन-निर्माण की परंपरागत विधि है, जहाँ प्रत्येक भवन के बीचों बीच एक चतुष्कोण होता है। मूलतः संपन्न ब्राम्हण एवं नायर परिवारों के रहने का तरीका, निर्माण कला की यह विधि केरल के संपन्न परिवारों के अभिजात्य वर्ग होने की पहचान बन चुकी है।

नालकेट्टू शैली के आवास गृह लकड़ी एवं टाइल्स उपयोग कर निर्मित किये जाते हैं, जिनमें मध्य में खुला आंगन एवं आश्चर्यजनक शिल्पकला होती है। भवनों का आंतरिक भाग सुरुचापूर्ण ढंग से प्राचीन कलाकृतियों, जो सागौन, चंदन, महागोनी से निर्मित होती है, द्वारा सजाया जाता है। इस भवन निर्माण कला का आधार तच्चू शास्त्र है।

नालकेट्टू का उदय - प्रमुखतः नालकेट्टू का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि वास्तुशास्त्र में 'साला' की परिकल्पना जो वर्णित है, यह उसका विस्तारित स्वरूप है।

'आकाशशाला' या एकल ईकाई गृह निवास परंपरागत जातिबंधन में अतिगरीब एवं कमजोर वर्ग के लिये भी इसका खर्च सहनीय था। इसमें अंग्रेजी के 'एल' (L) अक्षर के आकार के हॉल के योग ने उसे 'द्विसाला' या द्वितीय चरण का रहवास बना दिया। समय के साथ आर्थिक उन्नति के दौर में एवं पारिवारिक आवश्यकताओं की बढ़ोत्तरी के साथ में एक तृतीय निर्माण को भी साथ में जोड़ा, जो निवासों के तीन तरफ अंत में खुले वर्ग आकार में थी एवं 'त्रिसाला' कहलाती थी।

जब निर्माण गृहों में चौथी तरफ एक अन्य 'साला' जोड़कर बनाई गई, तब परिणाम स्वरूप निर्मित वर्ग 'चतुःशाला' कहलाया, जिस पर 'नाल' अर्थात् 'चार' एवं केट्टू (निर्मित भुजा तल) कहलाए।

निर्माण की विधि :- परम्परागत नालकेट्टू नींव फर्श छोड़कर शेष निर्माण कलाकृति एवं संकीर्ण छिद्र युक्त लकड़ी द्वारा बनाए जाते हैं। इसकी समानता हम पूर्वी एशियाई खिड़की के ऊपर की छोटी छत एवं छप्पर निर्माण से कर सकते हैं। कालान्तर में नारियल के अग्रभागों का स्थान खपरैल व टाइल्स ने ले लिया है।

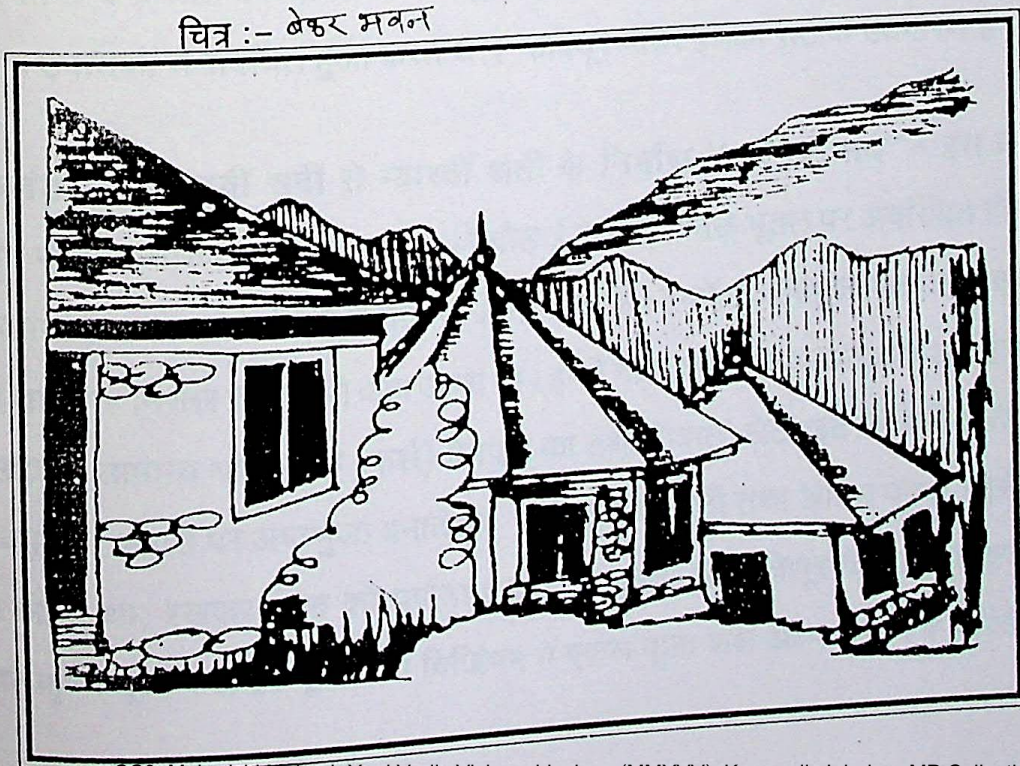
बन्द आंगन या 'अंकानाम' जो जब-जब पानी में डूबा रहता है, इसे कझी (Pit) अंकानाम कहते हैं। सालाओं में आगे की ओर बड़ी हुई छतें छायादार बरामदे का कार्य करतीं एवं अंदरूनी कमरों में सीधे सूर्य की रोशनी से रक्षा करती हैं। इस प्रकार से कमरे अधिक गर्मी के दिनों में भी ठंडे रहते हैं। 'अंकानाम' के चारों ओर खुला बरामदा रहता है।

‘नालकेट्टू’ के चारों तरफ के बाहरी बरामदे अलग प्रकार से घेरे जाते हैं, इसमें पूर्वी एवं पश्चिमी बरामदे खुले रखे जाते हैं, जबकि उत्तरी तथा दक्षिणी बरामदे अर्ध या पूर्ण को ‘अरा’ या भंडारगृह कहते हैं, जिसके बाजू में शयनकक्ष होते हैं। ‘अरा’ का फर्श दूसरी ‘सालाओ’ के फर्श से कुछ अधिक ऊँचा किया जाता था ताकि ‘निलाबार’ या भूतल का निर्माण हो सके।

भवनों के प्रवेश द्वार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के मध्य में ‘अरा’ की स्थिति के हिसाब से दिए जाते थे। जैसे-जैसे परिवारों का आकार बढ़ा ‘साला’ के वर्गों को जोड़कर इट्टकेट्टु बनाए गए जो दो आंगनों के चारों ओर आठ सालाएँ कहलाईं। जहाँ केरल के ठोस धरातल वाले क्षेत्र हैं नालकेट्टू को ऊपर की तरफ दो या तीन मंजिल तक बढ़ाया गया, जिनकी ऊपर की मंजिलें ‘करनवारस’ या वरिष्ठ जनों के लिए आरक्षित रखी जाती थीं, इसे चूने से प्लास्टर किया जाता है। इस विधि का अंतिम विकास ‘पाथीनारुकेट्टू या 16 सालाओ का निर्माण है।

केरल शिल्पकला – स्वतंत्रता के पश्चात केरल वास्तु-शिल्प में दो अलग-अलग किस्म के प्रचलन दिखाई पड़ते हैं। एक आधुनिक समय में उपयोग की जाने वाली कांक्रिट भवन शैली जो कि कई रूपों में विकसित हुई तथा यह भारत में फैले हुए अन्य क्षेत्रों के समान ही है। दूसरी पारंपरिक पद्धति जो कि अपने आप को गहराई से आज भी जीवित रखे हुए है। आधुनिक सामग्री तथा पारंपरिक तकनीकी का उपयोग कर जलवायु के अनुरूप आवश्यकताओं की पूर्ति ही इस शैली का विशेष गुण है। इसे ‘लारी बेकर’ ने प्रयुक्त किया। त्रिवेन्द्रम का विकास अध्ययन केन्द्र तथा कई अन्य ‘बेकर भवन’ इसके उपयुक्त उदाहरण हैं।

चित्र :- बेकर भवन



वास्तु शिल्प प्रत्येक समय में सामाजिक मूल्यों का चित्रण रहा है। यह हमेशा बदलता रहता है, किन्तु एक विशेष क्षेत्रीय प्रभाव लिए केरल में, जलवायु एवं स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता के अनुकूल निर्माण ही दिखाई पड़ता है।

वर्तमान प्रचलन :- केरलवासियों के परम्परागत निवास अर्थात् नालकेट्टू तच्चूशास्त्र के सिद्धांत पर बनाए गए थे, जिसे काष्ठकला एवं वास्तुशास्त्र का विज्ञान कहा जाता है, जो पुनः परम् आवश्यक तत्व के रूप में निर्माण कार्यों में उभर रहा है।

पिछले कुछ समय से केन्द्र सरकार के साथ-साथ राज्य सरकार भी विशेष समाज के कमजोर वर्गों के गृहनिर्माण को विशेष रूप से वरीयता दे रही है।

‘निर्मिती केन्द्र’ ऐसी संस्थाएँ हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य केरल में कम कीमत के आवास निर्माण करना है। तुलनात्मक रूप से समय के छोटे से कालखण्ड में ही इन्होंने राज्य में आवास-निर्माण में पर्याप्त योगदान दिया है।

मंदिरों का वास्तुशिल्प :- विशेष किस्म के वास्तुशिल्प के विकास को देखते हुए केरल में मंदिर वास्तुकला को चार काल-खंडों में विभक्त किया गया है।

कालखण्ड I - आठवीं सदी पूर्व के पत्थरों को काटकर बनाए मंदिर :- पत्थरों से बने ज्यादातर मंदिर 8 वीं सदी से पूर्व के ही माने जाते हैं। ये ज्यादातर दक्षिण केरल में तिरुवनंतपुरम् के पास विंजिजम तथा आयुरपारा, कोलम के पास कोट्टुकल तथा अलापूझा के पास कवियूर में पाए गए हैं। ये मंदिर सामान्य प्रणाली पर आधारित एक पूजा कक्ष तथा सामने एक अतिरिक्त कक्ष होता था, जो कि शैव उपासकों से संबंधित हुआ करते थे। कवियूर मंदिर इसका सटीक उदाहरण है।

कालखंड II - आठवीं सदी से ग्यारवीं शती के निर्माण “अल्पप्रासाद” - इस कालखंड में निर्मित मंदिर साधारण तथा 3 से 5 हाथ की चौड़ाई के लिये केवल भूतल पर अवस्थित होते थे। इन्हें निर्मित मंदिर साधारण तथा 3 से 5 हाथ की चौड़ाई के लिये केवल भूतल पर अवस्थित होते थे। इन्हें अल्पप्रासाद अथवा छोटे मंदिरों के नाम से जाना जाता है। इनमें एक ही पूजा कक्ष तथा एक दरवाजा होता था। इन्हें निरंतर प्रासाद भी कहा जाता था। इनमें गोल, वर्गाकार, आयताकार अथवा वर्तुलाकार का उपयोग सामान्य था। भूतल (फर्श) ग्रेनाइट का तथा दीवालें लेटराइट की बनी होती हैं, इनकी छत वर्गाकार पत्थरों पर अष्टभुजा बनाते हुए चोटी तक पहुँचती तथा अंतिम पत्थर जिसे मूर्धशिला कहा जाता था, रखकर गुंबद को पूर्णता प्रदान की जाती थी। त्रिसूर के पास वटक्कुनाथन में गोपालकृष्ण पूजा कक्ष एवं मूर्ति तथा विजिंगम में एकल पूजा कक्ष अल्पप्रासाद के अच्छे उदाहरण हैं।

कालखंड III- दसवीं से तेरहवी शताब्दी के “महाप्रासाद” - इस कालखंड में पूजा-कक्षा की चौड़ाई 15 हाथ तक बढ़ा दी गई। इस तरह चौड़ाई बढ़ने से श्रीकोविल, शांतप्रासाद बन गई, जिसमें दो दीवार बाह्य भित्ति तथा आंतरिक खंड भित्ति में मध्य संकरा रास्ता बना दिया गया तथा अनुकूल दिशाओं में प्रवेश द्वार बनाये गये। नकली प्रवेश द्वार जिन्हें घनद्वार कहा जाता, का भी निर्माण होता था।

गर्भगृह तथा दीवारों को उभारकर तथा गहराकर नक्काशीदार भी बनाया जाता था। सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इस समय के बहुतलीय निर्माण जिन्हें विमान कहा जाता था, देखने में आती है। इसका उत्तम उदाहरण-त्रिसुर के पास स्थित पेरुमानम मंदिर का मठाटिलप्पन् पूजागृह है।

कालखंड IV- तेरहवीं शताब्दी से अठारवीं शताब्दी के ‘संयुक्त मंदिर’ - इस कालखंड में पूजा कक्ष के सामने प्रार्थना कक्ष (नमस्कार मंडप) अलग से पालीसाद तथा दीपमाला की कतार जिन्हें कुट्टमपलम के बाहर स्थान दिया गया। दीपस्तंभ, ध्वजस्तंभ तथा हाथी के लिये बड़े कक्ष का निर्माण हस्तीमंडप जैसे निर्माण कार्य अतिरिक्त रूप में शामिल किये गये। पूरे निर्माण संरचना को मजबूत चहार-दीवारी से घेर दिया जाता तथा प्रवेश द्वार पर लंबे गेट लगाये गये जिन्हें गोपुर कहा जाता था। अन्य देवताओं के लिये भी पूजा-कक्ष, स्नानकक्ष, वैदिक चर्चाओं के लिये सभा-कक्ष एवं भोजशाला का निर्माण भी होने लगा।

इस समय एक आवश्यक परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा, वह था एक बड़े कुट्टमपलम का निर्माण जिसमें रंगमंच होता था, जिस पर संस्कृत नाटकों को मंचित किया जाता। यह परिवर्तन कई मंदिरों में देखा जा सकता है। इनका निर्माण मुख्य देवता को उन्मुख करते हुए दीपमाला की बाहरी ओर दाँए तरफ किया जाता था मूलतः कुट्टमपलम एक सभागृह ही होता था जिसमें श्रोता अथवा दर्शक के बैठने के लिये स्थान के साथ ही एक और ऊँचाई पर एक मंच होता जिसे रंगमंडपम् कहते हैं। सामने ही एक अतिरिक्त कक्ष का निर्माण किया जाता जिसमें कलाकार तैयार होते थे, इसे ‘नेपथ्य’ अथवा ग्रीन-रूम का नाम दिया गया। उदाहरण-त्रिसूर स्थित वटुकनाथन मंदिर तथा गुरुवायूर का श्रीकृष्ण मंदिर।

तकनीकी तौर पर देखा जाए तो वास्तुशिल्प का मुख्य आधार यहाँ की योजना, रूपरेखा तथा कोणीय मापदंडों का सही प्रयोग ही है जो इसे विशिष्टता प्रदान करती है। पूरी संरचना के निर्माण का केन्द्र बिन्दु पूजा कक्ष ही होता था। पूजा-कक्ष की चौड़ाई एवं उसकी कोणीय व्यवस्था ही आकर्षण

का मूलाधार थी। पूजा कक्ष के बाहर खाली स्थान, पूजा-कक्ष की स्थिति, आसपास के निर्माण में आपसी तालमेल तथा तकनीकी सामंजस्य यहाँ तक कि लंबवत संरचनाओं का गणितीय पक्ष भी ध्यान में रखा जाता था। कोणीय सामंजस्य का ध्यान बड़े निर्माण से लेकर छोटे निर्माण जैसे स्तंभों की लंबवत स्थिति, दीवारों पर लगाई गई चीपें, छत पर उपयोग किये गये कड़ी-बत्ते आदि में बारीकी से किया जाता था। इस अनुपातिक नियम के कड़ाई से पालन के परिणामस्वरूप ही शिल्प-एकसारिता दिखाई पड़ती है तथा सामान्य कारीगर में भी यह अनुभव के रूप में संरक्षित हो चुका था।

यद्यपि मूल हिन्दु सिद्धान्तों की अवधारणानुसार ईश्वर निराकार है। पूर्णतः भारतीय और पूर्ण रूपेण दक्षिणी केरल मंदिर रूपण का मार्ग व अर्थ अपनी स्वयं की परिभाषा और अपनी स्वयं की अचरज की सीमाएं संजोये है। "मंदिर भूमि से उठाकर स्वर्ग तक जाते हैं।"

त्रिवेन्द्रम के श्री पद्मनाभ स्वामी मंदिर, गुरुवायूर का श्रीकृष्ण मंदिर, त्रिसूर मंदिर में वटुकनाथन मंदिर, कवियूर का शिव मंदिर अपने काले पत्थर का आधार और चौड़े कलात्मक मेहराबों के लिए प्रसिद्ध है। थिरुवन्नूर और थिप्पनगोड़े के शिव-मंदिर अर्धचन्द्राकार गर्भगृहों के लिए प्रसिद्ध है।

मुस्लिम एवं जेविश प्रभाव - केरल का वास्तुशिल्प सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बाहरी लोगों के आक्रमण एवं उनकी धार्मिकता से अवश्य ही प्रभावित रहा है। लंबी समुद्री सीमाओं एवं यहूदी तथा अरबी लोगों से व्यापार होने के कारण ईसाईयों के आने के पूर्व से ही यहाँ का समाज प्रभावित होता रहा है। यहूदियों से संबंध के सूत्र सोलोमन के समय से ही दिखाई पड़ते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग जेविश लोग कोच्ची एवं कांडं गूल्लूर में स्थापित होते चले गये।

मकानों का कतारबद्ध निर्माण प्रारंभ हो चुका था। इन भवनों के प्रवेश द्वार गलियों में खुलते थे। भूतल निर्माण ज्यादातर व्यवसाय अथवा भंडारण के लिये तथा ऊपरी तल निवास के लिये उपयोग में लाये जाते थे। इस तरह की एक ऐतिहासिक इमारत सिनागोग कोच्ची में स्थित है। यह ढलुंगा छत लिये हुए ऊँची एवं सादी संरचना है। परंतु भीतर संरचनाएं असाधारण रूप से अलंकृत हैं। संक्षेप में कहा जाये तो केरल में वास्तु-निर्माण की मुख्य धारा जेविश पद्धति से अछूती ही रही थी।

केरल में प्रारंभिक समय में जिन मुस्लिम मस्जिदों का निर्माण हुआ उनका शिल्प भारत के उत्तरी भारतीय-मुस्लिम कला से बिल्कुल अलग है। चूंकि यहाँ की मस्जिदों का निर्माण कार्य भी स्थानीय कारीगरों द्वारा ही किये गये। यहाँ की मस्जिदों का निर्माण में स्थानीय मंदिर तथा कुंदुपलमो को बतौर नमूना इस्तेमाल किया गया।

कालीकट केरल में स्थित 'मिस्कल मस्जिद' यहाँ के पारंपरिक भवनों से काफी मेल खाती हुई बनाई गई है, मस्जिद के आंतरिक हिस्सों में पश्चिमी दीवाल पर एक मेहराब तथा उसी से जुड़ा प्रार्थना-सभा कक्ष अवश्य होता था। अरबी तरीकों की सादगी तथा स्थानीय शैली ने इन मस्जिदों को एक विशेष स्वरूप प्रदान किया है, जो कि भारत में अन्यत्र कहीं नहीं देखने में आता है। परंतु पिछले तीन-चार दशकों में मस्जिद निर्माण में सारासैनिक पर्शियन तथा उत्तर भारतीय शैली के प्रभाव देखने में आने लगे हैं। मुस्लिम वाशिंगटन के भवनों में अरबी शैली के प्रभाव कुछ-कुछ धर्म-निरपेक्षता के समान प्रतीत होते हैं। बाजारों में भवनों की कतार के दोनों ओर गलियाँ अवस्थित हैं। ऊपरी मंजिलों से बाहरी दृश्यावलोकन हेतु गलियों की ओर खिड़कियाँ खुलती हैं। खिड़कियों पर लगे कलायुक्त छिद्रित किवाड़ निवासियों की निजता को प्रभावित किये बिना दृश्यानंद के अच्छे साधन थे।

मुस्लिमों द्वारा कट्टूशालाओं तथा एक शालाओं का उपयोग थोड़ा फेरबदल करने के पश्चात् ही किया जाता था।

केरल में ईसाई वास्तु शिल्प—केरल में ईसाई वास्तु शिल्प का उद्भव दो स्रोतों से फला-फूला। क्रमिक विकास पहला स्रोत सीरियन ईसाइयों द्वारा तथा दूसरा यूरोपियों के निवास बनाने से।

जब सीरियन केरल में आये तो अपने साथ पश्चिम एशिया के "चर्च वास्तु शिल्प" को लेकर आये। भवन की छत पर त्रिकोणीय बुर्ज की नोंक पर अलंकारित क्रॉस का होना, उनके शिल्प की महत्वपूर्ण विशेषता थी। प्रवेश द्वार बरामदे का होना अति आवश्यक था। बाप्तिजमा (पवित्र जल छिड़क कर ईसाईयत प्रदान करना) के लिये एक छोटा कक्ष प्रवेश द्वार के पास ही बना होता था। घंटा लटकाने के स्तंभ का निर्माण किया जाता है जो कि चर्च के प्रवेशद्वार के पास होता था। छोटे चर्चों में इसका निर्माण अतिरिक्त स्तंभ में ना कर छत पर बुर्ज में क्रॉस के नीचे घंटी लगाकर कर दिया जाता था, चर्च की त्रिकोणीय छत पवित्र वेदी तक फैली रहती थी। वेदी के त्रिकोणीय बुर्ज सामान्य से ऊँचे रखे जाते थे इसी तरह जैसे मंदिरों के गर्भगृह के ऊपर शिखर का निर्माण बिंदु किया करते थे। पुजारी तथा अन्य अधिकारियों के लिये एक तरफ कक्ष बनाये जाते थे तथा दूसरी तरफ अंतःकक्षों का निर्माण भी किया जाता था।

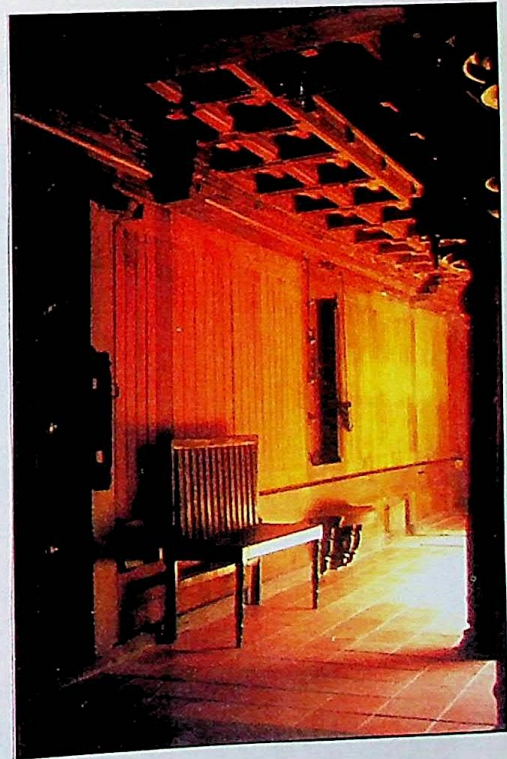
'सीरियन चर्चों' में भी बाहरी बनावटों में हिंदु परंपरा का उपयोग दिखाई पड़ता है। चर्च एवं उसके सहायक भवन लेटराइट की चहारदीवारी के अंदर होते थे। मुख्य प्रवेश द्वार के पास समर्पण एवं

पूजन के अभिप्रायः से ग्रेनाइट पत्थर से पवित्र क्रॉस निर्मित किया जाता था, जो बलिलकल से मिलता-जुलता था। चर्च के सामने की एक ध्वज भी लगाया जाता था। चेंगन्नूर में स्थित परंपरावादी सीरियन चर्च में 'पीटर' एवं 'पॉल' द्वारपाल के समान स्थित है। ठीक उसी तरह जैसे हिंदु मंदिरों में मूर्तियों की रक्षा हेतु द्वारपाल बनाये जाते थे। कभी-कभी गोपुरम् अथवा संगीत कक्षा का निर्माण भी ऊपर की मंजिलों में किया जाता था। लकड़ी पर पच्चीकारी तथा दीवारों पर चित्रकारी भी हिंदु मंदिरों के समान ही प्राचीन चर्चों में उपयोग लाई जाती थी।

यूरोपियन परंपरा के चर्च - केरल में चर्चों के निर्माण में यूरोपियन शैली का समावेश सर्वप्रथम पोर्तुगीजों ने किया। इस तरह का पहला चर्च फ्रांसिस्कन मिशनरीज द्वारा कोचीन कोर्ट में सन् 1510 में बनाया गया। ये छोटे भवन कुछ-कुछ स्पेनिश नमूनों के समान दिखाई पड़ते थे। सन 1524 में वास्को-डि-गामा की कोच्ची में मृत्यु हो गई, उसके शव को इसी चर्च में रखा गया था फिर सन 1938 में उसे लिस्बन ले जाया गया। अतः यह वास्को-डि-गामा चर्च के नाम से मशहूर हो गया। पोर्तुगीजों ने चर्चों की रूपरेखा को कई नवीन सुधार किये। मंदिर शिल्प से मेल खाता वेदी के ऊपर उठे हुवे बुर्जों के उपयोग को नकारने की शुरुआत पहली बार हुई। ग्रेनाइट पत्थरों पर उकेरी गई हिंदु शिल्प की कला कृतियाँ भी अलग कर दी गई। उनके स्थान पर लकड़ी पर बनी संतों की आकृतियों का उपयोग किया गया। उपदेशकों के लिये ऊँचे आसनों का निर्माण तथा वेदी को आकर्षक ढंग से अलंकृत करने का कार्य किया गया। छत तथा दीवारों को धार्मिक चित्रों से यूरोपियन शैली में बनाया गया। नुकीले तथा गोल अर्द्धवृत्तों का उपयोग तथा रंगीन कांचों का खिड़कियों में उपयोग किया जाने लगा।



गृह निर्माण का प्रकार - केरल



काष्ठ की दीवारों से निर्मित कक्ष - आश-निश.



गृह निर्माण के प्रकार केरल



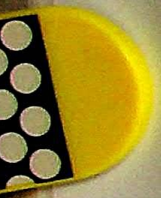
Museum Building Thiruvananthapuram

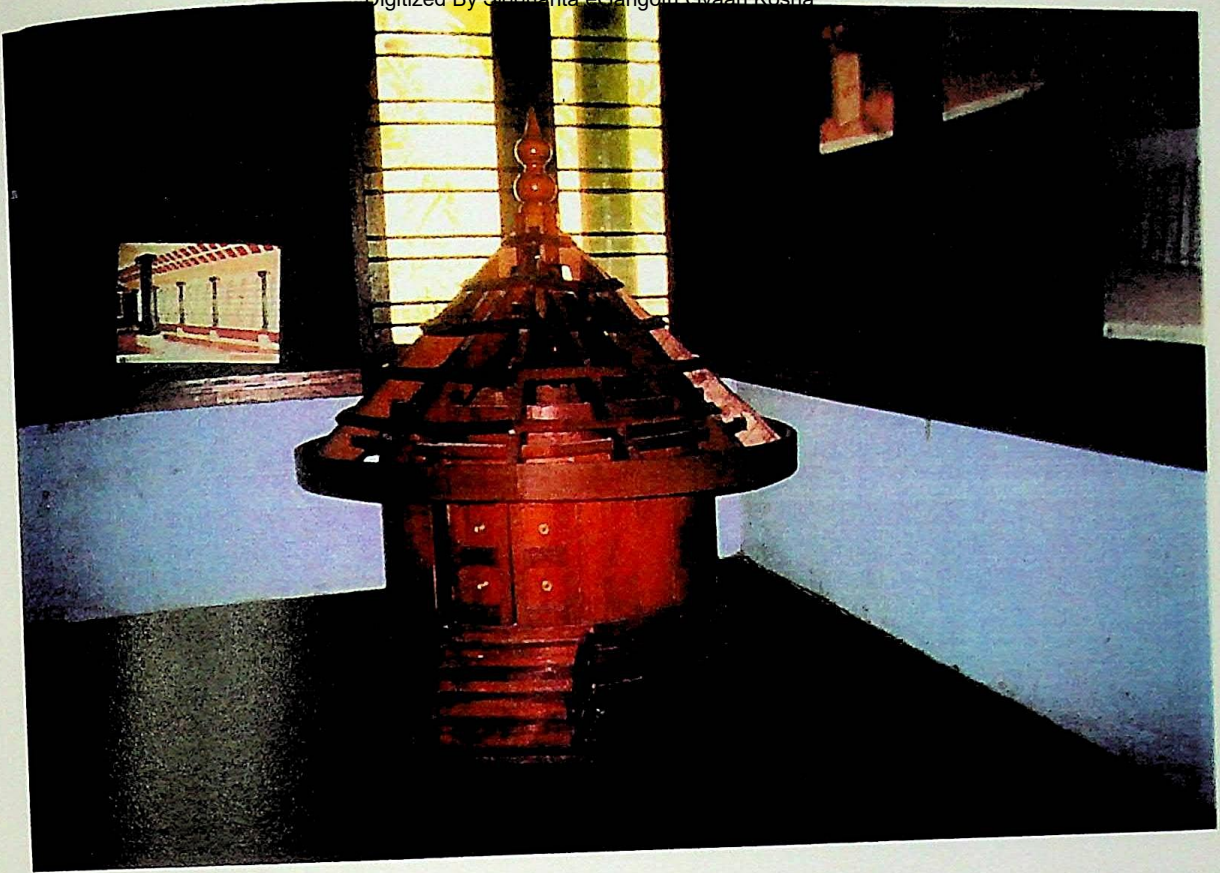


निर्मिथी केन्द्र द्वारा वास्तुशास्त्र अनुसार निर्माणित भवन (बाह्य-भाग)



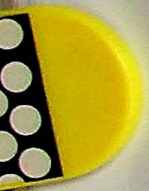
निर्मिथी केन्द्र द्वारा वास्तुशास्त्र अनुसार निर्माणित भवन
(आंतरिक भाग) बह्य स्थान





काष्ठ-निर्मित भवन (निर्मिथी केन्द्र) - केरल







सेंट फ्रांसिस चर्च, कोच्चि - केरल

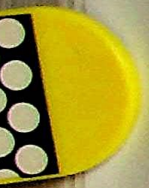


महामाया मंदिर - केरल



अध्याय - पंचम





5. कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय अध्ययन

कर्नाटक एक व्यापक अभिव्यक्ति है जिसका प्रयोग उस भाषा साहित्य, संस्कृति और क्षेत्र को इंगित करने के लिये किया जाता है, जिसमें अनादिकाल से कन्नड़भाषी लोग निवास करते आये हैं। कर्नाटक का प्राचीनतम् संदर्भ महाभारत के 'सभापर्व' और 'भीष्मपर्व' में निहित है। महाकाव्य काल में 'कर्नाटक' नाम अभिव्यक्ति का प्रयोग वनवासी तथा महिषमण्डल के आंशिक भागों को दर्शाने के लिये किया गया। ऐसा कहा जाता है कि 'कर्नाटक' शब्द का प्रयोग महाभारत के केवल 'कुम्भकोणम' संस्करण में हुआ है। महाभारत के शुद्ध संस्करण में 'कुंतल' अभिव्यक्ति प्रयुक्त हुई है। यह सत्य है कि 'कुंतल' शब्द का उपयोग कर्नाटक के उत्तरी भागों को दर्शाने के लिये किया गया इस तरह यह प्रमाणित होता है कि महाकाव्य काल से ही कर्नाटक क्षेत्र अथवा वह स्थल जहाँ लोगों की भाषा कन्नड़ थी, भारत के लोगों को ज्ञात था।

'कर्नाटक' के इतिहास का अध्ययन हमारे समक्ष उस स्थानीय संस्कृति को प्रकट करता है जो इस क्षेत्र में आदि काल से विकसित हुई। आधुनिक काल तक कर्नाटक में घटित समृद्ध संस्कृति की विरासत और उसमें आए परिवर्तन ऐसा विषय है जो व्यापक पैमाने तक लोगों की अभिरुचि को आकृष्ट करते हैं। चूंकि इतिहास का सौपान अनन्त सीमा तक बढ़ गया है, अतः क्षेत्रीय इतिहास का अध्ययन भी अनिवार्य माना जाता है।

अतिप्राचीन काल में उत्तर की ओर गोदावरी से दक्षिण की ओर कावेरी तक पश्चिम में अरब सागर के लिये पूर्व में 78° अक्षांश तक प्रसारित क्षेत्र कर्नाटक के रूप में जाना जाता था। 1 नवंबर 1956 को मैसूर राज्य का गठन हुआ, 1 नवंबर 1973 को मैसूर राज्य अधिनियम (नाम-परिवर्तन) 1973 के तहत, एकीकरण के लगभग 17 वर्ष बाद मैसूर राज्य का पुर्ननामकरण कर्नाटक राज्य के रूप में हुआ।

कर्नाटक राज्य एक ओर अरब सागर से घिरा हुआ है। दूसरी तरफ आंध्रप्रदेश और तामिलनाडू से। कर्नाटक के उत्तर में महाराष्ट्र राज्य है, दक्षिण में केरल और तामिलनाडू राज्य है। गोदावरी और कावेरी इन दो नदियों के बीच बसा यह प्रदेश आर्यावर्त और दक्षिणापथ अर्थात् उत्तर और दक्षिण में जो सर्वोत्तम है उसका प्रतीक है। इस प्रदेश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं का समन्वय स्थल है। बौद्ध, जैन, वीर शैव, शंकर, रामानुज और बसवण्णा के वचन भी यहीं पर गूंजे हैं। निजयुग, शिवयोगी, सर्वज्ञ सर्वभूषण और अवक महादेवी जैसे संतो की वाणी से कन्नड़ भाषा समृद्ध हुई है। हिंदु नरेशों के समान ही हैदर अली और टीपू ने भी यहाँ हिंदु मंदिरों का संवर्धन किया है।

कोंकण क्षेत्र के दो जिलों को छोड़कर यह राज्य समुद्र स्तर से दो हजार से तीन हजार फुट की ऊँचाई पर बसा है। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है। प्रकृति ने मुक्त होकर इस प्रदेश पर अपना सौंदर्य न्यौछावर किया है, खुले मैदान, हरे-भरे उद्यान, मनोहर पहाड़ियाँ और सुंदर जल-प्रपात, इस राज्य की शोभा बढ़ा देते हैं। इसका बहुत बड़ा भू-भाग सघन वनों से घिरा है जहाँ वन्य पशु ही नहीं हैं, कीमती लकड़ी, बाँस और चंदन भी हैं। यह 'हाथियों का प्रदेश' है।¹

5.1 'कर्नाटक का ऐतिहासिक वर्णन :- कर्नाटक का नाम करुनाडू से निकला है, जिसका शाब्दिक अर्थ है उच्च भूमि। कर्नाटक का इतिहास पुराणों तक जाता है। रामायण में वर्णित बंदरों के राजा बाली और सुग्रीव की राजधानी बेल्लारी जिले के हम्पी में बताई जाती है।

वर्तमान कर्नाटक राज्य में पहले के मैसूर राज्य के अधिकांश क्षेत्र शामिल हैं परंपरा के अनुसार इस प्रदेश में सबसे पहले अगस्त्य ऋषि ने वातापि नामक दैत्य को मार कर आर्य-संस्कृति का शुभारंभ किया था। यह भी माना जाता है कि इस प्रदेश की बहुत सी भूमि परशुराम ने समुद्र से प्राप्त की थी। राम इस प्रदेश में आए थे और यहीं बाली-सुग्रीव की पम्पा नगरी थी। कर्नाटक के रूप में इसका उद्देश्य सबसे पहले महाभारत में आता है। कथा के अनुसार चित्रदुर्ग में पाँच पांडवों ने अपना वनवास का समय बिताया था, यहाँ पर आज भी पाँचों पांडवों, और कृष्ण के मंदिर है।

एक दंत कथा के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना अंतिम समय श्रवण-बेलगोला में बिताया था। वहीं अनशन द्वारा अपने प्राण त्यागे। सम्राट अशोक के छः शिलालेख भी इस प्रदेश में मिले हैं। ऐतिहासिक युग में सातवाहनों ने इस प्रदेश पर शासन किया। सातवाहनों के पश्चात् कदम्बों और गंगों ने यहाँ शासन किया। कदम्बों का राज्य तुंगभद्रा नदी के ऊपर था और गंगा का नीचे। छठी शताब्दी के चालुक्य नरेश पुलकेशी ने एक नए साम्राज्य की नींव डाली। इसी वंश के प्रतापी सम्राट पुलकेशी द्वितीय से सम्राट से सम्राट हर्ष का युद्ध हुआ था, और दोनों में संधि हो गई थी। चालुक्यों के समय में ही कर्नाटक का एकीकरण हुआ और ऐतिहासिक रूप से उसको यह नाम भी मिला। चालुक्यों के बाद राष्ट्रकूट आए। इसी वंश के नरेश गोविंद के एक शिलालेख में कहा गया है कि उसके घोड़ों ने हिमालय की धाराओं से बहते हुए बर्फीले पानी को पिया। सुलेमान सौदागर ने जो नवीं सदी में भारत आया था। राष्ट्रकूट साम्राज्य को संसार के चार बड़े साम्राज्यों में माना था। दूसरे तीन थे- अरब, रोम, और चीन।²

1. प्रभाकर श्री विष्णु, एक देश एक हृदय, पृ. 139

2. पांडे डॉ. आर.एन. दक्षिण भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 5

कर्नाटक के विभिन्न भागों में अनेक राजवंशों ने शासन किया। दक्षिण कर्नाटक में होयसलवंश के राज्यकाल में हलेविड और वैल्लूर का निर्माण हुआ। उत्तर कर्नाटक बहमनी साम्राज्य के अंतर्गत रहा जो विश्व का एक सबसे सम्पन्न साम्राज्य था। इसी प्रकार कर्नाटक का बहुत सा भाग विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत भी रहा। यह साम्राज्य न केवल भौतिक दृष्टि से बल्कि विद्या और कला की दृष्टि से भी बहुत ही समृद्ध और उन्नत था।

स्वतंत्र मैसूर राज्य की स्थापना 1399 में उत्तर भारत के श्री यदुराय ने की थी। वह यदुवंशी होने का दावा करता था। सन 1578 तक ये लोग छोटे राजा ही रहे। इस वर्ष (1578) राजा ओडेयर ने मैसूर को लगभग वर्तमान राज्य की सीमा तक बढ़ा लिया। सन 1759 में यह शक्ति हैदर अली के हाथ में और 1799 में अंग्रेजों के हाथ में आ गई। हैदरअली और टीपू ने उनके विरुद्ध घोर संघर्ष किया था, मैसूर के पुराने हिन्दु राजाओं को एक बार फिर 1881 में सत्ता प्राप्त हुई जो 1947 तक रही। इस वर्ष भारत के स्वतंत्र हो जाने पर मैसूर भी उसी में विलीन हो गया और अंत में 1 नवंबर 1956 को वर्तमान कर्नाटक का निर्माण हुआ।

इस प्रदेश की स्वाधीनता और सुरक्षा के लिये हैदर और टीपू ने अपने प्राणों का बलिदान दिया। दोनों पिता-पुत्र ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह किया था। उसके बाद आया व्यक्ति स्वातंत्र्य युद्ध। इस युद्ध में सर्वोपरि है किर्तुर रानी चैन्नम्मा। इन्होंने और उनके अतिरिक्त संगोगिल रायण्णा नायक और अपरस्पर स्वामी आदि ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया, किंतु सफल नहीं हो सके 1857 के स्वाधीनता संग्राम में भी अनेक वीरों ने शहादत का जाम पिया। गांधी युग में हिंदुस्तानी सेवा-दल के संस्थापक डॉक्टर हार्डिकर इस प्रदेश के ही थे। महात्मा गांधी ने कांग्रेस के जिस अधिवेशन की अध्यक्षता की थी वह इसी प्रदेश में बेलगांव में हुआ था। प्रत्येक आंदोलन में चाहे वह झंडा या नमक सत्याग्रह हो, कोई करबंदी आंदोलन हो या 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन हो, कर्नाटक सदैव आगे रहा। वर्तमान मैसूर के निर्माता और संसार की दूसरी बड़ी झील कृष्णराज सागर तथा वृन्दावन उद्यान का निर्माण करने वाले इंजीनियर भारत रत्न डॉ. एम.विश्वेश्वरैया इसी प्रदेश के थे।

5.2 कर्नाटक प्रांत की भौगोलिक स्थिति

पृष्ठीय लक्षण- दक्कन लावा प्रदेश के दक्षिण में कर्नाटक पठार पड़ता है। उत्तर-पूर्व (ईशान) में स्थित छोटे से इलाके को छोड़कर कर्नाटक राज्य के पठार के संपूर्ण भाग इस प्रदेश में शामिल हैं। इस पठार के पश्चिम में तटीय मैदान और दक्षिण में तमिलनाडू का मैदान है। समुद्र तल से इसकी औसत

संस्कृत में कर्नाटक प्रदेश की भाषा है। इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।

इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।

इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।

इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।
इस भाषा में बहुत सारे शब्द हैं जो कि अन्य भाषाओं में नहीं मिलते हैं।

Karnataka
(Physical Map)

Karnataka (Physical Map)

MAHARASHTRA

ANDHRA PRADESH

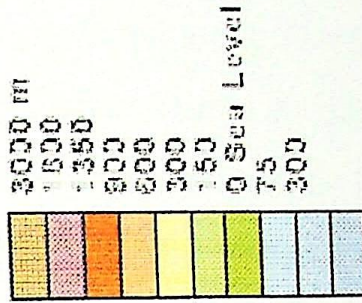
TAMILNADU

KERALA

ARABIAN SEA

Map not to Scale

Physical Altitude Scale



ऊँचाई लगभग 600 मीटर है। उत्तर-पूर्व में भीमा घाटी की ऊँचाई 400 मीटर से कम है। पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र लगभग 64 किलोमीटर चौड़ा है। यह क्षेत्र मलनाड कहलाता है। यह पश्चिम घाट पर्वत से सटा हुआ है। इस प्रदेश का पूर्वी भाग अपेक्षाकृत काफी बड़ा है, किंतु इसकी ऊँचाई कम है। इस भाग को मैदान कहा जाता है। मैदान खुला एवं तरंगित प्रदेश है। इस प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम भाग में (नैऋत्य) में नीलगिरी पठार है, जहाँ पर पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट मिलते हैं।

नीलगिरी पठार के पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में नीचा समतल क्षेत्र है जहाँ से नीलगिरी पठार 2440 मीटर की औसत ऊँचाई तक एकदम ऊँचा हुआ है। कर्नाटक पठार के मध्य भाग की ऊँचाई लगभग 915 मीटर है। यहाँ पर एक पहाड़ी पूर्व-पश्चिम में फैली हुई है। यह प्रांत दो जलनिकास द्रोणियों में बंट गया है। इस जल विभाजन में उत्तर में तुंगभद्रा और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं और दक्षिण में कावेरी और उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं। तुंगभद्रा द्रोणी के उत्तर में पूर्व-पश्चिम फैली हुई पहाड़ियाँ स्थित हैं। यह पहाड़ी कृष्णा के बेसिन को तुंगभद्रा द्रोणी को अलग करती है।

पश्चिम घाट के क्षेत्र में पहाड़ियाँ मोटे तौर से उत्तर-दक्षिण फैली हैं और एक दूसरे के समानांतर हैं। पश्चिम घाट के सबसे ऊँची पहाड़ी का नाम बाबा-बूदन पहाड़ी है। इस पहाड़ी की सबसे अधिक ऊँचाई (1923 मीटर) मुल्लनगिरी पर है। पश्चिम घाट से पश्चिम की ओर अनेक नदियाँ निकली हैं। शरावती इस प्रदेश की पश्चिम की ओर बहने वाली सुप्रसिद्ध नदी है। यह नदी पश्चिम घाट के खड़े ढाल से कूदकर 289 मीटर ऊँचा प्रपात बनाती है। जिसका नाम गरसोप्पा प्रपात है।

5.3 कर्नाटक का भौतिक स्वरूप - किसी राष्ट्र या क्षेत्र के भौतिक प्रारूप मानव जीवन के हर पहलू पर अपना प्रभाव डालते हैं। किसी भी क्षेत्र में रहने वाले निवासियों का चरित्र व जीवन वहाँ के भौगोलिक स्वरूप से ढलता है, कर्नाटक भारत के प्राचीनतम भागों में से एक है। यह दक्खन पठार के हृदय में स्थित है, कर्नाटक 1,91,756,01 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में व्याप्त है। मोटे तौर पर कहा जाये तो कर्नाटक उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक फैला है। यह राज्य 14-12° और 78-30° देशांशों तथा 11-30° और 48-45 अक्षांशों के मध्य अवस्थित है।

कर्नाटक राज्य उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण में क्रमशः महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश व तमिलनाडू तथा पश्चिम में केरल से घिरा हुआ है। इसका अरब सागर की ओर लगभग 350 मील लम्बा समुद्र तट है। यह भूमि समुद्र तल से लगभग 200 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। कर्नाटक प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है।

खनिज सम्पदा प्रचुरता लिये है। विशेषकर स्वर्ण की उपलब्धता कर्नाटक के लिये एक उपलब्धी है, यह वन संपदा से भी समृद्ध है। कर्नाटक विश्व प्रसिद्ध चंदन वृक्षों का गृहराज्य है।

दक्षिण की गंगा के रूप में ख्यातिलब्ध कावेरी कर्नाटक में जन्म लेती है। कर्नाटक अपने मंदिर निर्माण के कारण भी प्रसिद्ध है।

कर्नाटक के भौतिक स्वरूप को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. कनार समुद्री परिक्षेत्र
2. सह्याद्री और मलनाड परिक्षेत्र
3. पूर्वी पर्वतमालाएँ
4. दक्षिणी पठार
5. उत्तरी पठार

1. कनार समुद्री परिक्षेत्र - कनार समुद्री परिक्षेत्र ढलानों के किनारे करीब 300 मील फैला है। यह अरब सागर और पश्चिमी घाट के मध्य क्षेत्र में स्थित है। यह उत्तर की ओर तकरीबन 8 से 20 मील प्रसारित और दक्षिण की ओर लगभग 30 से 40 मील चौड़ा है। उत्तरी कनार और दक्षिणी कनार समुद्री परिक्षेत्र में निहित है। समुद्र इस क्षेत्र के भीतर की ओर धंसा होने के कारण यह निचला इलाका पहाड़ियों से निर्मित मेडों और घोड़े की रकाबनुमा आकृतियों से एक छोर से दूसरे छोर तक भरा पड़ा है। चूंकि कृषि योग्य भूमि सीमित है अतः कृषि कार्य सीमित है एवं केवल धान व नारियल उपजाये जाते हैं। यह क्षेत्र पश्चिम दिशा से शरावती, ताद्री, बेदथी नदियों के जल से सिंचित है, इस क्षेत्र के प्रमुख बंदरगाह कारवार मँगलोर है।

समुद्रतटीय क्षेत्रों में वर्षा दर भारी है, कर्नाटक के मलनाड परिक्षेत्र में स्थित शिमोगा जिले के अगुम्बे क्षेत्र को सर्वाधिक भारी वर्षा प्राप्त होती है। अगुम्बे को दक्षिण के चेरापूँजी के रूप में जाना जाता है। चिकमँगलूर, उत्तरी कनारा, दक्षिणी कनारा तथा कोनाड की औसत वार्षिक वर्षा दर 37 50 मि.मी. है, कनारा समुद्री क्षेत्र ने भी कर्नाटक के ऐतिहासिक प्रवाह क्षेत्र में प्रभाव डाला है, कई हिंदुराजवंशों ने इस क्षेत्र में प्रभुत्व स्थापित किया तथा जैनों के भवन-निर्माण केन्द्र कारकला, जेरुसप्पा तथा नगरवाटि केरे में पाए जाते हैं। अन्य देशों के साथ विकसित होने के कारण भी कनार समुद्रवर्ती क्षेत्र आर्थिक रूप से विकसित हुआ। व्यापार तथा वाणिज्य के विकास में पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित बंदरगाहों ने सहायता प्रदान की।

अफ्रीका और मिस्र के साथ व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध कायम रहे। व्यापार कायम रखने हेतु अंग्रेज एवं पुर्तगाली भी समुद्र तटों पर बसने लगे, कनारा समुद्रतट मूंगे के भण्डारों से सम्पन्न है, मत्स्य-उद्योग एवं सामुद्रिक गतिविधियाँ भी इस अंचल में विकसित हुई है।

2. **सहयाद्री एवं मलनाड परिक्षेत्र :-** प्रभुत्व कर्नाटक पठार क्षेत्र में व्याप्त है, पठार अंचल के दोनों ही ओर पर्वतीय श्रेणियाँ हैं। पश्चिमी घाट कनार समुद्री तट को पठार भूमि से विलग करते हैं। पश्चिमी घाटों में अपार प्राकृतिक सम्पदा निहित है। पूर्वी तथा पश्चिमी घाट उत्तर से दक्षिण की ओर जाते हैं। वे नीलगिरी पर्वत श्रेणी के पास मिलते हैं, पश्चिमी घाट सहयाद्री के नाम से जाने जाते हैं। सहयाद्री पर्वतमालाएँ उत्तर से दक्षिण की ओर जाते हुए इस पूरी धरती की रीढ़ निर्मित करती हैं। ये पर्वत श्रृंखलाएँ समुद्र तल से लगभग 2000 से 3000 फुट की ऊँचाई तक उठती हैं, कुछ - कुछ स्थानों पर तो वे 8000 फुट की ऊँचाई तक उठ जाती हैं। जैसे - जैसे सहयाद्री पर्वत श्रेणियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर फैलती हैं वैसे - वैसे उनकी ऊँचाई बढ़ती जाती है।

पश्चिमी घाटों के पूर्व का वन क्षेत्र मलनाड क्षेत्र कहलाता है, मानसूनी वर्षा ने यहाँ घने सदाबहार वनों को सुदृढ़ प्रोन्नत किया है, मलनाड परिक्षेत्र में कोडागू, शिमोगा, चिकमंगलूर, हसन तथा उत्तरी कनार जिले के कुछ भाग निहित हैं, जैसे - जैसे हम उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, वन सम्पदा समृद्ध से समृद्धतर होती जाती है।

मलमाड क्षेत्र ना केवल अपनी समृद्ध वन सम्पदा के कारण जाना जाता है वरन् यह खनिज सम्पदा से भी समृद्ध है। यह परिक्षेत्र कहवा (कॉफी) तथा चाय के बागानों का गृह है। दक्षिण भाग प्रसिद्ध चंदन की लकड़ी के वृक्षों से भरे पड़े हैं।

3. **पूर्वी पर्वतमालाएँ :-** सहयाद्री के पूर्व की ओर की संकरी भूमि की पट्टी ही पूर्वी पर्वतमालाएँ हैं। यह उत्तर में करीब 20 मील चौड़ी और दक्षिण में लगभग 30 मील प्रसार लिये हैं। यहाँ छोटी पर्वत श्रृंखलाएँ हैं। यहाँ की मिट्टी और मध्यम वर्षा दर धान और ज्वार की फसल हेतु सहायक है। यह परिक्षेत्र घनी आबादी से बसा है, उद्योगों के विकास व आवागमन की सुविधाओं के उपलब्ध होने से इस क्षेत्र में कई शहर बस गये हैं। राष्ट्रीय राजमार्गों तथा रेलमार्गों के विकास के कारण उत्तर तथा दक्षिण के बीच संपर्क स्थापित किया गया है, कई वाणिज्यिक-व्यावसायिक केन्द्र उभर आये हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र में से कुछ - बेलगाम, धारवाड, हुबली, हरिहर, दावनगिरी तथा शिमोगा है, इन केन्द्रों ने इस परिक्षेत्र की आर्थिक समृद्धि में योगदान किया है। हप्पी, बनवासी, बेलूर, हलेविड, तालकाड एवं पुन्नाश आदि इस परिक्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व के स्थलों में

से कुछ है। होययाल श्रेणी में बना हरिहर में स्थित हरिहरेश्वर मंदिर, हलेबिड़ होशयलेश्वर एवं केदारेश्वर मंदिर एवं कीर्ति नारायण मंदिर कर्नाटक की पूर्वी पर्वतमालाओं के क्षेत्र में पाये जाने वाले भवन-निर्माण कला के नमूनों में से कुछ विशिष्ट स्थल है।

इसका दक्षिणी भाग कावेरी एवं उसकी सहायक नदियों से जबकि दक्षिण-पूर्वी भाग पेन्नार एवं पोन्नायार नदियों के जल से सिंचित है। उत्तरी भाग को तुंगभद्रा नदी से जल की प्राप्ति होती है।

4. दक्षिणी पठार – पूर्वी और पश्चिमी घाटों का क्षेत्र पठार परिक्षेत्र है। तुंगभद्रा नदी के बहाव को ध्यान में रखकर यह क्षेत्र उत्तरी पठार एवं दक्षिणी के रूप में बाँटा जा सकता है। तुंगभद्रा के दक्षिण का क्षेत्र दक्षिणी पठार है, इसमें मैसूर क्षेत्र के मुख्य भाग सम्मिलित है। कुछ स्थानों पर दक्षिणी पठार है, समुद्र तल से 900 से 1200 मीटर की ऊँचाई लिये हुये हैं। जैसे-जैसे हम उत्तर की ओर बढ़ते हैं वैसे-वैसे यह ऊँचाई कम होती जाती है। इस क्षेत्र में बिलिगिरी रंग पहाड़ियाँ, नंदीदुर्गा, मधुगिरी तथा शिवगंगे जैसी कुछ महत्वपूर्ण पहाड़ियाँ हैं। इन पर्वतों में विभिन्न छोटी नदियाँ जन्म लेती हैं, ये सदा बहने वाली नदियाँ नहीं हैं। शिम्सा, अर्कावती, हेमवती, पेन्नार तथा पेलार नदियाँ केवल वर्षा ऋतु के दौरान बहती हैं।

यहाँ पाई जाने वाली भूरापन लिए मिट्टी नमी को रोके रखने में सक्षम है। चाँवल तथा नारियल यहाँ की मुख्य फसलें हैं, सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र जैसे बैंगलोर, मैसूर तथा कोलार यहाँ स्थित हैं। शिवनसमुद्रम् में जल-विद्युत संयंत्र की स्थापना के बाद यहाँ की आर्थिक उन्नति प्रारंभ हुई। माण्ड्या में शक्कर के कारखाने स्थापित किये गये हैं तथा कोलार अपनी स्वर्ण की खदानों के लिए प्रसिद्ध है। बैंगलोर ना केवल इस कारण प्रसिद्ध है कि वह कर्नाटक की राजधानी है, बल्कि वह औद्योगिक संकुल क्षेत्र के रूप में विकसित भी हो रहा है।

5. उत्तरी पठार :- उत्तरी पठार में चिकमंगलूर से चित्रदुर्ग तक का क्षेत्र निहित है। उत्तरी पठार परिक्षेत्र दक्षिणी पठार परिक्षेत्र की तुलना में कम ऊँचा है। यह अधिकतम 600 मीटर की ऊँचाई तक उठा हुआ है, इस क्षेत्र के अधिकांश भाग की मिट्टी काली है, कुछ छोटी पहाड़ियाँ हैं। कृषि कार्य गेहूँ, ज्वार, कपास और तिलहन तक सीमित है। उत्तरी परिक्षेत्र में बिदर, गुलबर्गा, बीजापुर, रायचुर तथा धारवाड़ एवं बेलगाम का कुछ भाग सम्मिलित है।

5.4 जलवायु- राज्य का मानसून ऋतु के साथ परिवर्तित होता है, ग्रीष्म ऋतु जो कि मार्च से मई तक होती है, शीतऋतु जनवरी से फरवरी में होती है। अक्टूबर से दिसंबर का जो अंतराल कहलाता है इस समय मानसून अपने पूर्ण रूप में होता है। अक्टूबर से मार्च का समय मानसून और शीतऋतु को पूर्ण करता है। सामान्यतः पूरे क्षेत्र में मौसम सुहावना रहता है। अक्टूबर और दिसंबर माह के दौरान उत्तरी, पूर्वी, दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्रों में पानी के कारण मौसम प्रभावी होता है।

अप्रैल और मई माह गर्म होते हैं, बहुत शुष्क और असुविधाजनक होते हैं, आर्द्रता और तापमान के कारण जून माह का मौसम कष्टदायी हो जाता है, इसके बाद के माह में कम आर्द्रता के कारण वातावरण सुविधाजनक होता है, आर्द्रता बढ़ती है।

वर्षा - वर्षाकाल एक तुलनात्मक अनुभव के अनुसार इस राज्य में 50 से 350 सेन्टीमीटर तक वर्षा होती है। इन उत्तरी संभागों में बीजापुर, रायचूर, बेल्लारी और गुलबर्गा इनमें सबसे कम वर्षा होती है जो कि 50 से 60 सेन्टीमीटर होती है।

5.6 वन संपदा - इस प्रदेश के केवल 14% भाग पर ही वन मिलते हैं और लगभग सारे वन क्षेत्र सह्याद्री पर्वतों पर सीमित हैं, यहाँ वर्षा होने के कारण सदाबहार वन पाये जाते हैं। कई स्थानों पर जंगली हाथियों के झुंड वनों में फिरा करते हैं। इन वनों की मुख्य उपज बाँस, चंदन की लकड़ी और लकड़ी का कोयला है इस प्रदेश में कोयला नहीं है अतः भद्रावती के लोहा-इस्पात कारखाने में लकड़ी से तेल मिलता है जिसकी सुगंध मन-मोहक है। बाँस का उपयोग कागज के कारखानों में होता है। संचरण-लाइनों के लिये लकड़ी के लट्ठे भी इन्हीं जंगलों से प्राप्त होते हैं। दिया-सलाई और प्लाईवुड बनाने के कारखानों को भी इन वनों की लकड़ी पर निर्भर रहना पड़ता है, उष्णकटीबंधीय नमवनों से इमारती लकड़ी मुख्यतया सागौन और रोजवुड की लकड़ी मिलती है। उष्णकटीबंधीय पर्णपाती वनों से सागौन, बाँस और चंदन की लकड़ी प्राप्त होती है। इस प्रदेश पूर्वी भाग सूखा है अतः यहाँ पर गुल्म वन (Scrub forest) पैदा होते हैं। वनों में अन्य उत्पाद शहद, बेंत और शाल्मली तंतु (Kapok) मुख्य हैं।

5.7 कृषि

कृषि - इस प्रदेश की लगभग 52% भूमि पर खेती होती है। यहाँ ज्वार, बाजरा, रागी और दालों की खेती होती है, इस प्रदेश में कपास, मूँगफली भी उल्लेखनीय फसलें हैं। चावल केवल सिंचित भाग में ही महत्वपूर्ण फसल है।

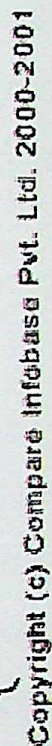
कहवा - इस प्रदेश की जलवायु और मृदा कहवा की पैदावार के अनुकूल है, अतः यहाँ भारत में उत्पादित कुल कहवा का 70% पैदा होता है। चिकमंगलूर, हासन, कोडागू, और नीलगिरी जिले कहवा के उत्पादन के लिए भारत भर में प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर अरबी कहवा पैदा होता है, जो सर्वोत्तम कोटि में आता है।

मलनाड - इस क्षेत्र की फसलें शुष्क पूर्वी भाग की फसलों से भिन्न हैं, मलनाड में कहवा, इलाइची, सुपारी और सन्तरे पैदा होते हैं। चावल यहाँ की मुख्य उपज है। नीलगिरी पहाड़ियों में चाय की पैदावार होती है। यहाँ कहवा के अतिरिक्त सुपाड़ी और इलाइची की पैदावार होती है।

रागी - इस प्रदेश के दक्षिणी आधे भाग की शुष्क भूमि पर इस खाद्यान्न की पैदावार होती है। यह गरीब ग्रामीणों का मुख्य भोजन है। प्रदेश के उत्तरी भाग में ज्वार, बाजरा, मूँगफली और कपास मुख्य फसलें हैं।

शहतूत से रेशम - भारत में जितनी शहतूत से रेशम पैदा होती है उसका लगभग 4/5 भाग इसी प्रदेश की पैदावार है। रेशम उत्पादक इलाकों में मैसूर जिला सबसे आगे है, बैंगलोर कच्चा रेशम को संग्रह करने वाला मुख्य केन्द्र तथा रेशम की प्रमुख मण्डी है, यहाँ के अधिकांश रेशम से रेशमी कपड़े बनते हैं। मैसूर, बंगलौर, मांड्या और कनकपुरा रेशमी वस्त्र बनाने के मुख्य केन्द्र हैं।

काजू, रबड़, और चंदन यहाँ की विशेष उपज हैं, पहाड़ी ढलानों पर चाय और कॉफी के खेत फैले पड़े हैं। प्रदेश में उत्पन्न कुल काफी का तीसरा हिस्सा कुर्ग में होता है। संसार में सबसे अधिक चंदन भी यहीं पर होता है, मैदानी क्षेत्रों में धान, ईख, कॉफी, सुपारी, मूँगफली, रागी, ज्वार, बाजरा, दाल, चना, मक्की, कोदो, तूर, इलाइची, नारियल, कपास, काली मिर्च, तिलहन और तम्बाकू की उपज होती है, फलों में सेव, केला, चकोतरा, पपीता, अंगूर, अमरुद, संतरा और कटहल। यह एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ फलों की प्रदर्शनियाँ भी लगती हैं। दक्षिण के दूसरे प्रदेश की अपेक्षा कहीं अधिक पुष्प यहाँ पैदा होते हैं।



5.7 जल स्रोत

जल स्रोत - कर्नाटक के पास देश का लगभग 6% भूजल स्रोत जो कि लगभग 170 लाख क्यूबिक मीटर है। इस भूजल का लगभग 40 % पूर्व की ओर बहने वाली नदियों से उपलब्ध होता है, एवं शेष जल की उपलब्धी पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों से मिलती हैं। यहाँ पर नदियों से उनकी सहायक नदियों द्वारा पानी राज्य के बाहर जाता है।

नदियाँ - कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, उत्तर पन्नार, दक्षिण पन्नार, पन्नार।

5.8 खनिज

खनिज - कर्नाटक राज्य खनिज संपदा से परिपूर्ण है, जो कि सामान्यतः एक सा विस्तृत है। यहाँ पर देश का सबसे पुराना ज्यूलॉजिकल सर्वे विभाग है, जो कि 1880 में स्थापित किया गया था। राज्य में विस्तृत खनिज संपदा में विशेष रूप से एसबेस्टस, बाक्ससाइट, क्रोमाइट, डोलोमाइट, सोना, लोह, अयस्क, चॉक, मिट्टी, चूने का पत्थर, मैग्नेसाइट, मैग्नीज, गेरु, क्वाइज और स्लीका की रेत पाई जाती है।

कर्नाटक राज्य फैरासाइड का एक मात्र उत्पादक है यहाँ पर 84% सोना, 63% मोल्ड बनाने की रेत और फ्यूजसाइट क्वारजीट 87% पाया जाता है। कोलार की सोना-खानें भारत में एकमात्र उत्पादक क्षेत्र है।

कर्नाटक राज्य ऐसा राज्य है जहाँ सभी प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं, यह राज्य खनिज पदार्थों का भंडार है एवं कौन सा खनिज कर्नाटक के किस भाग में पाया जाता है निम्नलिखित है -

चूना पत्थर - बीजापुर, गुलबर्गा, बेलगाम, शिमोगा, चित्रदुर्गा, तुमकूर, मैसूर आदि स्थानों पर चूना पत्थर पाया जाता है।

सोना - गुलबर्गा, रायचूर, कोलार, बंगारपेठ में सोना पाया जाता है।

लोहा - बीजापुर, धारवाड, उत्तर कन्नाड, बेल्लारी, चित्रदुर्गा, चिकमंगलूर, तुमकूर आदि स्थानों पर लोहा पाया जाता है।

क्रोमाइट - यह खनिज पदार्थ हसन में पाया जाता है।

बॉक्साइट - बेलगाम, दावणगिरी, चिकमंगलूर दक्षिण कन्नाड आदि स्थानों पर बॉक्साइट पाया जाता है।

काला पत्थर - बेंगलूर, मैसूर में पाया जाता है।

KARNATAKA (Mineral Map)

ARABIAN SEA

MAHARASHTRA

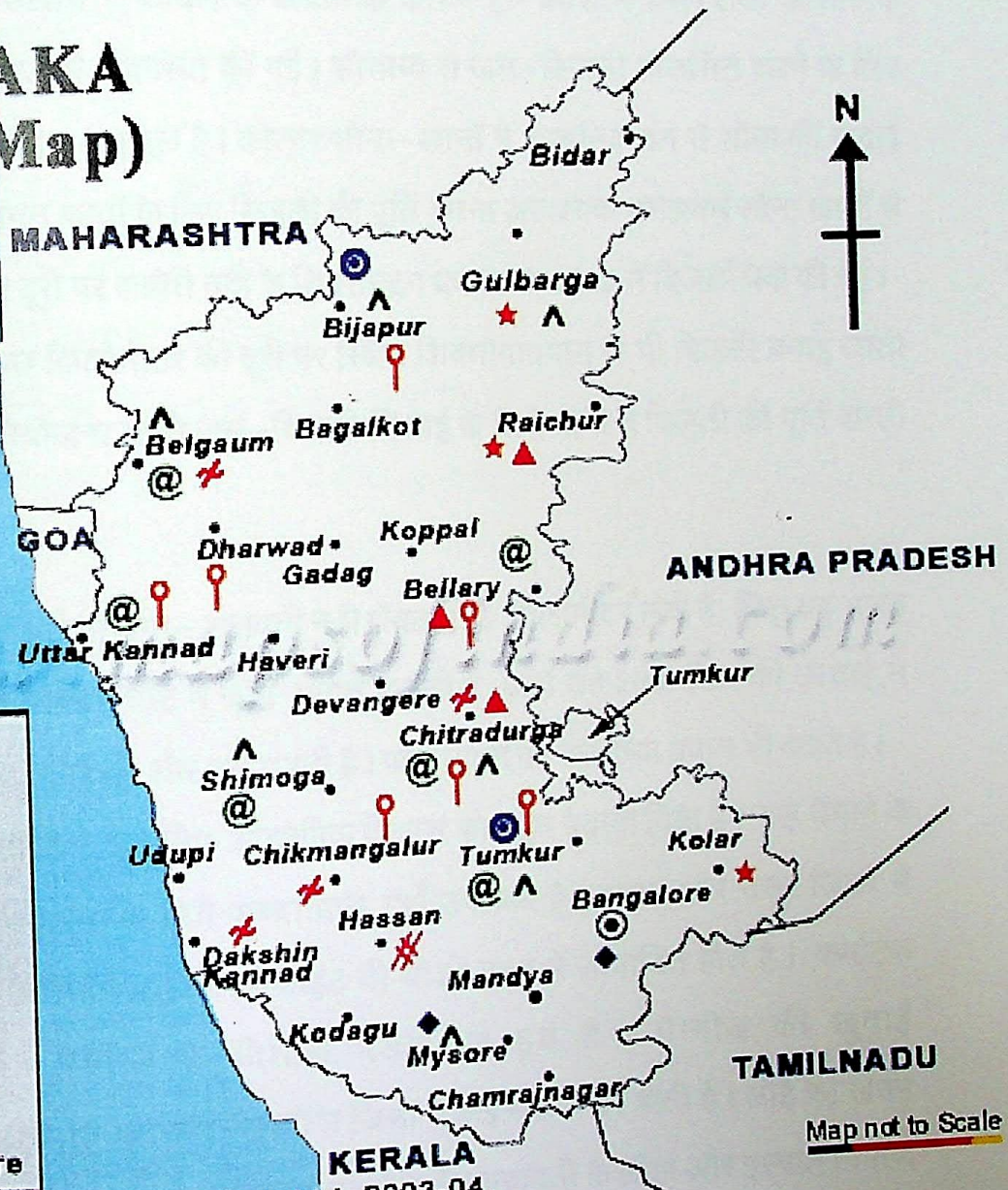


ANDHRA PRADESH

- ▲ Lime Stone
- ★ Gold
- ⌚ Iron Ore
- ✖ Chromite
- ✖ Bauxite
- ◆ Black Granite
- ▲ Pink Granite
- ⊙ Dolomite
- @ Manganese Ore

Copyright © Compare Infobase Pvt. Ltd. 2003-04.

Map not to Scale



गुलाबी पत्थर - रायचूर, बेल्लारी, दावणगिरी में गुलाबी पत्थर पाया जाता है।

डोलोमाइट - बीजापुर, तुमकूर में डोलोमाइट पाया जाता है।

मैग्नीज - बेलगाम, उत्तर कन्नाड, शिमोगा, तुमकूर, बेल्लारी, चित्रदुर्ग में मैग्नीज पाया जाता है।

कुद्रेमुख - इसे 'एशिया' का महाकाय खनन केन्द्र के नाम से जाना जाता है। यह अपने लोहे के लिये प्रसिद्ध है।

शक्ति, खनिज और उद्योग - कोयले के अभाव के कारण इस प्रदेश में घरेलू तथा औद्योगिक उपयोग के लिए जल-बिजली विकसित की गई। सौभाग्य से जल-बिजली विकसित करने के लिए इस पठार में कई स्थान बहुत अनुकूल हैं। कोलार सोना-खानों में आधुनिक ढंग से सोना की खुदाई 1882 में आरंभ हुई। खनन कार्यों के लिए बिजली की पूर्ति करना आवश्यक समझकर सोना खानों से लगभग 148 किलोमीटर दूरी पर कावेरी नदी के शिवसमुद्रम प्रपात पर 1902 में बिजली पैदा की गई।

शिवसमुद्रम से कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित शिवमोगाप्रपात से भी बिजली बनाई जाती है, भद्राजल बिजली परियोजना से भी जल-बिजली सिंचाई के लिये पानी व बिजली की पूर्ति करती है।

शरावती जल-बिजली परियोजना - शरावती नदी केवल 120 किलोमीटर लंबी है, किंतु यह भारत का सबसे ऊंचा प्रपात पश्चिम घाट में जोग प्रपात बनाती है, जहाँ यह 289 मीटर की ऊंचाई से कूदती है और फिर अरब सागर की ओर चल पड़ती है। जोग प्रपात को गरसोप्पा प्रपात भी कहते हैं।

सरस्ती बिजली प्राप्ति ने आधुनिक औद्योगिक विकास को बहुत बढ़ावा दिया है। बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योगों की स्थापना के लिये कच्चा माल यहाँ उपलब्ध है। हासन और मैसूर जिलों में क्रोमाइट खोदा जाता है मैग्नेसाइट और ग्रेफाइट भी थोड़ी मात्रा में उत्पादित होते हैं। कर्नाटक राज्य में लोहा और मैग्नीज के विशाल भंडार भरे हुये हैं। मैग्नीज की खुदाई संडूर, चित्रदुर्ग, चिकमंगलूर, तुमकूर और शिवमोगा जिलों में कई स्थानों पर होती है। लोहे का खनन बाबा बूदन पहाड़ियों में स्थित केम्पनगुंडी स्थान पर होता है। भद्रावती के लोहा और इस्पात निर्माण केन्द्र को लोहे की पूर्ति केम्पनगुंडी खानों से होती है। लोहे के बहुत विशाल भंडार चिकमंगलूर जिले की कुन्द्रेमुख पहाड़ी में मिले हैं, यह पहाड़ी पश्चिम घाट में स्थित है।

शिव समुद्रम - शिवसमुद्रम में कावेरी दो धाराओं में विभक्त हो जाती है, और दोनों धाराएँ दो सौ फीट नीचे गिरती है। यहाँ से डेढ़ किमी. दूर एशिया का पहला जल-विद्युत संयंत्र है, जिसे 1905 में स्थापित किया गया।

जोग फाल्स - यह भारत का सबसे ऊँचाई वाला जल-प्रपात है। यह कर्नाटक के पश्चिम में स्थित है। चट्टानी भूमि पर बहती हुई सरस्वती नदी 292 मीटर सीधे गहरे खड्डे में चार धाराओं में विभक्त होकर छलांक लगाती हुई गिरती है। यहाँ महात्मा गांधी जल-विद्युत ऊर्जा केन्द्र है।

5.9 उद्योग

औद्योगिक विकास के केन्द्र - भद्रावती विश्वेश्वरैया लोहा और इस्पात लि. कारखाने के लिये, जिसका पहला नाम मैसूर लोहा और इस्पात लिमिटेड था, प्रसिद्ध है। यह कारखाना भद्रा नदी के बाँये किनारे पर स्थित है, इसकी पानी की पूर्ति भद्रा नदी से होती है, और बिजली की पूर्ति जोग-प्रपात पर स्थित जल-विद्युत संयंत्र से की जाती है। यहाँ विशेष इस्पात की एक किस्म और तैयार माल जैसे रेल्वे स्लीपर, लोहे की छड़े, ढलवां लोहे के पाइप और सूती वस्त्रोद्योगों के लिये छल्ले बनते हैं। भद्रावती में सीमेंट की फैक्ट्री, लकड़ी-आसवान संयंत्र, कागज का कारखाना और रसायन उद्योग है।

भद्रावती के इस्पात के कारखाने के अतिरिक्त औजार बनाने के कारखाने यहाँ पर हैं। रेशम का उद्योग इस प्रदेश का प्राचीन धंधा है। देश का 75% रेशम यहीं पर पैदा होता है। ये वस्त्र सारे संसार में लोकप्रिय हैं। यहाँ का दूसरा प्रसिद्ध धंधा है 'चंदन'। रोम तक यहाँ से चंदन जाता था। आज भी चंदन से विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। लकड़ी और हाथी दाँत की बनी हुई वस्तुएँ देश-विदेश में बहुत लोकप्रिय हैं। वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त दिया सलाई और कागज भी यहाँ तैयार होते हैं।

बैंगलूर में विज्ञान संस्थान, तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्र, विमान, टेलीफोन और मशीनी औजार के कारखाने हैं, जहाँ विशाल 'मारुत' और शक्तिशाली 'जेट' विमान बनते हैं। घड़ियाँ भी यहीं पर तैयार होती हैं।

औद्योगिक स्त्रोतों से कर्नाटक को आर्थिक लाभ मिलता है। मशीनों के पुर्जे, एयरक्राफ्ट, इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद, संचार के साधन के उत्पादन किये जाते हैं। महत्वपूर्ण पब्लिक सेक्टर की इकाईयाँ, हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, भारत अर्थ मूवर्स, भारत इलेक्ट्रानिक्स, भारत हेवी इलेक्ट्रीकल्स, भारतीय टेलिफोन उद्योग और भारतीय एरोनॉटिकल लैबोरेटरी है। बैंगलूर में शराब के कारखाने भी स्थित हैं।



रमणगंगा- बेंगलूर से 48 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह देश का सबसे बड़ा सिल्क उत्पादन का केंद्र है और मिट्टी के उत्कृष्ट बर्तनों के लिए जाना जाता है।

हेस्सारघट्टा झील :- यह स्थान बेंगलूर से 27 कि.मी. की दूरी पर है। यह एक हजार एकड़ से ज्यादा क्षेत्र में फैली हुई कृत्रिम झील है। यहाँ पशु प्रजनन केंद्र और कुक्कुट पालन केंद्र की स्थापना की गई है।

मेलकोट- बेंगलूर से 50 कि.मी. की दूरी पर यह स्थान है। यह स्थान हाथकरघे के वस्त्रों के लिए मशहूर है।

डण्डेली:- यह स्थान कारवार से 40 कि.मी. की दूरी पर है। यह घने वनों से घिरा औद्योगिक नगर है। इसका वनक्षेत्र प्लाई और सागौन की लकड़ी के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ खनिज भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लौह चुम्बकीय कारखाने भी अधिक हैं।

5.10 कर्नाटक प्रांत के प्रमुख नगर -

बेंगलूर :- यह कर्नाटक राज्य की राजधानी है। इसे सिलिकॉन सिटी भी कहा जाता है। यह भारत का पांचवा सबसे बड़ा शहर है, ऐतिहासिक दृष्टि से बेंगलूर कर्नाटक का विशिष्ट पर्यटन स्थल भी है। इसे उद्योगों का शहर भी कहा जाता है, यह भारत की स्वच्छ, साफ, गंदगी रहित शहरों में से एक है। यह नगर हैदर अली और टीपू सुल्तान की कर्मस्थली रही है। कर्नाटक राज्य में इतना बड़ा शहर और कोई नहीं है। बेंगलूर कर्नाटक राज्य की राजधानी और शिक्षा का केन्द्र ही नहीं है बल्कि प्रमुख औद्योगिक केन्द्र भी है। इस शहर के उद्योग विविध प्रकार के हैं और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें इन उद्योगों को चलाती हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी व इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में बेंगलूर को 'सायबर राजधानी' कहा जाता है। यह देश का एक प्रमुख औद्योगिक शहर है। यहाँ के प्रमुख उद्योगों में विमान, टेलीफोन और इलेक्ट्रानिक्स के उद्योग शामिल हैं।

बीजापुर :- बेंगलूर के उत्तर-पश्चिम में 530 कि.मी. दूर मध्ययुगीन कसील वाला मुस्लिम नगर बीजापुर है। मीनारें और गुंबद इस नगर की अपनी विशिष्टता हैं। इसके संस्थापकों ने इसे विजयपुर या बीजापुर नाम दिया। यह बादशाहों की राजधानी थी। आदिलशाही वंशजों के काल में 10वीं और 11 वीं सदियों में यहाँ भवन निर्माण तेज चल रही। आदिलशाहियों ने भवन निर्माण को किस कदर प्रोत्साहन दिया उसका अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि बीजापुर में ही करीब 50 मस्जिदें, 20 से ज्यादा मकबरें एवं महल स्थित हैं। जुम्मा मस्जिद यह 1557 और 1686 के बीच बनी थी और

नमाज भी अकीदत के लिये आज भी इस्तेमाल होता है। इसे हिन्दुस्तान में बनी पहली मस्जिद माना जाता है। यहाँ स्वर्ण अक्षरों वाली कुरान की एक अत्यंत सुंदर प्रतिलिपी है।

कारवार - बेंगलोर से 520 कि.मी. उत्तर-पश्चिम में स्थित कारवार का समुद्र तट देश के सर्वाधिक सुंदर तटों में से एक है। कहा जाता है कि इसकी सुंदरता से अभिभूत होकर ही गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपना पहला नाटक लिखने की प्रेरणा मिली। कालिंदी नदी नगर की बीच में प्रवाहित होते हुये अरब महासागर में विलीन हो जाती है। कारवार मलमल के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ मलमल उद्योग की शुरुआत 1638 में सर विलियम कानेटन ने यहाँ एक फैक्ट्री खोलकर की थी।

मैंगलोर - नेत्रवती और गुरपुर का नदियों के संगम से निर्मित पार्श्व जलधारा के पास मैंगलोर शहर बना हुआ है। यह बेंगलोर से 357 कि.मी. दूर है। नए बंदरगाह बन जाने से इस नगर का महत्व बढ़ गया है।

मैसूर - कर्नाटक राज्य में स्थित मैसूर 'उद्यानों का नगर' के नाम से प्रसिद्ध है, यह नगर प्राकृतिक सौन्दर्य व ऐतिहासिक धरोहर का अद्भुत सामंजस्य प्रस्तुत करता है। मैसूर को "कर्नाटक का रत्न" भी कहा जाता है। भारत के दक्षिणी अंचल में दूर तक फैले पहाड़ों और जंगलों के बीच स्थित कर्नाटक के इस रत्न की खूबसूरती व प्रसिद्धी दूर-दूर तक फैली हैं, सदियों से यह नगर धर्म, शिक्षा व संस्कृति के प्रचार का केन्द्र बिंदु रहा है।

इस नगर का नाम मैसूर, महिषासुर के नाम पर पड़ा है, मैसूर की पृष्ठभूमि में स्थित चामुंडा पर्वत पर्वत इस नगर को अद्वितीय भावभंगिमा प्रदान करता है। प्राचीन काल में यहाँ चोल, होयसाल तथा विजयनगर के राजाओं का शासन रहा। इस नगर को टीपू सुल्तान और हैदरअली की कर्मभूमि होने का गौरव भी प्राप्त है, इसलिए यहाँ आज भी प्राचीन मध्य और आधुनिक भारत की संस्कृति और सभ्यता का एक अनोखा मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। मैसूर को 'चंदन लकड़ी' का शहर भी कहा जाता है।

5.11 धर्म - भारत के अधिकतर राज्यों यहाँ की जनसंख्या प्रधानतया हिन्दु है जैसे - शैव, वैष्णव और वीरा शैव समर्थक हैं, जो अधिक संख्या में हैं। यहाँ सभी धर्म समर्थकों का प्रतिनिधित्व है, तथा यहाँ की जनता में प्रत्येक क्षेत्र में मित्रता व पारस्परिक सहयोग की भावना कूट-कूट कर भरी है।

मुसलमान और इसाई धर्म के लोग भी कर्नाटक में पर्याप्त मात्रा में हैं। यद्यपि जैन धर्म ने कर्नाटक में गहरी जड़ें जमायी हैं। जैनों की जनसंख्या भी बड़ी मात्रा में है तथा मुख्यतः व्यापार के क्षेत्र में अपना स्थान बना लिया है।

इस राज्य में पारसी भी वास करते हैं, कन्नड, भाषी लोगों के खून में धार्मिक सहिष्णुता बहुत अधिक है और इसलिए यहाँ अलग-अलग धर्मों में या अनुयायियों में कभी संघर्ष नहीं होना यह असाधारण बात है।

इस प्रदेश में अनेक धर्मों का समान रूप से प्रचार हुआ है। मध्वाचार्य इसी प्रदेश में पैदा हुए थे। शंकर और रामानुज ने यही प्रचार किया था। 12 वीं शताब्दी में बसवण्णा ने वीर शैव मठ की स्थापना करके इस प्रदेश को एक नई संस्कृति दी, उसके द्वारा एक ऐसे सम्प्रदाय की रचना हुई, जिसमें स्त्री पुरुष, ऊँच-नीच, छूत-अछूत, धनी, निर्धन और छोटे-बड़े का भेद मिट गया। बसवण्णा ने एक ओर हिन्दु धर्म के मूल सिद्धांतों की रक्षा की दूसरी ओर उसमें जातिभेद आदि जो कुसंस्कार आ गए थे, उनको समाप्त करने का प्रयत्न किया।

5.12 भाषा एवं साहित्य - इस प्रदेश की भाषा कन्नड है। शिला लेखों से पता लगता है कि यह पाँचवीं शताब्दी में प्रचलित थी। जैन, लिंगायत और वैष्णव सभी धर्मों के प्रमुख प्रचारकों ने इसी भाषा के माध्यम से अपने-अपने धर्मों का प्रचार किया है। इस भाषा के सर्वोत्तम और सबसे पहले कवि थे 'श्री पम्प'। उन्होंने दसवीं शताब्दी में "आदि पुराण" और "विक्रमार्जुन विजय" या "पम्प भारत" की रचना की थी। अत्लभ प्रभु, चन्नबसवा, अवकमहादेवी, हरिहर राघवांक और षडक्षरी ये छः महाकवि बहुत प्रसिद्ध हुये हैं। विजयनगर साम्राज्य के समय कन्नड साहित्य का खूब विकास हुआ।

'पुरंदर दास' और कनक दास के गीत आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। कुमार व्यास, रत्नकरविण और सर्वज्ञ दूसरे प्रसिद्ध कवि हैं। कुमार व्यास लिखित "भारत" कन्नड भाषा का क्लासिकल ग्रंथ माना जाता है। 18वीं शताब्दी में लोक नायक और 19 वीं शताब्दी में गीतों का जन्म हुआ। वर्तमान युग में कवियों में मास्ती और राजरत्नम, कथा साहित्य में कारंत, कृष्णराव, आनंदकंद नाटककारों में कैलाशम्, आधरंगाचार्य (श्री रंग) और गिरीश कर्नाड के प्रयास प्रशंसनीय हैं। कर्नाटक की कहानी "गागर में सागर" के समान है। कवि पम्प के शब्दों में यहाँ के लोग जानते हैं, "क्या त्याग है और क्या भोग है ? और कवि 'कुमार व्यास के शब्दों में', इस प्रदेश के

राजा, दार्शनिक, कवि, राजनीतिज्ञ, कोई भी हो, हर किसी को देने के लिये कुछ न कुछ अवश्य है। संस्कृति- भारत के संयुक्त संस्कृति में, कर्नाटक का योगदान, भारत के अन्य किसी क्षेत्र से कतई कम नहीं है, दरअसल कई अलग-अलग जगहों से कर्नाटक का योगदान बहुत अधिक श्रेष्ठ है। विशेषकर कला, संगीत धर्म तथा दर्शनशास्त्र में।

5.13 कर्नाटक संगीत - दक्षिण के कर्नाटक संगीत का नामकरण इसी प्रदेश के नाम के आधार पर हुआ हिन्दुस्तानी संगीत का भी यह बड़ा केन्द्र रहा है। कर्नाटक संगीत के महत्वपूर्ण राग, जिनमें कल्याणी और खंबोज जैसे मुख्य राग भी सम्मिलित हैं, कथकली संगीत में आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाए जाते हैं। यहीं पर गौहर कर्नाटकी, कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन मैसूर, बसवराज राजगुरु, भीमसेन जोशी, गंगूबाई हांगल जैसे गायक हुये।

5.14 वेशभूषा - कर्नाटक में पुरुष अधिकांश धोती पहनते हैं। विशेष अवसर पर लम्बे काले कोट और पगड़ी यहाँ की विशेषता है। कुर्ग के लोग भी पगड़ी पहनते हैं, पर यह कुछ और तरह की होती है। इसी प्रकार कर्नाटक की ब्राम्हण स्त्रियाँ अधिकतर महाराष्ट्रीयन ढंग की साड़ियाँ पहनती हैं। लेकिन कुर्ग की नारियों के साड़ी पहनने का ढंग एकदम अलग है। केसर या हल्दी मल कर रंग को पीला करने की रीति यहाँ भी है। अपने घने लंबे बालों का जूड़ा बहुत आकर्षक ढंग से बनाती हैं। वेणी को पूरी तरह फूलों से गूँथे बिना घर से बाहर नहीं निकलती।

भोजन :- कर्नाटक का मुख्य भोजन चावल है, एवं चावल से बने हुए पदार्थों का सेवन ज्यादा करते हैं।

5.15 त्यौहार:- इस प्रदेश के लोग शेष भारत की तरह अपने त्यौहार बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। दशहरा जितने उल्लास के साथ कर्नाटक राज्य में मनाया जाता है, उतना भारत में और कहीं नहीं। विजयादशमी के दिन यहाँ एक बड़ा जुलूस निकाला जाता है। यह जुलूस अपनी विशालता के कारण बहुत ही प्रभावशाली होता है, दस दिन तक बिजली की रोशनी से जगमगाता रहता है। छठे दिन पुस्तक पूजा आरम्भ होती है और नवमी को इसका विसर्जन होता है। यह विद्या आरंभ का दिन है। विजयादशमी के दिन सभी वृक्ष की पूजा भी होती है। जनता का यह पर्व अब राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाता है। वैशाखी (नव-वर्ष) को कर्नाटक में युगादि कहते हैं।

1. ...
2. ...
3. ...
4. ...

...
...
...
...

...
...
...
...
...

...
...

...
...
...
...
...
...
...
...
...
...

5.16 कर्नाटक की स्थापत्य कला :- स्थापत्य कला के अनेक व अनुपम उदा. इसी प्रदेश में मिलते हैं। कर्नाटक का कला एवं स्थापत्य में योगदान ना केवल श्रेष्ठ/सराहनीय है बल्कि मौलिक भी है, स्थापत्य में कम से कम चार पद्धतियाँ बहुत आसानी से समझी जा सकती हैं। जो कि कदम्ब, गंगा और जैन, चालुक्य, होयसाल आदि हैं। चालुक्य पद्धति द्रविड़ियन पद्धति का ही अगला चरण है, परंतु होयसाल पद्धति स्थापत्य के क्षेत्र में कर्नाटक का मौलिक योगदान है। कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में चालुक्यों का योगदान शानदार रहा। चालुक्य राजाओं के संरक्षण में कलाकारों ने कई अभिनव प्रयोग किए। चालुक्य शैली नाम से प्रसिद्ध विशिष्ट कला शैली इस युग की देन है। इस काल में बिहार शैली पर शैल उत्कृत तथा संरचनात्मक दोनों ही प्रकार के मंदिर बनाए गए। चालुक्यों के संरक्षण में नागर, वासर तथा द्रविड़ तीनों शैलियों में मंदिरों का निर्माण किया गया। ऐसा लगता है कि प्रारंभ में गुप्त वास्तु तथा शिल्प इनकी अनुप्रेरक बनी पर बाद में पल्लवों के संपर्क में आने पर ये द्रविड़ शैली के प्रभाव में आ गए। चालुक्य के संरक्षण में ऐहोले वास्तुकला का एक प्रधान केन्द्र था। चालुक्य पद्धति उत्तरी कर्नाटक के बादामी, ऐहोले, पटाडक्कल, इट्टिगी के मंदिरों में भी देखी जा सकती है, इस पद्धति का लघु रूप सोमनाथपुर में भी देखी जा सकता है। बेलूर और हलेविड के मंदिरों को देखकर स्थापत्य कला विशेषज्ञ 'फर्गुसन' ने कहा था, "भारत में ऐसे बहुत से स्मारक हैं, जो कला की दृष्टि से संसार भर में अनुपम हैं, किंतु बेलूर के मंदिर कल्पना की उड़ान, भावों की गहराई और निर्माण की दक्षता में सर्वश्रेष्ठ हैं।

श्रावणबेलगोला में स्थित गोमटेश्वर की विशालकाय मूर्ति उल्लेखनीय है। मैसूर से 62 मील दूर चन्द्रगिरी और इन्द्रगिरि पहाड़ियों के बीच में श्रावणबेलगोला के स्थान विश्व की यह सबसे बड़ी मूर्ति एक ही पत्थर को तराशकर बनाई गई है, यह 57 फुट ऊँची मूर्ति इतनी भव्य और प्रभावशाली है कि केवल मिस्र में ही इसकी तुलना की मूर्ति मिल सकती है, जैनियों के लिए यह स्थान बहुत बड़ा तीर्थ है। बादामी व आयहोल के गुफा मंदिर तथा हम्पी की अचंभित कर देने वाली भवन निर्माण शैली आज भी कर्नाटक की भव्यता की याद दिलाती है।

मैसूर के राजमहल, मुगल और विदेशी कला के अद्भुत सम्मिश्रण का प्रतीक है और बीजापुर के मकबरे का गोल गुम्बद विश्व का एक आश्चर्य है। टीपू सुल्तान के महल और किले और महिषासुर की प्रसिद्ध मूर्ति भी उल्लेखनीय हैं।

1. मैसूर का राजमहल और वास्तुशिल्प - मैसूर राजमहल का निर्माण कार्य 1912 में पूरा हुआ। इसके संबंध में दो अंश विशेष रूप से उल्लेखनीय बने हैं। जहाँ तक हो सका, स्थानीय रूप से

उपलब्ध सामग्रियों का ही उपयोग किया गया है, तथा निर्माण में दाह रोधक विधानों को लागू किया गया है।

इस महल के मुख्य इमारत को बड़े-बड़े भूरे रंग के पत्थरों से बना दिया गया है, यह तिमंजिली इमारत है, और पाँच मंजिलों की ऊँचाई के इसके गोपुर में जो गुंबज बनाया गया है, उसको सुल्हरा लेप दिया है। उसकी चोटी में विराजते सुनहरे ध्वज तक की ऊँचाई, जमीन से लेकर 145 फुट है। इस इमारत के अग्रभाग में दो छोटे छोटे कमान भी हैं। ऊँचे स्तंभों से इनको आधार मिला है केन्द्रीय कमान के ऊपर पागार के रूप में गजलक्ष्मी की मूर्ति बना दी गई है।

राजमहल दीवारों से आवृत्त खुले मैदान या आंगन के बीच बसा हुआ है, जिसे 'तोदिट' कहा जाता है।

इस आंगन के पूर्व में, भूतल पर आकर्षक रूप में हाथी का महाद्वार बना हुआ है।

उसके दक्षिण दिशा में बहुत ही सुंदर "कल्याण मण्डप" बना है पहली मंजिल में पूर्व की ओर मुँह करता हुआ दरबार का वृहत् सभागण बना है जिसे 'दरबार ए आम' कहा गया है। इसकी लंबाई 47.25 मीटर (या 155 फुट) है और चौड़ाई 12.80 मीटर (या 42 फुट) है।

इसी मंजिल पर, दक्षिण की ओर, निजी दरबार का सभागण याने 'दिवान-ए-खास' बना है, जिसे 'अंबा विलास' कहा जाता है, इसे सुंदर रूप से सजाया गया है।

दूसरी मंजिल पर कई कमरे हैं, और दोनों पार्श्वों में बड़े सभागण या बैठक खाने बने हुए हैं। इस अष्टभुजीय आंगन को रंग-बिरंगे चित्रों से सजाया गया है। इसके छत को रंगीन काँच से ढका गया है। गुंबज को, बीच में त्रिकोणीय लोहे के खंभों का सहारा दिया गया है। रंगीन काँच के छत से तथा मोसाइक फर्श से सजाए गए इस आँगन के प्रमुख आकर्षक की वस्तु है वहाँ का सुंदर मयूर, इस कारण इसे 'मयूर आँगन' भी कहा गया है। मैसूर का राजमहल वास्तुशिल्प का बहुत अच्छा उदा. है।

बृंदावन गार्डन - खूबसूरत उद्यानों व अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध मैसूर नगरी की आभा में एक और कड़ी जोड़ता है यह है - बृंदावन गार्डन। यह उद्यान मैसूर से 16 कि.मी. दूर कृष्ण राज सागर बांध के साथ स्थित है, यह गार्डन 20 एकड़ के विशाल क्षेत्र में फैला है। गार्डन के मुख्य द्वार पर निर्मल जल की मोटी धारा बहती है, जो झरना होने का भ्रम पैदा करती है, यह धारा उद्यान में बनी कृत्रिम नहर में गिरती है। गार्डन में कई छोटे-छोटे जलाशयों और फव्वारों की व्यवस्था है। जिनका सौंदर्य रात्रि में रंग-बिरंगे प्रकाश में अप्रतिम लगता है। रंग-बिरंगे फूलों की बहार, कलापूर्ण

ढंग से कांटे-छांटे गये पौधे और झाड़ियाँ मखमली धास के मैदान, मंत्र मुग्ध कर देते हैं। इसका मुख्य द्वार दक्षिण दिशा में है, एवं दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर ढलान है, इसका दक्षिणी भाग बहुत ऊँचाई पर है, एवं उत्तर दिशा की ओर निम्न होता जाता है। बांध के पानी का बहाव पश्चिम से पूर्व की ओर है। जो वास्तु की दृष्टि से उत्तम है, एवं प्रसिद्ध है।

कृष्ण राज सागर बांध - कावेरी तथा उसकी दो सहायक नदियों के संगम पर कृष्ण राज सागर नामक विशाल बांध है, यह बांध स्थापत्य कला का बेजोड़ नमूना है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह कि इसके निर्माण में सीमेंट का जरा भी उपयोग नहीं किया हुआ है सारा बांध केवल पत्थरों से निर्मित है। यह बांध 2600 मीटर लंबा है, इसे देखकर झील का आभास होता है। इस सागर-बांध का निर्माण डॉ. एम. विश्वेश्वरैया ने करवाया था। इसका निर्माण कार्य सन् 1911 ई. में आरंभ हुआ। 12 वर्ष तक सतत निर्माण कार्य चलते रहने के बाद सन् 1923 ई. में संपन्न हुआ। कावेरी, कनका तथा हेमवती ये तीनों नदियों इस बांध को पानी से भरती रहती हैं।

टीपू-सुल्तान-महल-बैंगलौर :- यह इमारत आज भी पुराने किले में मौजूद है। इसका मुख्य द्वार उत्तर दिशा की ओर है। दूसरा द्वार उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा में है। यहाँ एक सुविशाल प्रांगण था, जो मूलतः प्राकपश्चिम दिशाओं की ओर एक फव्वारे समेत शोभायमान बगीचों का दुमंजिला भवन है। यह सामने और पीछे की ओर शानदार लकड़ी की गोल झर्रियों से जुड़ा हुआ है, संपूर्ण भवन की दीवारें और छत मुल्लमेदार रंगों से सजाए हुए थे। यह 80 प्रतिशत लकड़ी (सागौन) का है, इसमें 160 लकड़ी के खंभे हैं। भवन के ऊपरी तल के पूर्वी और पश्चिमी पक्षेपी छज्जों पर सुल्तान का सिंहासन विराजमान था। यहीं से सुल्तान राज-काज का संचालन करते थे। बगल में 'जनानखाना' निचली सतह पर था पर पूरी तरह से अलंकृत था। भवन सामने लकड़ी के संदर्भ पर महल की विशेषता 'आनंद निलय' और 'जन्नत के लिए जलन' के रूप में अंकित है। इसके उत्तर और पूर्व में उद्यान है। गर्मियों में टीपू सुल्तान इस महल में रहता था।

इंडियन-इंस्टीट्यूट-ऑफ साइंस सेंटर-यह संस्थान टाटा द्वारा स्थापित किया गया। यह संस्थान भारत के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों का शिक्षण संस्थान रहा है। नोबल पुरस्कार प्राप्त श्री सी.वी. रमन और अंतरिक्ष वैज्ञानिक विक्रम साराभाई उन कई विद्वानों में से एक हैं, जिन्होंने अपने प्रशंसनीय शोध कार्य यहाँ से किए।

इसकी शानदार ईमारत केन्द्र में चतुर्भुजी खुले मैदान के साथ, यूरोपियन शैली में बनी है, जो कि आकर्षक पारसी शैली में सजाई गई है।

लाल-बाग-उद्यान :- इस उद्यान का निर्माण 18 वीं शताब्दी में हैदर-अली व टीपू सुल्तान के द्वारा किया गया था। यह उद्यान 240 एकड़ के क्षेत्र में बनाया गया है। इस उद्यान में पेड़-पौधों व फूलों का एक अनूठा संग्रह है। इसमें सदियों पुराने अनूठा संग्रह है। इसमें सदियों पुराने वृक्ष हैं, साथ ही सुंदर फव्वारे कमल-कुण्ड, गुलाब-उद्यान एवं हिरणों का समूह भी पाया जाता है।

लाल-बाग-उद्यान में स्थित ग्लास हाऊस लंदन में स्थित क्रिस्टल-हाऊस से प्रेरित होकर सन् 1840 में बनाया गया। इस ग्लास हाऊस में फल-फूल व सब्जियों का वार्षिक प्रदर्शन किया जाता है।

वास्तुशास्त्र अनुसार इस ग्लास-हाऊस का मुख पश्चिममुखी है, मुख्य द्वार के सामने जल-कुण्ड है एवं इसके मध्य में अर्थात् ब्रम्ह स्थान में बड़ा गड्ढा है, जो एक बहुत बड़ा वास्तु दोष है, इसलिये इस स्थान पर लिये गये राजनैतिक निर्णय कभी सही नहीं निकले व तात्कालिक राजनैतिक समस्याओं का समाधान नहीं मिला एवं राजनैतिक समस्याएँ बढ़ती गईं।

हालेविडु-कर्नाटक प्रांत के दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित हासन एवं हासन के उत्तर-पश्चिम में स्थित पूर्व में समृद्ध होयसालों की यह प्राचीन राजधानी 'द्वार समुद्र' स्थित है। इस नगर की शोभा वास्तुकला के वे स्मारक हैं। जिनकी गणना अब भी हिंदु कला की श्रेष्ठकृतियों में की जाती है। होयसालेश्वर मंदिर 12वीं सदी का है और अपनी मूर्तियों की बारीकियों की समृद्धता की दृष्टि से अनुपम है। होयसालेश्वर मंदिर की दीवारें अनगिनत देवीयों पशु पक्षियों और नृत्यरत युवतियों की तराशी मूर्तियों से भरी हुई हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इस प्रचुर कला-वैभव के बीच मंदिर का कोई भी हिस्सा एक दूसरे से समान नहीं है- विविधता का अनोखा कला-संसार विस्तृत करने वाला है। इस मंदिर को पांडुकेश्वरा नाम से भी जाना जाता है। इसमें चार दरवाजे हैं दो दरवाजे पूर्व दिशा की ओर, एक उत्तर दिशा में एवं एक दक्षिण दिशा में स्थित है। दक्षिणी द्वार के ऊपर पत्थर की मूर्तियों का निर्माण बहुत ही खूबसूरती से किया गया है। प्रत्येक द्वार पार्श्व भाग में 'नटराज' व 'थांडवेश्वर' को गुप्त रूप से धारण किये हुए है। दक्षिणी द्वार पर स्थित 'द्वारपाल' इस मंदिर की खूबसूरती को बढ़ाते हैं।

बादामी - यह कर्नाटक के उत्तर-पश्चिम दिशा में स्थित है। बादामी मंदिरों में चालुक्य स्थापत्य कला अपने सर्वोत्कृष्ट पर है। बादामी 6वीं और 7वीं सदी में चालुक्यों की राजधानी थी। यह अपनी चार शिलागुफाओं के लिये प्रसिद्ध है। ये गुफाएँ बलुआ पत्थर की एक चट्टान को काटकर बनाई गई हैं। पहली गुफा में उत्कीर्ण मूर्तियों में अष्टभुजाओं के नृत्यरत शिव और दो भुजाओं वाले गणेश प्रमुख है। दूसरी गुफा में उत्कीर्ण चित्रों में वैष्णव प्रभाव है। इसमें त्रिविक्रम और भूवाशाह के पैनल है। इनकी छत पर अनंत रामन, ब्रम्हा, विष्णु शिव और अष्टदिपाल तराशें गये हैं। तीसरी गुफा सबसे बड़ी है और इसमें वैष्णव और शैव दोनों कथानकों पर आधारित चित्र पैनल है। इनमें त्रिविक्रम नरसिंह शंकराचार्य, भूपर्णा, अनंत शयन और हरिहर प्रसंगों को विविधता और जानकारी के साथ उत्कीर्ण किया गया है। चौथी जैन गुफा है और इसमें महावीर की प्रतिमा उत्कीर्ण है। यह जगह चालुक्य स्थापत्य के प्रारंभ के मंदिर समूह के लिये भी प्रसिद्ध है। एक पहाड़ी के शिखर पर बने बादामी किले में विशाल अनाज भंडार, कोषालय है।

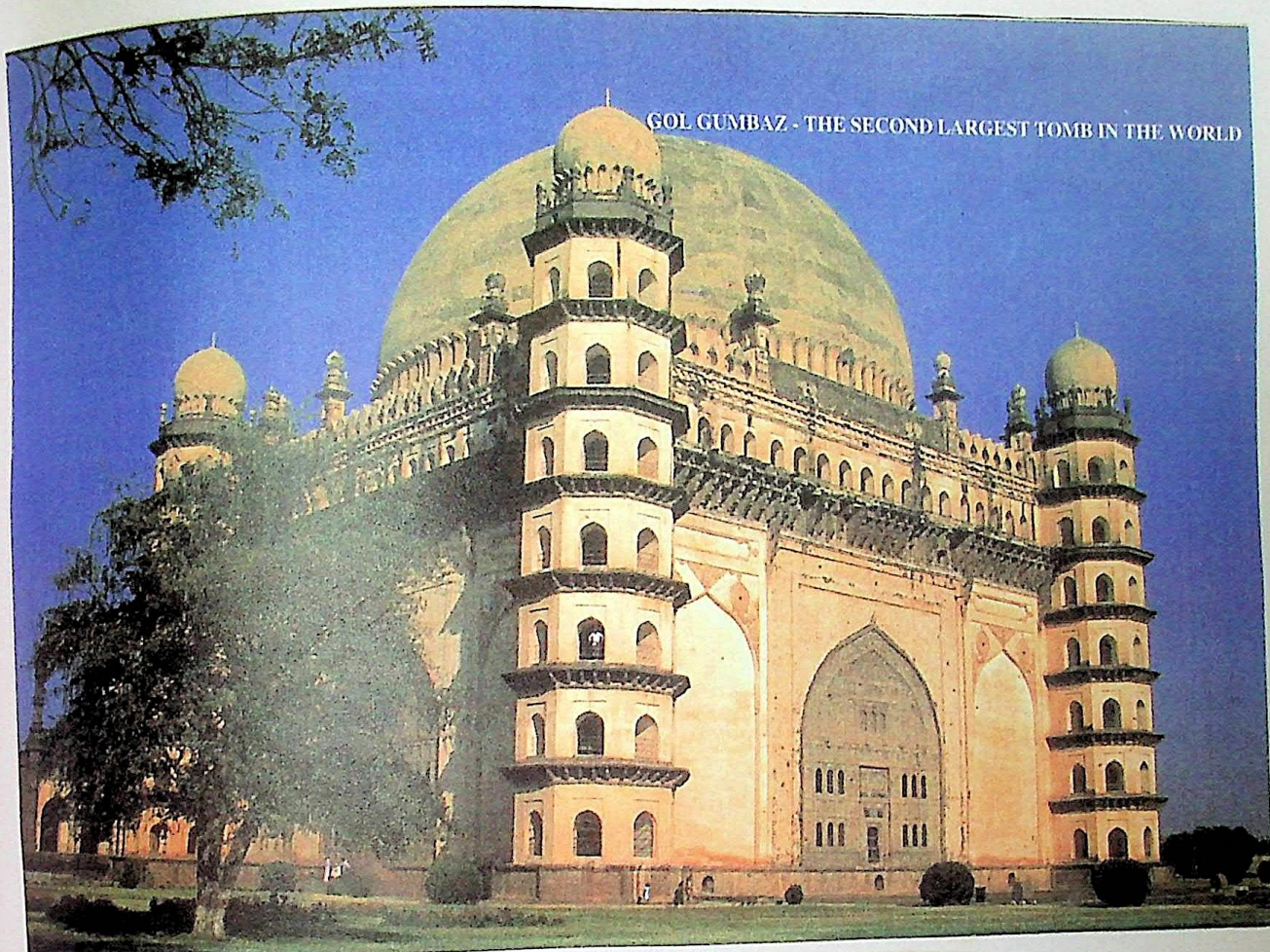
बीजापुर गोल गुम्बद - गोल गुम्बद को इस्लामी स्थापत्य में खासी अहमियत हासिल है। यह अपनी तरह का दुनिया में दूसरा सबसे बड़ा गुम्बद है। सबसे बड़ा गुम्बद रोम के शहर बेसालिका में सेन्ट पीटर का है। गोल गुम्बद का फैलाव 18,226 वर्ग फीट है। गुम्बद का आंतरिक भाग रहस्यमय ढंग से आधारहीन है अर्थात् यह बगैर खम्बों के खड़ा है। यहाँ एक 'कानाफूसी गैलरी' है, जहाँ आवाज सुनने वाले के पास नौ तरह की आवाज लौट कर आती है। इसके चारों कोनों पर चार छोटे गुम्बद बने हुए हैं। लाल पत्थर से बनी इस खूबसूरत इमारत के दरवाजे नक्काशीदार लकड़ी के हैं। इसी तरह भवन की संगीन दीवारों पर कुरआन की आयते खुदी हुई हैं। इसके अंदर मोहम्मद आदिल शाह (1626-56ईस्वी) का शानदार मकबरा है।

इस्कॉन टेम्पल - बेंगलोर में स्थित इस्कान टेम्पल हरे कृष्णा पहाड़ी की चोटी पर बनाया गया है। यह सात एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है। एवं 32 करोड़ की लागत से इसका निर्माण किया गया है। इस मंदिर का निर्माण आधुनिक तकनीक, आध्यात्मिक व धार्मिक विचारधाराओं को ध्यान में रखकर इस मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर में श्री राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

इस्कॉन टेम्पल का मुख उत्तर दिशा की ओर है। प्रवेश द्वार वायव्य दिशा में है। इसके पूर्वी व उत्तर दिशा में जल कुंड है। यह उत्तर दिशा की ओर ढलान लिए हुए है व दक्षिणी क्षेत्र ऊँचा है। यह मंदिर भारतीयों की धर्म आस्था का केन्द्र तो है ही साथ ही विदेशी नागरिक भी इस मंदिर की खूबसूरती व कृष्ण भक्ति से प्रभावित है।

यह मंदिर वास्तु की दृष्टि से तो अच्छा है ही साथ ही इसकी खूबसूरती भी लोगों को आकर्षित करती है।

-
1. प्रभाकर श्री विष्णु, एक देश एक हृदय, पृ. 139, 144
 2. पांडे डॉ. आर.एन. दक्षिण भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 77
 3. सिंह गोपाल, भारत का भूगोल, पृ. 450-451
 4. राव ए.वी. शंकर नारायणन, टेम्पल्स ऑफ कर्नाटक, पृ. 48



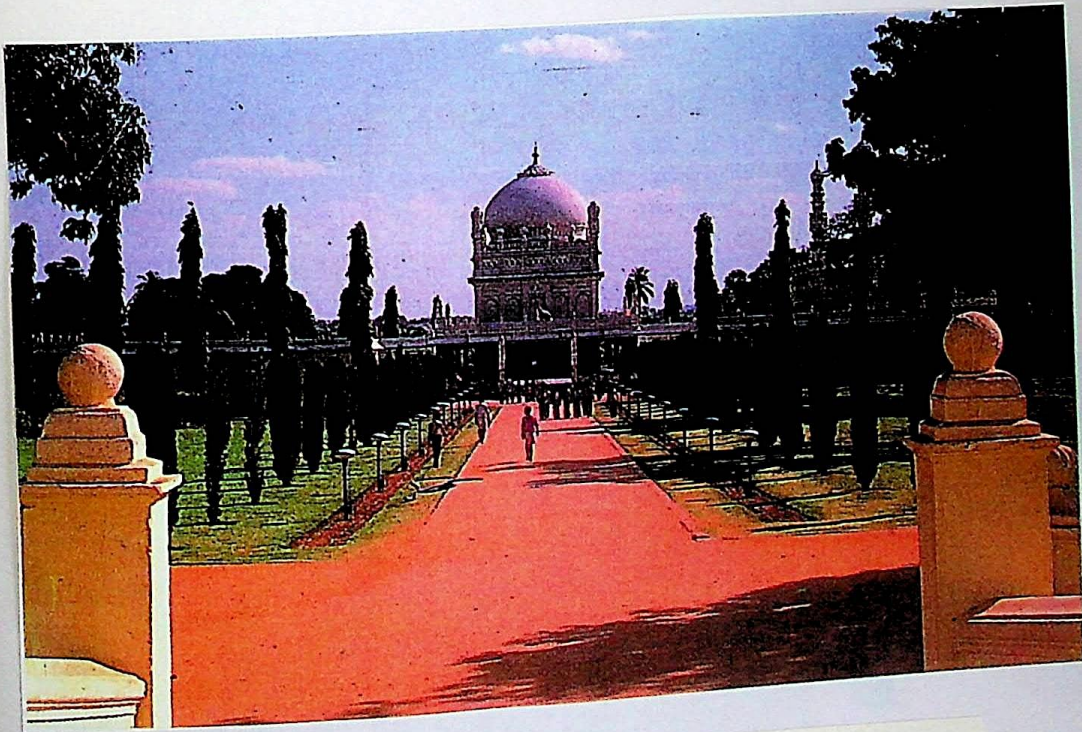
गोल - गुंबज - बीजापुर, कर्नाटक

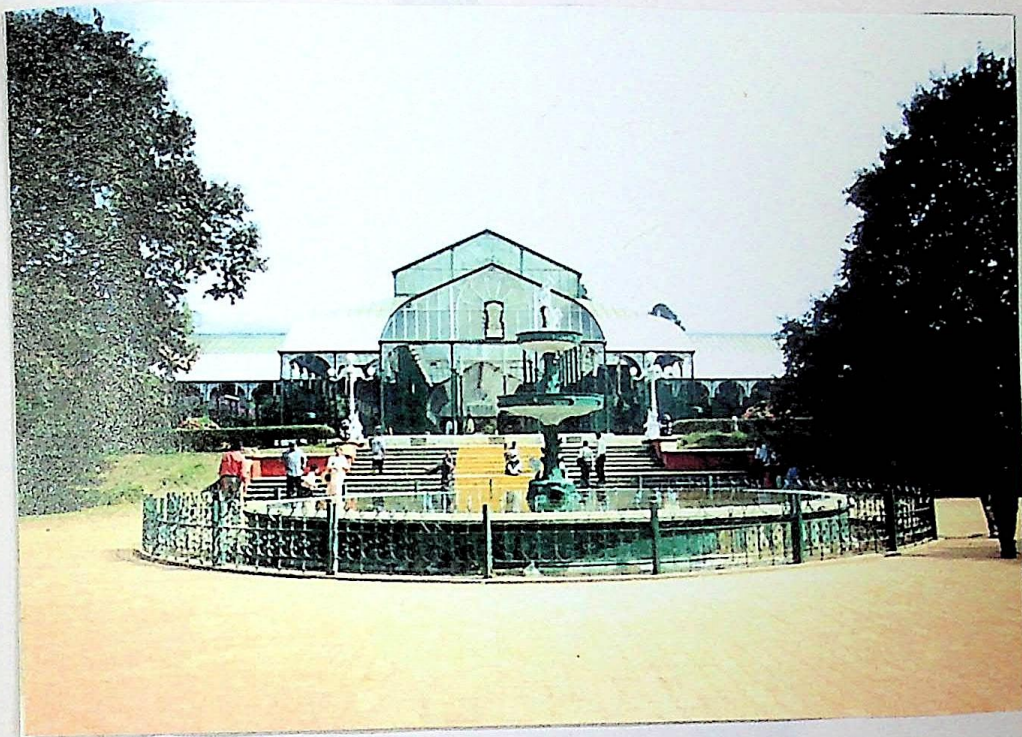


गैसूर का राजमहल
CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.
(पूर्व दिशा से दिखाई देनेवाला दृश्य)



श्री होयसालेश्वर मंदिर, हलेबिड - कर्नाटक





लाल-बाग उद्यान में स्थित ग्लास हाउस का प्रवेश द्वार पश्चिम दिशासे



लाल-बाग उद्यान में स्थित ग्लास हाउस (ब्रम्ह स्थान में गड्ढा) बेंगलौर



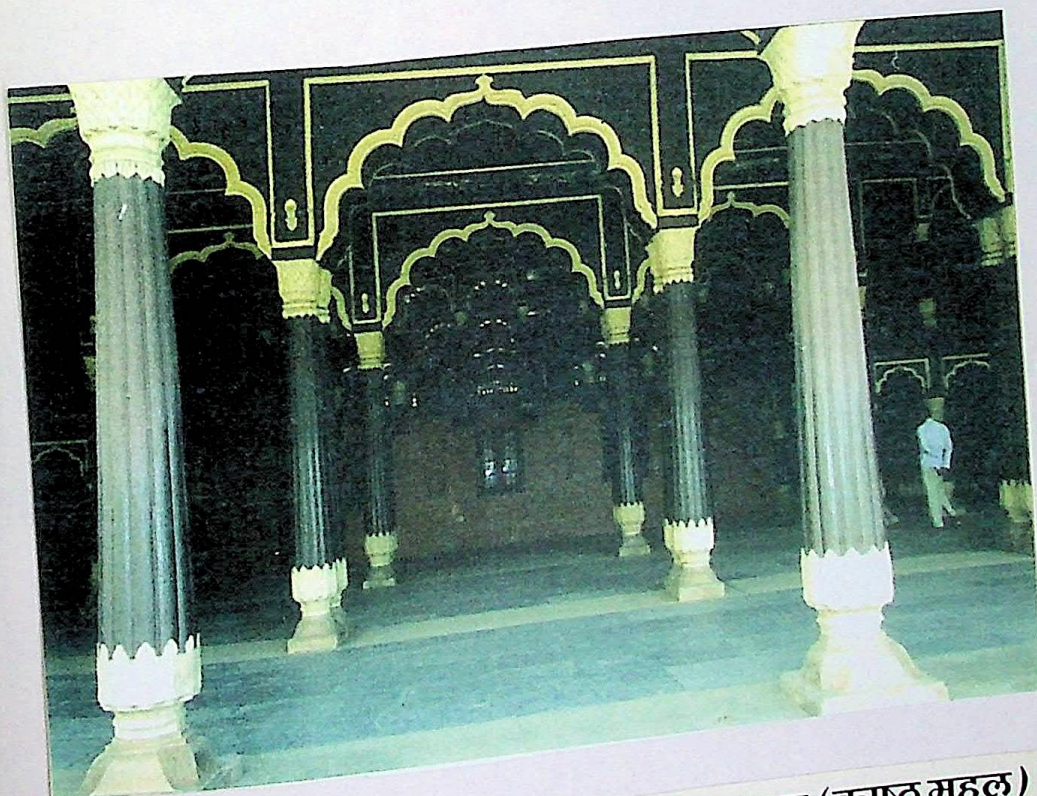
इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस बेंगलौर (यूरोपियन शैली)



वैष्णव मंदिर (MMFVV), Karoundi, Jabalpur, MP Collection.



टीपू सुल्तान का महल-बैंगलौर (बाह्य भाग)



टीपू सुल्तान का महल-बैंगलौर आंतरिक भाग (काष्ठ महल)

अध्याय - षष्ठम



6 केरल एवं कर्नाटक प्रांतों के अध्ययन के निष्कर्ष की तुलनात्मक विवेचना

मैंने अपने शोध कार्य में 'केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन' में दोनों प्रांतों का दिशानुरूप ग्रहों की स्थिति के अनुरूप वास्तुपुरुष मंडल के अनुरूप तुलनात्मक अध्ययन किया है। ग्रहों के अनुसार वास्तुशास्त्र के अनुसार दोनों प्रांतों पर वास्तु एवं ग्रहों का प्रभाव किस प्रकार पड़ रहा है, जिसका वर्णन मैं अपने शोध कार्य में कर रही हूँ -

वास्तुशास्त्र में वास्तु की स्थिति से ही मानव पर अनुकूल व प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं, हमारा जीवन, हमारा आवास स्थल, आस-पास की भौगोलिक स्थिति यह सब हमारे लिए कल्याणकारी होवें, इसी सिद्धांत को समझने के लिए हमें वास्तुशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है। वास्तुशास्त्र-के अनुसार वास्तु सर्वप्रथम भूमि पर लागू होता है। वास्तुशास्त्र की प्रमुख जड़ें, भूमि चयन, भूमि की स्थिति पर आधारित होती है, भूमि चयन से ही वास्तु की प्रथम सीढ़ी का ज्ञान होता है वास्तु का स्तंभ दिशाओं को माना गया है। दिशा ज्ञान के अनुसार मैं, केरल एवं कर्नाटक प्रांत के मानचित्र के आधार पर वहाँ की भूमि, आकार व स्थिति का वर्णन करते हुए वहाँ के वास्तु एवं नवग्रहों के आधार पर उनके शुभ-अशुभ परिणामों का वर्णन कर रही हूँ।

6.1 सौर मंडल का परिचय - सौर मंडल का अर्थ है सूर्य और उससे संबंधित शेष आठ ग्रह। पारिभाषिक रूप से सौर मंडल में सभी उपग्रह तारामंडल भी आ जाते हैं, जो इन ग्रहों से स्वतंत्र रूप से संबंधित होते हैं। भारतीय ज्योतिष में ग्रहों की संख्या नौ (9) मानी गई है जिनके नाम क्रमशः सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु-केतु।

इनमें प्रथम सात ग्रहों के पिण्ड आकाश में दिखाई देते हैं, शेष राहु व केतु छाया ग्रह हैं, पाश्चात्य खगोल शास्त्रियों के द्वारा अनुसंधानित हर्षल, नेप्च्यून, प्लूटो इन तीन ग्रहों को भारतीय ज्योतिष में स्थान प्राप्त नहीं है, आकाश में स्थित सभी तारे अनंत तारा मंडलों का समूह जिनको 27 नक्षत्रों के क्षेत्रों में सीमाबद्ध किया गया है, उसी प्रकार 27 नक्षत्रों को 12 मुख्य भागों में समायोजित करके राशि समूह की कल्पना की गई। राशियों की संख्या बारह (12) है। नक्षत्रों की संख्या सत्ताइस (27) है। प्रत्येक नक्षत्र का एक विशिष्ट नाम, रूप, प्रभावक्षेत्र, गति, स्थिति, काल, उसका तारा समूह निर्धारित किया गया है, प्रत्येक राशि क्षेत्र के अंतर्गत दो या तीन नक्षत्रों का प्रभाव क्षेत्र सीमित रहता है। नवग्रहों की स्थिति इनसे भिन्न है, वे परम स्वतंत्र हैं।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में नक्षत्रों का पूर्ण योगदान रहा है, प्रत्येक मांगलिक कार्य में जैसे गृहआरंभ, भूमिपूजन, गृहप्रवेश, यात्रा, अन्नप्राशन, विद्याआरंभ, मुंडन, विवाह आदि के लिये मुहुर्त का आश्रय लेते समय नक्षत्रों की गणना की जाती है, नक्षत्रों की संख्या 27 है जो क्रमशः (1) अश्वनी, (2) भरणी, (3) कृत्तिका, (4) रोहिणी, (5) मृगशिरा, (6) आर्द्रा, (7) पूर्णवसु, (8) पुष्य, (9) अश्लेषा, (10) मघा, (11) पूर्वाफाल्गुनी, (12) उत्तरा फाल्गुनी, (13) हस्त, (14) चित्रा, (15) स्वाती, (16) विशाखा, (17) अनुराधा, (18) ज्येष्ठा, (19) मूल, (20) पूर्वाषाढा, (21) उत्तराषाढा, (22) श्रवण, (23) धनिष्ठा, (24) शतभिषा, (25) पूर्वाभाद्रपद, (26) उत्तरा भाद्रपद, (27) रेवती, अभिजीत को 28 वां नक्षत्र माना गया है। ज्योतिषियों का मत है कि अभिजीत नक्षत्र उत्तराषाढ की अंतिम 15 व श्रवण प्रारंभिक चार घटी से मिलकर बना है, इसे समस्त कार्यों के लिये शुभ माना जाता है।

शुभ-अशुभ नक्षत्र -

शुभ - मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्वनी, पुष्य, अभिजीत शुभ नक्षत्र माने जाते हैं।

अशुभ - मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा, पीडादायक नक्षत्र है। अश्लेषा, रेवती, मघा, मूल, अश्वनी नक्षत्र मूल संज्ञक है। धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन पाँचो नक्षत्रों को पंचक कहा जाता है ये अशुभ फलदायक होते हैं।

इन सभी ग्रह नक्षत्रों का मानव जीवन पर शुभ-अशुभ प्रभाव पड़ता है। इनके प्रभाव से ही मानव का जीवन तथा संपूर्ण प्रकृति संचालित होती है। मानव को ग्रहों के प्रभाव से ही अनुकूल और प्रतिकूल फल मिलते हैं। प्रकृति को संचालित करने में सूर्यादि ग्रहों का ही प्रभाव है। पृथ्वी वासियों पर पड़ने वाले इनके प्रभाव का अभी तक अध्ययन किया जा रहा है।

वास्तुशास्त्र में ग्रहों का प्रभाव :-

मानव जीवन पर उसकी उत्पत्ति से लेकर अंतिम संस्कार तक सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव होता है। जिस प्रकार से ग्रहों की गति और उनकी प्रकृति निश्चित है उसी प्रकार से ग्रहों के प्रभाव से

मानव का संपूर्ण जीवन प्रभावित होता रहता है। वास्तुशास्त्र में भी ग्रहों का संपूर्ण प्रभाव प्रत्येक वस्तु, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, पर स्थापित हो जाता है।

सूर्य ग्रहों का राजा है जो संपूर्ण प्रकृति एवं मानव जीवन को अपनी ऊर्जा प्रदान करता है। अपनी ऊर्जा शक्ति व तेज से प्रकृति को चलायमान करता है। जैसे सूर्य का आधिपत्य मनुष्य के व्यक्तित्व पर उसकी ऊर्जा, अग्नि व तेज पर है। मंगल व शनि का आधिपत्य धातु, भूमि व मशीनरी पर, चन्द्रमा का सफेद व तरल वस्तुओं पर, गुरु का धार्मिक वस्तुओं पर, भोग विलास की वस्तुओं पर शुक्र का, तार, टेलिफोन प्रसारण, मनोरंजन की वस्तुओं पर बुध का, कोयला लोहा चमड़ा पर शनि-राहू-केतु का आधिपत्य रहता है। इसीतरह औषधियाँ, पशु-पक्षी, वनस्पति पर ग्रहों का अधिकार है, इनका उपयोग लाभकारी या हानिकारक होगा, इस सिद्धांत को जानना जरूरी है यह वास्तु-विज्ञान ही वास्तु शास्त्र का अंग है।

मनुष्य की जन्म कुंडली में ग्रह जिस प्रकार उसे प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार वास्तु शास्त्र में भी ग्रहों का प्रभाव पूर्ण रहता है, वास्तु का अर्थ है वे सभी वस्तुयें जिनके अलग-अलग उपयोग से आपके ग्रहों के आकर्षण बल में परिवर्तन होगा और आपके लिए भाग्यवर्धक होगा। ग्रहों की स्थिति आपके अनुकूल हैं या प्रतिकूल हैं, किस ग्रह वाले को कौन सा मुखी द्वार रखना चाहिए, मकान में रोशनी कहाँ से आना चाहिए, ये सभी ग्रहों की अवस्थाओं पर आधारित है। जन्म कुंडली में कुछ ग्रह योग होते हैं। उसी के अनुरूप वास्तु की शुभाशुभ अवस्था का ज्ञान किया जा सकता है। वास्तु पर किस ग्रह का अधिकार है, जन्म कुंडली के ग्रहों से ही उसका ज्ञान होता है। जिस तरह जन्म कुंडली बनती है, उसी तरह मकान की भी कुंडली बनती है, इस ज्ञान के लिए हमें व्यक्ति की जन्म कुंडली व वास्तु के स्वामी ग्रहों की अनुकूलता प्रतिकूलता दोनों का ही अध्ययन करना पड़ेगा। वास्तु - निर्माण में ज्योतिष ज्ञान के द्वारा ही वास्तु की पूर्णता की जा सकती।

सूर्य :- नाम - भानु, दिवाकर, प्रभाकर, अर्क, रवि, आदित्य, दिनकर, अंग्रेजी में Sun, उर्दू में 'आफताब'

पौरणिक परिचय :- पृथ्वी तथा स्वर्ग के बीच ब्रह्मांड का केन्द्र स्थान है, सूर्य की स्थिति वही है, ग्रहों तारा समूहों में सूर्य का सर्वाधिक महत्व व सर्वोच्च स्थान है। नवग्रहों में सूर्य को विशेष प्रधानता व मान्यता दी है, इसी कारण सूर्य को ग्रहों का राजा कहा गया है।

सूर्य को ज्योतिष शास्त्र में व्यक्ति के यश, प्रतिष्ठा पद सामाजिक गौरव राज्य में पद धन प्राप्ति के विषय में सूर्य का विशेष प्रभाव है, सूर्य के द्वारा ही यह योग संभव है। ज्योतिष शास्त्र में इसे पाप ग्रह, पुरुष ग्रह, पूर्व दिशा की व सिंह राशि का स्वामी, शूरवीर, क्षत्रिय जाति का पित्त प्रकृति का पिंगल वर्ण युक्त माना गया है। मनुष्य के आंतरिक व्यक्तित्व में सदाचार, इच्छा शक्ति प्रभुता, ऐश्वर्य, महत्वाकांक्षा, सहृदयता, स्पष्टता, वाणी की प्रखरता, पराक्रमता का प्रतीक ग्रह है। सूर्य के अशुभ प्रभाव से - नेत्र विकार, हृदय विकार, पित्त विकार, सिर संबंधित कष्ट आदि बीमारियाँ होती हैं।

चन्द्रमा :- नाम - शशि, रजनीश, सोम, सुधाकर, निशाकर, मयंक अंग्रेजी में Moon उर्दू में 'कभट' नाम से जाना जाता है।

संपूर्ण पृथ्वी चन्द्रमा से प्रभावित होती है, मानव के शरीर में जितना जल है, उतना ही जल पृथ्वी पर है। जिस तरह चन्द्रमा समुद्र में ज्वार-भाटे से हलचल पैदा कर देता है, उसी तरह ये मनुष्य के विचारों में हलचल पैदा करनेवाला, गति पैदा करने वाला है, अतः कहा गया है 'मनसो जातः चन्द्रमा' मन को गति देने वाला, भावनाओं को उभारता है, शीतलता और माधुर्य प्रदान करने वाला ग्रह जो प्रतिदिन के जीवन को संचालित करता है। ज्योतिष शास्त्र में इसे जल का कारक, उत्तर-पश्चिम दिशा (वायव्य कोण) का स्वामी, शीत-कफ युक्त, कामुक, हास्य कविता, सामान्य कद, स्थूल शरीर आलस्यता युक्त माना गया है। इसकी स्व राशि कर्क है। स्त्रीग्रह चंचल प्रकृति होने के कारण मनुष्य के स्वभाव में कोमलता, मधुरता, चंचलता, भावनात्मकता, शीतलता, संकोच इत्यादि गुणों को प्रदान करने वाला स्त्री संबंधी रोगों को जन्म देने वाला है। यह सौम्य तथा पाप ग्रह के रूप में माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र में इसे भी 'राजा' की संज्ञा दी गई है। इसके अशुभ प्रभाव से पांडुरोग, आलस्यता, जलरोग, कफ, शीतरोग, मानसिक रोग आदि की उत्पत्ति होती है।

मंगल - भौम, कुज, रुदिर, अंगारक, भूमिपुत्र, क्षितिज, आर, अंग्रेजी Mass उर्दू में 'मारीक' नाम से जाना जाता है। ज्योतिष में भूमिपुत्र को पराक्रम, साहस, सहन-शीलता, देश-प्रेम, क्रोध, घृणा, आक्रमण प्रवृत्ति का अधिपती माना गया है। यह पाप पुरुष ग्रह है, यह दक्षिण दिशा का स्वामी, मेष व वृश्चिक राशि का स्वामी है, अग्नि तत्व प्रधान वाला, पित्त प्रकृति, मध्यम कद, दुबला-पतला तामसी पिंगल वर्ण, लंबा, चेहरा युक्त ग्रह माना गया है इस ग्रह के कारण मनुष्य में घात, षडयंत्र, अधिकार की भावना, चालाकी, चौर्य गुण, दृढ़ निश्चयीता, आक्रामक विचार, कुकर्म, आपराधिक प्रवृत्ति, मादक द्रव्य, ठगी विधाएं आदि को देने वाला ग्रह है।

इस ग्रह के शुभ प्रभाव से मनुष्य प्रशासनिक सेवा, पुलिस, इंजीनियरिंग, अनुशासनप्रियता, डॉक्टर, सर्जन, साहस, पराक्रम, देश-प्रेम, राजनैतिक क्षेत्र में नेतृत्व क्षमता आदि शुभ फलों को प्रदान करने वाला ग्रह माना गया है।

इसके अशुभ प्रभाव से मनुष्य को ज्वर, पित्त, रक्तविकार, चेचक, खसरा, गुप्त रोग, चर्म रोग, नेत्र रोग, धातु संबंधी रोग होते हैं।

बुध - चंद्र पुत्र, शशिज, शांत, हेम्न, बोधन, श्यामगात्र, अंग्रेजी में Mercury, उर्दू में 'उतारद' नाम से जाना जाता है।

ज्योतिष शास्त्र में बुध ग्रह को काल-पुरुष की वाणी माना गया है, मुख्य रूप से यह ग्रह वाणी, बुद्धि, व्यापार का प्रतिनिधि ग्रह है। यह उत्तर दिशा का स्वामी, मिथुन, कन्या राशि का स्वामी, हरित वर्ण युक्त, हास्यप्रिय, प्रसन्नचित्त, स्पष्टवक्ता, गोल चेहरा युक्त सामान्य कद, स्थूल शरीर, त्रिदोश प्रकृति युक्त, नपुंसक, जाति से शुभ पाप ग्रह होने पर इसे अशुभ की संज्ञा दी गई है, इसका स्वभाव मिश्रित, मनोरंजन प्रिय, काव्यप्रिय, कटाक्ष दृष्टि वाला माना गया है।

मनुष्य के जीवन में वाणी, बुद्धि, व्यापार पर प्रतिनिधित्व करने वाला बुध इसके शुभ प्रभाव से व्यक्ति में अनेक गुण व कलाएं उत्पन्न होती हैं। वाक् चातुर्यता, व्यापार की कुशलता, शिल्पकला, चित्रकारी, नृत्य, गायन, हास्य, कानून व चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान बुध के द्वारा ही होता है।

इसके अशुभ प्रभाव से जातक अविश्वासी, शंकालू, स्वार्थी, ठगी विद्याओं से धनअर्जन करने वाले, व्यसनी, रोगी, कामुक, तथा उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। इसके अशुभ प्रभाव से स्नायू, श्वास, वाणी दोष, दमा, तपेदिक, गुप्त रोग, उदर रोग, रक्त चाप, मतिभ्रम जैसे रोग उत्पन्न होते हैं।

बृहस्पति - गुरु, प्रशांत, सुराचार्य, अंगिरा, देवाचार्य, आर्य सुरी, मंत्री अंग्रेजी में Jupiter, उर्दू में 'मुश्तरी' नाम से जाना जाता है।

समस्त ग्रह पिंड में सबसे अधिक वजनी और भीमकाय ग्रह है, ज्योतिष में काल-पुरुष का ज्ञाता माना गया है। बृहस्पति ब्राह्मण वर्ग का, पीत वर्ण युक्त, भूरे रंग के नेत्र वाला गोल आकृति, उत्तम कद-काठी, स्थूल स्वरूप, मृदु स्वभाव धर्मशास्त्र का ज्ञाता, वेद-पुराणों का ज्ञाता, उत्तर-पूर्व (ईशान्य) दिशा का स्वामी, धनु-मीन राशि का स्वामी अधिक बलशाली कोमल प्रवृत्ति वाला उपकारी, ज्ञान का प्रदाता पुरुष व शुभ ग्रह है। गुरु को शारीरिक पुष्टता व ज्ञान का कारक ग्रह माना गया है, बृहस्पति के शुभ होने के कारण मनुष्य कोमल प्रवृत्ति वाला, धर्म के प्रति श्रद्धा रखने वाला, धर्म शास्त्र का ज्ञाता, विद्या-बुद्धि से संपन्न, धन-ऐश्वर्य, समृद्धि, न्याय, संतान-पुत्र पारलौकिक सुख, आध्यात्मिक सुख का विचार गुरु के शुभ होने से प्राप्त होता है।

यदि गुरु अशुभ हो तो वह जातक को अधार्मिक, धर्म का विरोधी, मंदबुद्धि वाला, प्रत्येक कार्य में व्यवधान व असफलता को प्राप्त करने वाला, गृहस्थ जीवन में तनाव से पीड़ित पुत्र अभाव से दुखी समाज परिवार व बंधुओं के बीच सम्मान नहीं मिलना, शिक्षा का पूर्ण ना होना इसके अशुभ होने पर जातक को नाक, कान, गले से संबंधित रोग, मोटापा मिर्गी, मोतीझिरा, अतिसार अनिद्रा, चर्बी जनित रोग आदि रोगों से कष्ट होता है।

शुक्र :- भृगु, भार्गव, दैव्यगुरु, उसना, कवि, अंग्रेजी में Venus उर्दू में 'जुहरी' नाम से जाना जाता है। ज्योतिष शास्त्र में शुक्र विषय वासना कला-सौन्दर्य सांसारिक सुखों का प्रतिनिधि है, सबसे चमकीला ग्रह, ज्योतिष में काल-पुरुष का काम माना गया है, यह ग्रह प्रभावशाली है गोल चेहरा, घुंघराले बाल, श्वेत वर्ण युक्त, कामुक। यह दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा का स्वामी है, तुला, वृषभ राशि का स्वामी है। काव्य संगीत में रुचि विलासी गुप्तांग का प्रतिनिधित्व करने वाला, स्त्री जातक, सौम्यग्रह माना गया है।

सांसारिक सुख, उच्च स्तर का रहन-सहन मदिरा पान प्रतिक्रिया, भोग-विलास, सभी सुखों के लिए शुक्र का प्रबल होना अनिवार्य है। शुभ शुक्र होने से जातक अभिनेता, उपन्यासकार, कवि, व्यापारी, नर्तक, संगीतकार, होटल व्यवसायी, ज्योतिषी तांत्रिक, सुगंधित प्रसाधनों का व्यवसायी होता है।

यदि शुक्र अशुभ हो तो जातक रोगी, विलास मनोरंजक सांसारिक सुखों से रहित, संघर्षशील जीवन व्यतीत करता है, इसके अशुभ प्रभाव से जातक को मधुमेह, चर्मरोग, कफ, वीर्य से उत्पन्न गुप्त रोग, मौस संबंधी रोग, मूत्राशय संबंधी रोग, रति-क्रिया संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं।

शनि :- सौरि, शनैश्चर, छाया, सुत, नील, यम, भास्करी, अंग्रेजी में Saturn, उर्दू में 'जुदुल' नाम से जाना जाता है। यह नपुंसक ग्रह पश्चिम दिशा मकर, कुंभ राशियों का स्वामी, वात, कफ युक्त, कुरूप, श्याम वर्ण का माना गया है। शनि से ही कार्य-कुशलता, जमींदारी, पैतृक व्यवसाय, देवालय, संगठन, शारीरिक बल, विपत्ति, दुख, मोक्ष, ख्याति, लोहे से संबंधित काम, साहस, लोकप्रियता, सुख-समृद्धि आदि का आधिपत्य और इनका विचार शनि से ही किया जाता है।

शनि के शुभ होने से जातक धन, मकान, वाहन सुख, समृद्धि, कार्य-कुशलता, साहस, निम्न वर्ग में प्रधानता पद को प्राप्त करता है। निरोगी होता है, परोपकारी, धार्मिक, मंदिरों का निर्माण करवाने वाला, राजनेता होता है। पुलिस सेवा, कानूनी-विवाद आदि में पद प्राप्त करता है।

अशुभ शनि से अतुलनीय दुख व मानसिक कष्ट होते हैं, वह जातक दरिद्री, चोर, याचक, सभी कार्यों में असफलता, तस्करी करने वाला राज्यभय, कारावास भोगने वाला, शारीरिक कष्ट को प्राप्त करता है।

अशुभ शनि से जातक को वात, कफ संबंधी रोग लकवा, उदर-विकार, कुष्ठ रोग, नेत्र रोग, चोट आदि से अंग भंग होना, गठियावात, प्रदर रोग, दमा आदि जैसे रोग होते हैं।

राहू - फडी, तम, सर्व, असुर, क्रूर, दीर्घ, कविलाक्ष, आगव, अंग्रेजी में Dragons Head उर्दू में 'रास' नाम से जाना जाता है।

...
...
...

...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

ज्योतिष में इसे काल-पुरुष का मुख माना गया है, इसे दुख और शोक का प्रतीक माना गया है, इसकी अपनी कोई राशि नहीं है परंतु कुछ ज्योतिष आचार्यों ने कन्या राशि पर इसका आधिपत्य स्वीकार किया है। यह दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) कोण का स्वामी, श्याम वर्ण, कुरूप, पाप-कर्म, दुर्भाग्य, वात प्रकृति, आलस्यता व नपुंसकता वाला ग्रह माना गया है। इसे ज्योतिष शास्त्र में एक शक्तिशाली ग्रह माना गया है, इसके द्वारा दुख, दुर्भाग्य, संकट, वाहन चालन, तस्करी, नौका चालन, राजनीति, साहस, चिंता, पितामह, अनुसंधान तथा विलासिता का विचार किया जाता है।

इसके शुभ होने से जातक राजनीति में सफलता, कारखाने, फोटोग्राफी, हड्डी, सीमेंट, चित्रकारी, मद्यपान, जूए सट्टे आदि के कार्यों से सफलता प्राप्त करता है।

इसके अशुभ होने से जातक आलसी, अपाहिज, मानसिक दृष्टि से दुखी, कार्यों में असफलता, पारिवारिक दुख, जुए-सट्टे, शराब से कष्ट पाता हुआ मृत्यु को प्राप्त करता है।

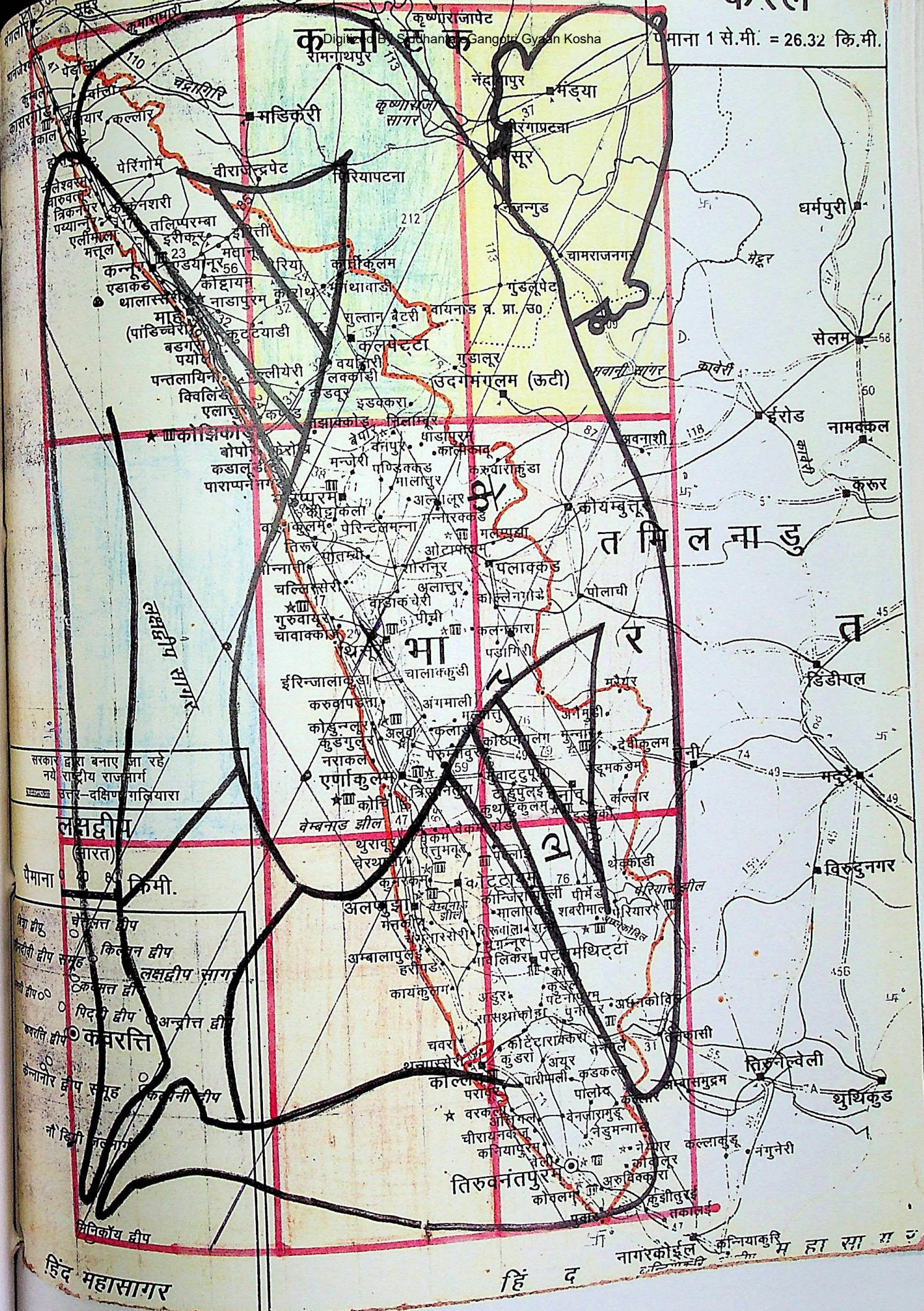
राहू अशुभ हो तो राहू से वात संबंधी, चर्बी संबंधी, चर्म रोग, उदर रोग, अनिद्रा संबंधी रोगों से कष्ट होता है।

केतु - शिखी, ध्वज, राहू-पुच्छ, अंग्रेजी में Dragon tail उर्दू में 'जनब' नाम से जाना जाता है इसे भी ज्योतिष शास्त्र में पाप ग्रह की संज्ञा दी है, यह नपुंसक ग्रह, दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा का स्वामी, मीन राशि प्रतिनिधित्व करने वाला, भूरे रंग वाला कुरूप, साहस, राजनीति, पापकर्म, दुर्भाग्य का प्रतीक हैं। इसके द्वारा दुख, दुर्भाग्य, संकट, वाहन चालन, सेना, पुलिस विभाग, साहस, चिंता, अनुसंधान आदि का विचार किया जाता है। शुभाशुभ फल राहू के अनुसार होते हैं।

1. त्रिवेदी शंकरदयाल, गृह नक्षत्र तंत्रम् पृ. 9, 10

2. शर्मा (मिश्रा) पं. रमेश चंद्र, भवन वास्तुशास्त्र एवं भाग्यफल, पृ. 20, 21, 22

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

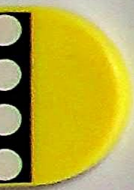


सरकार द्वारा बनाए जा रहे
नये राष्ट्रीय राजमार्ग
उत्तर-दक्षिण गलियारा

लक्षद्वीप
(भारत)

पैमाना 1 से.मी. = 26.32 कि.मी.

कोरमंडल द्वीप
किलान द्वीप
लक्षद्वीप सागर
पिदरी द्वीप
अन्नात द्वीप
कवरत्ति
कनानोर द्वीप समूह
नौ द्वीपों का समूह
मिनिक्कोय द्वीप



क
रेमाना १
राजमार्ग ४
तैयार वि
उत्तर दि
स्वामि च
हा
ज
कोलपुर
वे
भा
भा
सा
अक
ग
द
ह

कर्नाटक

1 से.मी. = 35.7 कि.मी.

राज्यमार्ग 4 से 6 लियारे
तैयार किए जा रहे हैं।
उत्तर-दक्षिण गलियारा
चतुर्भुज

हास

सौगली

बेलगोम

खानपुर

लोडा

डण्डेली

येल्लोपुर

मोगो

सीसी

सोराव

जोग

मोराव

मटक

वेन्दुर

कुण्डा

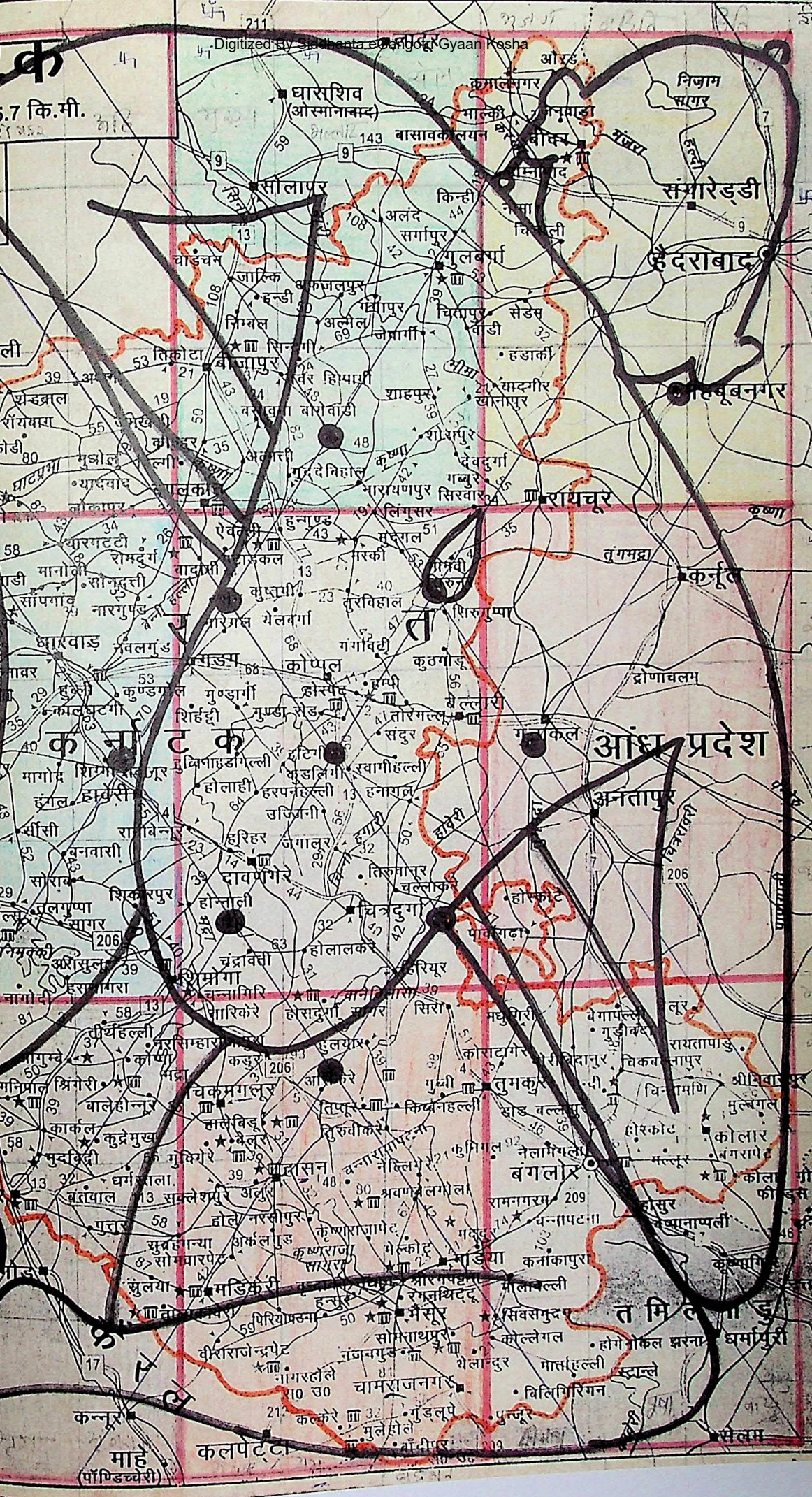
साव

उडुप

मुक्की

मंगल

कस



6.2 केरल एवं कर्नाटक की भौगोलिक स्थिति के अनुसार दिशाओं के प्रभाव

पूर्व दिशा के प्रभाव - वास्तुशास्त्र के अनुसार पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र है एवं प्रतिनिधि ग्रह सूर्य है। पूर्व दिशा में प्रकाश की शक्ति निहित है। यह दिशा सूर्य से ऊर्जा, तेज व प्रकाश प्रदान करती है। पूर्व दिशा में देवताओं का वास होता है जिनके माध्यम से उत्तम स्वास्थ्य, आध्यात्मिक ज्ञान, ऐश्वर्यता, आयु-वृद्धि एवं धार्मिक सहिष्णुता की प्राप्ति होती है। पूर्व दिशा का प्रतिनिधि ग्रह सूर्य, खनिज संपदा एवं राजकीय स्थिति से संबंधित हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार पूर्व क्षेत्र हमेशा खुला हुआ एवं हल्का होना चाहिये जिससे इस दिशा से सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त की जा सके। पूर्व दिशा में जल का स्थान होना शुभ माना जाता है। इस स्थान का ढलान युक्त होना शुभफलदायक होता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत की पूर्व दिशा की भौगोलिक स्थिति : केरल प्रांत की भौगोलिक स्थिति के अनुसार इसका पूर्वी क्षेत्र बढ़ा हुआ है। केरल प्रांत का पूर्वी क्षेत्र पर्वतीय अर्थात् ऊँचा, पथरीला एवं असमतल है। पूर्व दिशा में छोटी-छोटी नदियाँ, गहरी घाटियाँ एवं घने वन हैं। पूर्व दिशा से मलम्पुझा नदी का आगमन होता है, इसके अतिरिक्त लगभग 40 अन्य नदियों का उद्गम इस दिशा से हुआ है जिनका बहाव पूर्व से पश्चिम की ओर है। पूर्व में नीलगिरी पर्वत, पालघाट, अन्नामलाई, अनाईमुडी, पेरियार पठार स्थित हैं। पालघाट पर्वत व नीलम्पती पठार के मध्य पर्वतश्रृंखला टूटी हुई है।

आगे मैं दिशाओं एवं ग्रहों की स्थिति एवं उनसे संबंधित घटकों (खनिज, उद्योग, कृषि आदि) के प्रभावों के आधार पर केरल एवं कर्नाटक प्रांतों की प्रत्येक दिशा वर्णन कर रही हूँ -

केरल प्रांत पर पूर्व दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - केरल प्रांत के पूर्वी भाग में वायनाड नामक स्थान पर लोहा एवं पलक्कड में चूना पत्थर पाया जाता है।

केरल प्रांत के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अधिक मूल्यवान फसलें जैसे चाय, कॉफी, कहवा, कोको की पैदावार बहुतायत से होती है। काली मिर्च, लौंग, इलायची, जायफल, काजू एवं अन्य गरम मसालों का उत्पादन भी पूर्वी क्षेत्र में होता है।

भारत की 98 % काली मिर्च, 95% रबड़, सोयाबीन, चना, लाल मिर्च, अदरक केरल के पूर्वी भाग में पैदा होते हैं।

इस राज्य में 27% भूमि पर वन फैले हुए हैं। इन वनों से सागौन, रोजवुड, महोगनी, चंदन तथा शीशम इत्यादि लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। पलक्कड से मलय पर्वत का आरंभ होता है जिसकी गणना भारत के सात सुपरिचित पर्वतों में की जाती है। इस स्थान पर चंदन के वृक्ष पाये जाते हैं।

शिक्षा व ज्ञान की दृष्टि से केरल राज्य पूर्ण है। यहाँ की साक्षरता का प्रतिशत भारत में उच्चतम है। इस क्षेत्र के निवासी अपनी शिक्षा के द्वारा चिकित्सा, इंजीनियरिंग, वकालत एवं अन्य क्षेत्रों में अग्रणी हैं।

भारी वर्षा वाले इस प्रांत में जल बिजली बनाने के स्थान पूर्व दिशा की ओर ऊँचे पहाड़ी भागों में स्थित हैं। जल बिजली इलायची की पहाड़ियों में स्थित देवीकुलम तहसील में पेरियार नदी और उसकी सहायक नदियों से विकसित की गई है परंतु भारत के इस अत्यंत घने व आबाद राज्य में औद्योगिक प्रगति के लिए ज्यादा बिजली प्राप्त करने के लिए पम्बा, पन्नियार नदियों पर भी जल बिजली विकसित की गई है।

केरल भारत का एक अभिन्न राज्य है। भारत में हिन्दुओं की संख्या अधिकतम है व सनातन धर्म का बोलबाला है, किन्तु केरल प्रांत में हिन्दु, मुस्लिम व ईसाई धर्म का अधिक प्रचार है। ईसा से एक सदी बाद संत थॉमस के आगमन पर भारत में ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ। संत थॉमस केरल पहुंचे तथा उनसे प्रभावित होकर बहुत से लोगों ने ईसाई धर्म को अपना लिया।

इस प्रांत में मुसलमान भी समुन्नत जाति है, ये लोग केरल में अरब देशों से आए तथा प्रारंभ में इनका प्रभाव कालीकट में था। अरबी लोग यहाँ के वासियों को व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाने एवं उन्हें काम देने के लिए अरब देशों में ले कर गए, एवं कुछ समय बाद कुछ केरल वासी धन कमाकर वापस लौटे एवं कुछ वहीं के हो कर रह गए, जिससे अरबियों का वर्चस्व व प्रभाव यहाँ के निवासियों पर पड़ने लगा, जिससे मुस्लिमों की संख्या इस राज्य में आज भी अधिक है।

प्रांत में हिन्दु धर्म का प्रचार भी हुआ, नवीं शताब्दी में, शंकराचार्य द्वारा हिंदु धर्म के पुनरुद्धार के विषय में बोलते हुए डॉ. के.एम.पनीक्कर ने कहा, " भारतीय इतिहास में यह केरल का प्रथम प्रवेश है। "

केरल प्रांत में धर्म व आस्था के केन्द्र मंदिर, मस्जिद व गिरजाघरों का अधिक मात्रा में निर्माण हुआ।

केरल प्रांत में धर्म-परिवर्तन तीव्र गति से हुआ। अधिकांश धर्म परिवर्तन उन लोगों ने किया जो अपने धर्म से अप्रसन्न तथा बहिष्कृत थे। हिंदुओं का धर्म उन्हें अस्पृश्य मानता था उनका हिंदुओं में कोई उचित स्थान नहीं था। जब इन निम्न व दुर्बल व्यक्तियों को हिंदु धर्म में स्थान नहीं मिला तथा

... १२५ ...
... १२६ ...
... १२७ ...
... १२८ ...
... १२९ ...
... १३० ...
... १३१ ...
... १३२ ...
... १३३ ...
... १३४ ...
... १३५ ...
... १३६ ...
... १३७ ...
... १३८ ...
... १३९ ...
... १४० ...
... १४१ ...
... १४२ ...
... १४३ ...
... १४४ ...
... १४५ ...
... १४६ ...
... १४७ ...
... १४८ ...
... १४९ ...
... १५० ...
... १५१ ...
... १५२ ...
... १५३ ...
... १५४ ...
... १५५ ...
... १५६ ...
... १५७ ...
... १५८ ...
... १५९ ...
... १६० ...
... १६१ ...
... १६२ ...
... १६३ ...
... १६४ ...
... १६५ ...
... १६६ ...
... १६७ ...
... १६८ ...
... १६९ ...
... १७० ...
... १७१ ...
... १७२ ...
... १७३ ...
... १७४ ...
... १७५ ...
... १७६ ...
... १७७ ...
... १७८ ...
... १७९ ...
... १८० ...
... १८१ ...
... १८२ ...
... १८३ ...
... १८४ ...
... १८५ ...
... १८६ ...
... १८७ ...
... १८८ ...
... १८९ ...
... १९० ...
... १९१ ...
... १९२ ...
... १९३ ...
... १९४ ...
... १९५ ...
... १९६ ...
... १९७ ...
... १९८ ...
... १९९ ...
... २०० ...

ईसाई धर्म ने इन्हें आश्वासन दिया कि उन्हें हर प्रकार की धार्मिक सुविधाएं दी जायेंगी जो एक ईसाई को मिलती हैं, तो वे धर्म परिवर्तन की ओर आकृष्ट हो गये। केरल प्रांत राजनैतिक दृष्टि से संपन्न नहीं है। यहाँ राजनैतिक अनिश्चितता बनी रहती है।

कर्नाटक प्रांत की पूर्व दिशा की भौगोलिक स्थिति- वास्तुशास्त्र के अनुसार कर्नाटक के सह्याद्रि के पूर्व की ओर की संकरी भूमि की पट्टी ही पूर्वी पर्वतमालाएँ हैं। यह छोटी-छोटी पर्वतश्रृंखलाएँ हैं। पूर्वी क्षेत्र अल्पतम घटाव वाला है। पूर्वी क्षेत्र से तुंगभद्रा, भीमा, ताप्ती एवं कृष्णा नदियों का आगमन होता है। कर्नाटक का पूर्वी क्षेत्र ढलान युक्त है।

कर्नाटक प्रांत पर पूर्व दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - कर्नाटक राज्य के पूर्वी क्षेत्र गुलबर्गा में सोना, चूना-पत्थर, रायचूर में सोना, गुलाबी ग्रेनाइट, बेल्लारी में गुलाबी ग्रेनाइट, लोहा एवं मैगनीज, चित्रदुर्गा में लोहा, चूना-पत्थर एवं मैगनीज पाया जाता है।

कर्नाटक प्रांत के पूर्वी क्षेत्र में चावल, ज्वार, मूंगफली, दाल, कपास, गन्ना, संतरा, आलू एवं पान की पैदावर होती है। वर्षा की अधिकता के कारण इस प्रांत में सदाबहार वन पाए जाते हैं। लगभग सारे वन पूर्वी क्षेत्र में सह्याद्रि पर्वतों पर सीमित हैं। इन वनों की मुख्य उपज बांस, चंदन, सागौन की लकड़ियाँ हैं। इस क्षेत्र का पूर्वी भाग सूखा है अतः यहाँ पर गुल्म वन (scrub forest) हैं। यह प्रांत इन कीमती लकड़ियों का भंडार है।

शिक्षा और ज्ञान की दृष्टि से यह राज्य एक संपूर्ण राज्य है। शिक्षा के क्षेत्र में कर्नाटक राज्य की एक अलग पहचान है। यहाँ पर उच्च एवं विभिन्न प्रकार की शिक्षा के संस्थान हैं। यहाँ के विद्यार्थी इंजीनियरिंग, विज्ञान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत तरक्की कर रहे हैं। भारत के विभिन्न राज्यों के लोग इस राज्य में शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते हैं। कर्नाटक में उच्च शिक्षा के केन्द्र निम्नलिखित हैं - 1. कर्नाटक विश्वविद्यालय, बैंगलोर 2. भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर 3. जवाहरलाल नेहरू उन्नत वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र, बैंगलोर 4. नेशनल एरोनॉटिकल लेबोरेट्री, बैंगलोर 5. सिसमिज रिसर्च सेंटर (गोरी विदनुर), बैंगलोर। चिकित्सा के क्षेत्र में नारायण हृदयालय, बैंगलोर, करस्तूरबा अस्पताल, मनीपाल मेडिकल कॉलेज एवं बैंगलोर किडनी फाउंडेशन प्रसिद्ध हैं।

इस प्रदेश में अनेक धर्मों का समान रूप से प्रचार हुआ है। भारत के अधिकतर राज्यों की अपेक्षा यहाँ की जनसंख्या में हिंदुओं की प्रधानता है। मुस्लिम व ईसाई धर्म के लोग भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में हैं। यद्यपि जैन धर्म ने कर्नाटक प्रांत में अपनी गहरी जड़ें जमायी हैं। इसका उदाहरण

श्रवणबेलगोला में स्थित गोमटेश्वर मंदिर जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। पारसी धर्म के लोग भी यहाँ वास करते हैं। कन्नड़ भाषी लोगों के खून में धार्मिक सहिष्णुता बहुत अधिक है। इसलिये यहाँ अलग-अलग धर्मों में या उनके अनुयायियों में कभी संघर्ष नहीं होता यह असाधारण बात है। उदाहरण के तौर पर 12वीं शताब्दी में बसवण्णा ने वीरशैव की मत की स्थापना करके इस प्रदेश को एक नई संस्कृति दी, उनके द्वारा एक ऐसे संप्रदाय की रचना हुई, जिसमें स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, छूत-अछूत का भेद मिट गया। बसवण्णा ने एक ओर हिंदु धर्म के मूल सिद्धांतों की रचना की, दूसरी ओर उसमें जातिभेद आदि जो कुसंस्कार आ गए थे उनको समाप्त करने का प्रयत्न किया।

राजनैतिक दृष्टि से कर्नाटक राज्य की स्थिति सामान्य है। इस राज्य की वास्तुस्थिति के अनुसार राजनैतिक संघर्ष होते रहेंगे।

पश्चिम दिशा के प्रभाव- इस दिशा का स्वामी वरुण एवं प्रतिनिधी ग्रह शनि है। यह दिशा आचार-विचार प्रदान करने वाली, मनुष्य के स्वभाव पर, स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाली दिशा है। यह आय के उत्तम स्रोत, बाहरी राज्यों व देशों से व्यापारिक संबंधों से लाभ प्रदान करने वाली, उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम आय, प्रसिद्धि, ऐश्वर्य व समृद्धि प्रदान करने वाली दिशा है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार पश्चिम क्षेत्र में भारी पर्वत, भूमि का उठाव, वृक्ष, जंगली क्षेत्र अत्यंत शुभफलदायक व समृद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। पश्चिमी क्षेत्र में खनिज पदार्थों से, समुद्री क्षेत्र में व्यापार व आयात-निर्यात से, लौह संबंधी कार्यों से एवं अन्य जलीय उद्योगों से सफलता प्राप्त होती है।

केरल प्रांत की पश्चिम दिशा की भौगोलिक स्थिति - वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र में अरब सागर स्थित है। यह समुद्र तटीय क्षेत्र है। इस तटीय मैदान में पश्चिमी तट से अरब-सागर की ओर निकले हुए खड़े ढाल वाले कगार बाधा खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार नदी, घाटियों और कगारों की एक के बाद एक दूसरे की संगति के कारण इस मैदान का स्वरूप तरंगित (undulating) बन गया है। इस क्षेत्र की मिट्टी जलोढ़ है।

केरल प्रांत पर पश्चिम दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - केरल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के कन्नूर नामक स्थान पर भूरा कोयला, केयोलिन व चूना पत्थर, त्रिसुर में केयोलिन एवं तांबा, कोच्चि में ताँबा, अल्लपुझा में टिटैनियम ताँबा, लोहा, अभ्रक इत्यादि खनिज पाये जाते हैं।

केरल प्रांत के तटीय क्षेत्र में चावल, टैपियोका, नारियल, पान सुपारी एवं गन्ना की फसलें मुख्य हैं। तटीय मैदान की गरम और तर जलोढ़ मृदा धान की खेती के लिए बहुत अनुकूल हैं। नदी

घाटी और डेल्टाओं में इसकी खास पैदावार होती है। नारियल और अन्य रोपण फसलें चावल की तुलना में अधिक होती हैं। नारियल केरल के आर्थिक ढांचे में महत्वपूर्ण योगदान देता है। भारत में उत्पादित कुल नारियलों का लगभग दो तिहाई भाग केरल में पैदा होता है। काजू की पैदावार पश्चिमी क्षेत्र में अधिक होती है एवं अन्य सूखे मेवे भी इस क्षेत्र में पाए जाते हैं।

केरल का पश्चिमी क्षेत्र समुद्री होने के कारण मत्स्य उद्योग बड़ी मात्रा में होता है। प्रांत में बहुत से छोटे-छोटे जलाशय हैं, जिनमें झील, लैगून और नदियाँ शामिल हैं। ये जलाशय अन्तःस्थलीय मत्स्यकी के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस अत्यंत घने आबाद प्रदेश में खाद्यान्नों की पूर्ति लोगों की जरूरत से कम होती है, अतः मछली लोगों के भोजन का महत्वपूर्ण भाग है। केरल के पश्चिमी भाग में स्थित कोच्चि बंदरगाह से मछलियाँ निर्यात की जाती हैं।

औद्योगिक दृष्टि से केरल प्रांत का यह पश्चिमी क्षेत्र संपन्न है। प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के स्थान कोझिकोड, मलप्पुरम्, त्रिसुर, एर्णाकुलम्, अल्लपूझा, अलुवा इत्यादि स्थानों पर छोटे एवं बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थित हैं। कृषिजन्य उद्योग विशेषकर कुटीर उद्योगों में जैसे-नारियल के गोले व नींबू घास से तेल निकालना, नारियल के जटे से रेशे, रस्सियाँ और पायदान बनाना तथा काजू को संसाधित करना मुख्य है। ये उद्योग तटीय पट्टी पर नहरों और लैगूनों के सहारे विशेष महत्वपूर्ण बन गये हैं। बड़े उद्योगों में मृत्तिका शिल्प, रेयॉन लुग्दी, बिजली का सामान, सूती कपड़े, मशीनी औजार इत्यादि बनते हैं। कोझिकोड और कोच्चि में मृत्तिका के टाइल बनते हैं, इन टाइलों को मंगलूर टाइल कहा जाता है। यह दिशा केरल का व्यापारिक केन्द्र बिंदु बनी हुई है।

धर्म व ज्ञान की दृष्टि से केरल राज्य की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। धर्म का समन्वय एवं ज्ञान दर्शन यहाँ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। धर्म आस्था के केन्द्र में वैदिक धर्म के उन्नायक जगतगुरु शंकराचार्य का जन्म केरल प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र के कालडी नामक स्थान पर हुआ। केरलवासी अत्यंत धर्म भिरू हैं, प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्मों का संगठन बल यही है। प्रांत के पश्चिम में स्थित कोच्चि में सेंट फ्रांसिस गिरिजा घर, हिन्दु धर्म के देवालय गुरुवायुर मंदिर प्रसिद्ध हैं। भारत के राज्यों में केरल ही वह राज्य है, जिसमें सभी वर्गों के लिए सबसे पहले 12 नवंबर 1936 को मंदिर में प्रवेश की घोषणा की गई थी।

इस छोटे से प्रदेश के विख्यात लोगों में धर्मगुरु शंकराचार्य, सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के.एम. पनिककर, ट्रेड यूनियन के जन्मदाता पी. कृष्णापिल्ले एवं श्री कृष्ण मेनन जिन्होंने 18 घंटे भाषण देने का रिकार्ड बनाया, प्रमुख हैं।

कर्नाटक प्रांत की पश्चिम दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के आधार पर कर्नाटक प्रांत का पश्चिमी क्षेत्र पठारीय है। पश्चिमी घाट सह्याद्री के नाम से जाने जाते हैं। ये पर्वतश्रृंखलाएं समुद्र तल से 3000 फुट ऊँचाई तक उठती हैं। सह्याद्री पर्वतमालाएं उत्तर से दक्षिण की ओर जाते हुए इस पूरी धरती की रीढ़ निर्मित करती हैं। पश्चिमी घाट पर सदाबहार वनों का क्षेत्र है।

कर्नाटक प्रांत पर पश्चिम दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - कर्नाटक प्रांत के पश्चिम दिशा में स्थित बेलगाम में मैग्नीज, बॉक्साइट, चूना पत्थर, धारवाड़ में लौह अयस्क, उत्तर कनाड में मैग्नीज एवं लौह अयस्क पाए जाते हैं। लोहे के विशाल भंडार चिकमंगलूर जिले के कुद्रेमुख नामक स्थान पर मिले हैं।

कर्नाटक प्रांत के इस क्षेत्र में चावल, दाल, रागी, ज्वार, बाजरा की खेती होती है। गन्ना नारियल, काजू, पान, आलू, आम एवं कपास का उत्पादन होता है। मलनाड में कहवा, इलायची और संतरे पैदा होते हैं।

पश्चिमी घाट का वन क्षेत्र मलनाड क्षेत्र कहलाता है। मानसूनी वर्षा ने यहाँ घने सदाबहार वनों को सुदृढ़ किया है। मलनाड परिक्षेत्र में कोडागू, शिमोगा, चिकमंगलूर, हसन तथा उत्तरी कनाड जिले के कुछ भाग निहित हैं। जैसे-जैसे हम पश्चिमी दिशा के उत्तरी भाग से दक्षिण भाग की ओर बढ़ते हैं वन सम्पदा समृद्ध से समृद्धतर होती जाती है। इन वनों की मुख्य पैदावार बाँस, चंदन की लकड़ी सागौन है। यह परिक्षेत्र चाय व कॉफी के बागानों का भंडार है। प्रदेश में उत्पन्न कुल कॉफी का तीसरा हिस्सा कुर्ग में होता है।

मत्स्य उद्योग का कार्य भी इसी दिशा से होता है। प्रांत के पश्चिमी क्षेत्र में बहुत से औद्योगिक कारखाने स्थित हैं। भद्रावती में इस्पात के कारखाने जिसमें रेल्वे स्लीपर, लोहे की छड़े, ढलवाँ लोहे के पाइप एवं सूती वस्त्रोद्योगों के लिए लोहे के छल्ले बनते हैं। भद्रावती में सीमेंट की फैक्ट्री, लकड़ी आसवान संयंत्र, कागज का कारखाना इत्यादि उद्योग होते हैं।

पश्चिमी क्षेत्र के बंदरगाह हन्नावर, भाटकल, अंकोला, कारवाड एवं माल्पे हैं एवं अधिकतर कामकाज इन्हीं बंदरगाहों के द्वारा होता है। अन्य देशों से आयात-निर्यात से व्यापारिक संबंधों से कर्नाटक प्रांत को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। कारवार से 40 कि.मी. दूर स्थित डॉन-डेली एक औद्योगिक नगर है, इसका वनक्षेत्र प्लाई और सागौन की लकड़ी के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ खनिज भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

... किन्तु कभी-कभी कि ...
... कि ...
... कि ...

... कि ...
... कि ...
... कि ...

... कि ...
... कि ...
... कि ...

... कि ...
... कि ...
... कि ...

... कि ...
... कि ...
... कि ...

... कि ...
... कि ...
... कि ...

पश्चिम दिशा त्याग एवं सेवा की भावना प्रदान करती है। यहाँ के निवासी चिकित्सा के क्षेत्र में, पुलिस एवं सैन्य आदि विभागों में अपनी सेवायें प्रदान करते हैं।

उत्तर दिशा के प्रभाव : उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर एवं प्रतिनिधि ग्रह बुध है। यह दिशा धन के अधिष्ठित देव कुबेर की दिशा मानी गई है। इस दिशा को मातृ-स्थान, लक्ष्मी का स्थान एवं देव स्थान भी कहा गया है। यह दिशा धन-सुख, ऐश्वर्यता, आरोग्यता एवं उत्तम विचार प्रदान करने वाली है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार इस दिशा का खुला एवं खाली होना एवं साफ स्वच्छ होना आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होता है।

केरल प्रांत की उत्तर दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के अनुसार केरल प्रांत के मानचित्र को देखने पर हम यह पाते हैं कि यह एक पूर्णतः तटीय प्रदेश है जो उत्तर-पश्चिम से दक्षिण की ओर एक सकरी पट्टी के रूप में फैला हुआ है। जिसकी न्यूनतम चौड़ाई 30 किलोमीटर तथा अधिकतम चौड़ाई 130 किलोमीटर है, अर्थात् इसका उत्तरी क्षेत्र पूर्णतः घटा हुआ है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत का उत्तरी क्षेत्र पूर्णतः घटा होने के कारण वहाँ के निवासियों को अशुभ फल प्राप्त होंगे। उत्तर दिशा का क्षेत्र कुबेर का स्थान माना गया है, अतः केरल प्रांत के इस भाग के घटे हुए होने के फलस्वरूप यहाँ के लोगों को आर्थिक समस्याओं से जूझना पड़ेगा। उत्तरी क्षेत्र में घटाव होने के कारण यहाँ के निवासियों को धन-अर्जन करने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ेगा। स्थान परिवर्तन करके एवं अन्य राज्यों व देशों में जाकर जीवन-यापन करना पड़ेगा। धन की दिशा में दिशा दोष होने के कारण केरल वासियों को निम्न कार्यों से या निम्नवर्ग के अधीन रहकर कार्य करना पड़ेगा।

उत्तर दिशा में दोष होने कारण यहाँ की स्त्रियों को अधिक कष्ट होगा। जीवन-यापन करने के लिए महिला वर्ग को भी संघर्ष करना पड़ेगा। उत्तर दिशा का भूखंड घटा होने के कारण आर्थिक दृष्टिकोण से यह राज्य काफी पिछड़ा हुआ है।

कर्नाटक प्रांत की उत्तर दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के अनुसार कर्नाटक प्रांत का उत्तरी क्षेत्र दक्षिण की अपेक्षा ढलानयुक्त है। उत्तरी क्षेत्र से भीमा नदी का आगमन होता है। इसके उत्तरी भाग में कुछ छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। उत्तरी क्षेत्र में धारवाड़, बागलकोट एवं बेलगांव का कुछ भाग सम्मिलित है।

कर्नाटक प्रांत पर उत्तरी दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव – वास्तुशास्त्र के अनुसार कर्नाटक राज्य की उत्तर दिशा जिसका प्रतिनिधि ग्रह बुध है जो इस राज्य की संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा किए हुए है। उत्तरी दिशा का यह क्षेत्र कर्नाटक प्रांत का एक संपन्न एवं समृद्ध क्षेत्र है।

कर्नाटक प्रांत के उत्तरी क्षेत्र के बीजापुर नामक स्थान पर लौह, अयस्क, चूना पत्थर, डोलोमाईट इत्यादि खनिज पाये जाते हैं। बेलगांव में मैग्नीज, चूना पत्थर एवं बाक्ससाईट पाया जाता है।

कर्नाटक प्रांत के उत्तरी क्षेत्र में गन्ने की पैदावार भरपूर मात्रा में होती है। इसके साथ ही साथ यहाँ पर ज्वार, मक्का, चावल, कपास आदि की पैदावार भी पर्याप्त मात्रा में होती है।

औद्योगिक दृष्टि से कर्नाटक प्रांत के उत्तरी भाग में इसके दक्षिणी भाग की अपेक्षा कम उद्योग हैं, अर्थात् वास्तुशास्त्र के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि, इसका उत्तरी क्षेत्र हल्का है जो इस प्रांत की आर्थिक समृद्धि में सहयोग प्रदान करता है।

दक्षिण दिशा के प्रभाव – दक्षिण दिशा का स्वामी यम व प्रतिनिधि ग्रह मंगल हैं। यह दिशा धन-धान्य, समृद्धि व शक्ति की दिशा मानी गई है। दक्षिण दिशा व्यापार व धन प्राप्ति की दिशा भी मानी गई है। यम व अन्य बुरे देवताओं का या राक्षसों का स्थान भी दक्षिण दिशा में माना गया है। दक्षिण दिशा का प्रतिनिधि ग्रह मंगल भूमि एवं गृह संपदा का अधिपति है। वास्तुशास्त्र के अनुसार दक्षिण भाग ऊँचा एवं भारी होना चाहिये। इस दिशा की प्रकृति क्रूर है अतः इसके दुष्प्रभाव से बचने के लिये वास्तुशास्त्र के नियमों को अपनाना अति आवश्यक है जिससे हम सुख-शांति व समृद्धि प्राप्त कर सकें।

केरल प्रांत की दक्षिण दिशा की भौगोलिक स्थिति – अध्ययन के आधार पर केरल प्रांत का दक्षिणी क्षेत्र विस्तृत नहीं है अर्थात् घटाव वाला एवं संकरा है। प्रांत के दक्षिण में ही हिंद महासागर स्थित है। इस क्षेत्र की मिट्टी लाल है एवं यह क्षेत्र दक्षिणी भाग में ढलानयुक्त है।

केरल प्रांत पर दक्षिण दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव – केरल प्रांत के दक्षिण दिशा में कोल्लम में अभ्रक, टिटैनियम, भूरा कोयला, केयोलिन इत्यादि पाया जाता है एवं तिरुवनंतपुरम, जो केरल प्रांत की राजधानी है, में अभ्रक ग्रेफाइट, भूरा कोयला, केयोलिन इत्यादि खनिज पाए जाते हैं।

केरल प्रांत के दक्षिणी भाग में नारियल, गन्ना, चावल, धान, टैपिओका तथा दाल की खेती होती है। चाय के बागान भी दक्षिणी भाग के पूर्व में पश्चिमी घाट पर स्थित हैं। संसार के बाजार में काजू

की पूर्ति के लिए भारत का लगभग एकाधिकार है, इसका प्रमुख ग्राहक संयुक्त राज्य अमेरिका है। इसकी पैदावार मुख्यतया उच्चभूमि में होती है। भारत में काजू का प्रमुख उत्पादक राज्य केरल है। काजू को तैयार करने और पैक करने वाली फैक्टरियाँ पूरे प्रदेश में फैली हुई हैं किन्तु इनका केन्द्रीयकरण कोल्लम में है जो केरल प्रांत के दक्षिण दिशा में स्थित है। केरल में देश का 70 % नारियल पैदा होता है। रबर का उत्पादन भी इसी स्थान पर होता है। केरल प्रांत के अधिकांश उद्योग दक्षिणी भाग में केन्द्रित हैं, क्योंकि केरल के दक्षिण में ही जल बिजली का विकास हुआ है। बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग कम किन्तु महत्वपूर्ण हैं। बड़े उद्योगों में रबड़ के टायर, सूती कपड़े, बिजली का सामान, मृत्तिका शिल्प, मशीनी औजार बनाने के कारखाने हैं।

केरल प्रांत का दक्षिणी भाग अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कृषि पर आधारित है। कृषि उत्पादक वस्तुएँ जैसे - काजू, नारियल, रबड़ एवं नारियल की जटा द्वारा निर्मित वस्तुएँ, रस्सी, चटाइयाँ लकड़ी से बनी हुई वस्तुएँ, शंख, सींग, हाथीदांत से बनी वस्तुएँ इत्यादि उपरोक्त सभी वस्तुएँ भारत के बाहर अन्य देशों में निर्यात की जाती हैं, जिससे विदेशी मुद्रा का लाभ केरल प्रांत को होता है। मत्स्य उद्योग का कार्य भी इन दक्षिणी तटीय क्षेत्रों में होता है।

केरल के दक्षिण में ही विश्व प्रसिद्ध परमाणु अनुसंधान केन्द्र थुम्बा है जहाँ से रॉकेट प्रक्षेपित किए जाते हैं। जिसे इसरो (ISRO) के नाम से जाना जाता है। इसका पूरा नाम इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गनाइजेशन (Indian Space Research Organisation) है, जो त्रिवेन्द्रम में स्थित है एवं विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर (VSSC) भी यहीं स्थित है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल का दक्षिणी क्षेत्र घटाव वाला है जिसके दुष्प्रभाव से सैनिक भय, राजनैतिक संकट, शत्रुओं से कष्ट एवं युद्ध आदि होने की संभावना हो सकती है। शारीरिक कष्ट व अन्य रोगों की उत्पत्ति भी यहाँ के निवासियों में हो सकती है। प्राकृतिक आपदाओं का सामना भी यहाँ के निवासियों को करना पड़ेगा। यहाँ के निवासी तस्करी, मादक पदार्थ, धोखा-धड़ी जैसे कार्यों को अपनाकर धनार्जन करेंगे।

कर्नाटक प्रांत के दक्षिणी भाग की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के आधार पर कर्नाटक प्रांत के दक्षिणी भाग को दक्षिणी पठार कहा जा सकता है। तुंगभद्रा नदी से बनने वाले इस पठार क्षेत्र में इस क्षेत्र की पहाड़ियाँ बिलीगिरी, मधुगिरी, नंदी दुर्गा एवं शिवगंगे हैं। यह दक्षिणी भाग उत्तरी भाग से ऊँचा है। यहाँ भूमि भूरापन लिए हुए है। कावेरी नदी का आगमन भी इस दिशा से है एवं मैसूर में स्थित कृष्णराज सागर बांध भी इस दिशा में है।

कर्नाटक प्रांत पर दक्षिण दिशा का वास्तुशास्त्रीय प्रभाव – कर्नाटक प्रांत के दक्षिण में चामराजनगर मैसूर, हसन श्रवणबेलगोला नगर है। खनिज पदार्थ की दृष्टि से यह प्रांत समृद्ध है, इसके दक्षिणी भाग में स्थित मैसूर में काला एवं गुलाबी ग्रेनाइट हसन में क्रोमाइट पाया जाता है।

कर्नाटक प्रांत के दक्षिण में ज्वार बाजरा, रागी एवं दालों की खेती होती है। तूर, इलायची नारियल, कपास, सुपारी, काजू एवं फलों में सेब, केला, चकोतरा, पपीता, अंगूर, अमरुद संतरा और कटहल की पैदावार होती है। हसन में कहवा एवं काफी की पैदावार होती है, इसके अतिरिक्त अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में भी चाय कॉफी के बागान हैं। चावल व नारियल यहाँ की मुख्य उपज है। विभिन्न प्रकार के फूलों की पैदावार भी इस स्थान पर होती है।

वन संपदा का यह क्षेत्र पूर्णतः समृद्ध है, कर्नाटक प्रांत के दक्षिण में स्थित मैसूर चन्दन के वनों से घिरा हुआ है साथ ही इन वनों से बाँस सागौन की लकड़ी, रोजवुड की लकड़ी प्राप्त होती है। संसार में सबसे अधिक चंदन यही होता है। रेशम की पैदावार भी कर्नाटक के दक्षिणी भाग में स्थित मैसूर में सबसे अधिक हैं देश 75 % रेशम यहीं पर पैदा होता है।

कर्नाटक प्रांत के दक्षिण में स्थित शिवसमुद्रम से कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित शिवमोगा जल-प्रपात से बिजली बनाई जाती है। सोने की खानों में खनन कार्यों के लिए बिजली की पूर्ति करना आवश्यक समझकर शिवसमुद्रम जल-प्रपात में सन् 1902 में बिजली पैदा की गई।

औद्योगिक दृष्टि से यह क्षेत्र विकासशील है प्रांत के दक्षिणी भाग में स्थित मांड्या में शक्कर के बहुत बड़े-बड़े कारखाने हैं। रेशम उद्योग से जुड़े हुए क्षेत्र मैसूर व मांड्या हैं जहाँ रेशमी वस्त्रों का निर्माण होता है।

मैसूर की चंदन की लकड़ी विश्वप्रसिद्ध है। इन लकड़ियों व हाथीदांत से निर्मित वस्तुएं देश-विदेश में भी लोकप्रिय हैं। ये वस्तुएं इन वस्तुओं के निर्यात होने से आज भी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। कर्नाटक प्रांत की कृषि भूमि व वन संपदा राज्य को आर्थिक रूप से संपन्न बनाती है।

कर्नाटक राज्य की असली शक्ति उद्योगों में नहीं बल्कि दक्षिण व मंगल के प्रभाव के कारण वहाँ के निवासियों की कार्य कुशलता पराक्रमता व साहस में है।

मंगल ग्रह के प्रभाव के कारण इस प्रदेश की स्वाधीनता व सुरक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान यहाँ के निवासियों ने किया है हैदर अली और टीपू सुल्तान के युद्ध से स्वाधीनता के लिए संघर्ष आरंभ हुआ। भारत के प्रथम थल सेनाध्यक्ष जनरल करयप्पा यहीं के थे। गांधी युग में हिन्दुस्तानी सेवा दल के संस्थापक डॉ. हार्डीकर भी इसी प्रदेश के थे। वर्तमान मैसूर के निर्माता और संसार की

दूसरी बड़ी कृत्रिम झील कृष्णराज सागर बाँध तथा वृन्दावन उद्यान का निर्माण करने वाले इंजीनियर 'भारत रत्न' डॉ. विश्वेश्वरैया इसी प्रदेश के थे।

उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के प्रभाव - उत्तर-पूर्व अर्थात् ईशान इस दिशा के स्वामी शिव है एवं प्रतिनिधी ग्रह ब्रह्मपति है। पूर्व और उत्तर दिशा का संगम स्थल होने से इन्द्र और कुबेर की शक्ति इसमें समाहित है। यह दिशा धन-संपत्ति, अध्यात्म ज्ञान एवं उत्तम ऊर्जा प्रदान करने वाली है। यह दिशा देवताओं की दिशा मानी गई है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार इस दिशा में जल-संसाधन रखना चाहिए क्योंकि भगवान शिव को जलधारा प्रिय है। वास्तुशास्त्र के अनुसार जल देवता का स्थान एवं जल संचय इसी दिशा में होना चाहिए, जिससे हम उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम ज्ञान व उत्तम शिक्षा प्राप्त कर सकें। उपासना के लिए भी यह दिशा शुभ मानी गई है।

केरल प्रांत पर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा का वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - वास्तुशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर केरल प्रांत के मानचित्र को देखने पर हम यह पाते हैं कि इस प्रांत की उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा पूर्णतः घटी हुई है क्योंकि यह प्रांत समुद्र तटीय क्षेत्र में एक सकरी पट्टी के रूप में स्थित है। जिससे उत्तर-पूर्व एवं उत्तर दिशा को पूर्णता नहीं मिल पाई।

केरल प्रांत के उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के चयन के कारण इसके दुष्प्रभाव ही इसे प्राप्त होंगे। इस क्षेत्र के निवासी पूर्व दिशा के प्रभाव के कारण उच्च शिक्षा तो प्राप्त करेंगे किन्तु उसका उपयोग नहीं कर पायेंगे। इंजिनियरिंग, डॉक्टर, वकालत एवं अन्य उच्च शिक्षा में केरलवासी अग्रणी होंगे किन्तु वास्तुशास्त्र की स्थिति के अनुसार उनकी शिक्षा का उपयोग अन्य राज्य व देश करेंगे।

ईशान क्षेत्र में कमी होने से धर्म तथा ज्ञान के प्रति समर्पण भावना में कमी होती है। ईशान दिशा में दोष होने के कारण यहाँ हिन्दु संस्कृति का प्रभाव कम होता जाएगा एवं अन्य धर्मों का प्रभाव बढ़ता जायेगा।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल राज्य एश्वर्य, संपन्नता ज्ञान, धर्म व संतान सुख में पिछड़ता जा रहा है।

...
...

...
...
...
...

...
...
...
...

...
...
...
...

...
...
...
...

...
...
...
...

कर्नाटक प्रांत की उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा की भौगोलिक स्थिति - कर्नाटक प्रांत की उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में कुछ छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। यहाँ से भीमा एवं मंजरा नदियों का आगमन होता है। दक्षिणी पठार की तुलना में यह स्थान कम ऊँचा है। इस क्षेत्र की अधिकांश मिट्टी काली है उत्तर-पूर्व परिक्षेत्र में गुलबर्गा, बीदर एवं रायचूर है।

कर्नाटक प्रांत पर उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - वास्तुशास्त्र के अनुसार पूर्व - उत्तर (ईशान) दिशा जो जल स्थान व देव-स्थान के लिए शुभफलदायक मानी जाती है, कर्नाटक प्रांत की भी यह दिशा जल से संपन्न एवं विस्तार युक्त है यहाँ से मंजरा व भीमा नदियों का आगमन कर्नाटक राज्य को संपन्नता एवं यहाँ के निवासियों को उत्तम स्वास्थ्य व उत्तम शिक्षा प्रदान करती है।

खनिज के क्षेत्र में इस दिशा के गुलबर्गा नामक स्थान पर सोना एवं चूना पत्थर पाया जाता है। रायचूर में भी सोना एवं गुलाबी ग्रेनाइट मुख्य रूप से भी पाया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में इस स्थान पर ज्वार, बाजरा, गेहूँ, चावल की खेती होती है। इसके अतिरिक्त कपास, मूंगफली की पैदावार भी होती है। यहाँ की उत्तम भूमि कृषि के लिए उपयुक्त है।

यह क्षेत्र धर्म एवं आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत प्राचीन धार्मिक क्षेत्र हैं। प्राचीन कालीन राज्य होने से यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति धर्म व आस्था के केन्द्र संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध हैं। यह राज्य अनेक धर्मों को अपने में समाहित किए हुए है। प्रांत के इस स्थान पर अर्थात् उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में हिन्दु, मुस्लिम, इसाई, पारसी, जैन एवं बौद्ध सभी धर्म व्याप्त हैं। विशुद्ध ज्ञान को प्रदान करने वाली यह दिशा जिसने कभी कर्नाटक में ना धर्मयुद्ध की संभावना और ना ही संघर्ष प्रदान किया। यह दिशा कर्नाटक को ऊँच नीच के भेदभाव से अलग करती है एवं सभी वर्गों को समानता का अधिकार प्रदान करती हैं। गुलबर्गा, बीदर एवं रायचूर में स्थित मंदिर, मस्जिद प्रसिद्ध हैं। बीदर गुरुनानक देव के भक्तों का तीर्थस्थल है, पौराणिक कथानुसार जब इस स्थान पर अकाल पड़ा था उस समय गुरुनानक देव जी का यहाँ आगमन हुआ था। रायचूर में स्थित इक मिनार की मस्जिद, जामी मस्जिद प्रसिद्ध हैं।

वास्तुशास्त्रानुसार ईशान का कुछ भाग कटा होने के कारण यहाँ वास्तुदोष उत्पन्न हो जाता है जो कर्नाटक राज्य के लिए शुभ फलों में अवरोध प्रदान करेगा। वास्तुपुरुष की स्थिति के अनुसार भी यह ईशान दोष उत्पन्न करती है।

दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा के प्रभाव :- इस दिशा का स्वामी गणेश व प्रतिनिधी ग्रह शुक्र है । आग्नेय दिशा जो शक्ति का प्रतीक है एवं उत्तम ऊर्जा प्रदान करने वाली है । यह दिशा खाद्य पदार्थों से लाभ, खनिज संपदा से लाभ, औद्योगिक विकास, चिकित्सा एवं विद्युत उत्पादन क्षेत्र से धन प्रदान करने वाली दिशा है ।

वास्तुशास्त्र के अनुसार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा अग्नि से संबंधित दिशा है । इस दिशा में अग्नि से संबंधित कार्य, वन क्षेत्र, हरियाली, जंगल, पथरीली लाल भूमि शुभ फलदायक मानी गई है । यह दिशा उत्तम ऊर्जा, स्वास्थ्यवर्धकता, कार्यकुशलता, पराक्रमता, शक्ति एवं शत्रु पर विजय प्रदान करने वाली दिशा है ।

केरल प्रांत की दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा की भौगोलिक स्थिति- अध्ययन के आधार पर राज्य की पूर्व सीमा पर पश्चिमी घाट लगातार पर्वत श्रृंखला बनाते हैं । यदा-कदा टूटे हुए संकीर्ण मार्ग जैसे दक्षिण में अरुवामांझी और चेंकोट्टई है । दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा से पेरियार, अच्छनकोविल नदियों का आगमन हुआ है ।

वास्तुशास्त्र के अनुसार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा में जल स्रोत एवं जल का संचय नहीं होना चाहिये । आग्नेय दिशा को छूने वाली नदियाँ पेरियार, अच्छनकोविल वास्तुदोष प्रदान करती हैं ।

दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा के अनुसार प्रांत में खनिज पदार्थ की स्थिति अच्छी नहीं है । कृषि कार्य के क्षेत्र में इस दिशा के मुख्य उत्पाद चावल, विभिन्न प्रकार की दालें एवं चाय कॉफी के बागान हैं । इलायची, लोंग अन्य महत्वपूर्ण फसलें हैं इसकी पैदावार मुख्यतः इडुक्की और कोट्टायम जिलों में होती है । भारत में कुल इलायची का 40% इस प्रदेश में पैदा होता है । चाय की मुख्य पैदावार भी मुख्यतः कोट्टायम जिले में होती है । अदरक और दालचीनी भी इस प्रदेश की उपज है । रबड़ का उत्पादन भी इस क्षेत्र में होता है । गन्ने की फसल भी इस क्षेत्र में होती है ।

केरल प्रांत के इस क्षेत्र में जल-बिजली का विकास हुआ है, भारत के इस अत्यंत घने व आबादी वाले राज्य में औद्योगिक प्रगति के लिये ज्यादा बिजली प्राप्त करने के लिये पम्बा, पन्नियार नदियों पर भी जल-बिजली विकसित की गई ।

वास्तुदोष के कारण केरल राज्य में बड़े कारखानों की संख्या कम है, एवं इस क्षेत्र में भी औद्योगिक संस्थान कम मात्रा में हैं । यहाँ के निवासी हस्तशिल्प, लघु उद्योग एवं अन्य कलात्मक वस्तुओं से जीविका चलाते हैं ।

शुक्र ग्रह के प्रभाव के कारण स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। स्त्रियों की जनसंख्या सन् 2001 में 163.73 लाख एवं पुरुषों की 154.69 लाख थी। स्त्रियों की कार्यकुशलता, शिक्षा, सेवाभाव को लेकर केरल राज्य पूरे भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में, इंजीनियरिंग, वकालत जैसे कार्यों में पुरुषों के समान कार्य करती हैं।

वास्तुशास्त्रानुसार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा में जल का स्थान नहीं होना चाहिये, किंतु केरल प्रांत के इस क्षेत्र में यही दोष व्याप्त है। इस दोष के कारण इस क्षेत्र के वासियों को राजकीय समस्याओं से, आर्थिक कष्टों से, स्वास्थ्य से, तस्करी जैसे कठिन समस्याओं से जूझना पड़ेगा।

कर्नाटक प्रांत की दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के आधार पर कर्नाटक प्रांत की दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा में नंदी दुर्गा, मधुगिरी जैसी कुछ पहाड़ियाँ हैं। इस क्षेत्र से छोटी छोटी नदियाँ जन्म लेती हैं, ये नदियाँ शिम्सा, अर्कावती, हेमवती, पेन्नार तथा पेलार हैं। इस क्षेत्र में ही कर्नाटक प्रांत की मुख्य नदी कावेरी है। प्रांत के दक्षिण-पूर्वी भाग में बंगलौर, कोलार, बंगारपेट, तुमकूर का क्षेत्र माना जाता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार आग्नेय कोण का ये क्षेत्र विस्तृत है। इस दिशा में जल संग्रह अशुभ फल प्रदान करने वाला होता है और इस प्रांत के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा से ही कावेरी नदी का जल बहता है जो वास्तुदोष उत्पन्न करता है।

कर्नाटक राज्य की राजधानी बंगलौर आग्नेय कोण में ही स्थित है एवं इस क्षेत्र में खनिज संपदा के भंडार स्थित हैं। कर्नाटक प्रांत की राजधानी बंगलौर में काला ग्रेनाइट पाया जाता है। बंगार पेट एवं कोलार में सोने की खदानें भरपूर मात्रा में हैं जो प्रांत को समृद्ध बनाती हैं। तुमकूर में लौह अयस्क, डोलोमाइट, चूना पत्थर एवं मैग्नीज के भंडार हैं। ये खनिज पदार्थ प्रांत को संपन्नता प्रदान करते हैं।

कर्नाटक प्रांत के दक्षिण पूर्व (आग्नेय) दिशा के क्षेत्र में कृषि भूमि से भरपूर मात्रा में ज्वार-बाजरा उत्पन्न होता है साथ ही मूंगफली, चावल, रागी एवं कपास की फसलें भी होती हैं। तिलहन की पैदावार भी भरपूर मात्रा में होती है। इस प्रांत में फूलों की खेती भी बहुत होती है। बंगलौर को उद्यानों की नगरी कहा जाता है, बंगलौर से फूलों को अन्य राज्यों में भी भेजा जाता है।

कर्नाटक राज्य की आय का प्रमुख स्रोत वहाँ की वन संपदा है जिसमें सागौन, रोजवुड की लकड़ी, चंदन एवं बांस सर्वाधिक मात्रा में पाए जाते हैं। आग्नेय क्षेत्र में हरियाली एवं वनीय क्षेत्र साथ ही कृषि के लिए उपयुक्त भूमि यहाँ के नगरों की प्रसिद्धी के मुख्य कारण हैं।

उद्योग के क्षेत्र में कर्नाटक प्रांत का यह दक्षिण पूर्व क्षेत्र बहुत संपन्न है। प्रांत की राजधानी बंगलौर उद्योगों की नगरी है यहाँ पर विज्ञान संस्थान व तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्र है। यहाँ पर विमान, टेलीफोन और मशीनी औजार के निर्माण के कारखाने स्थित हैं। शक्तिशाली जेट विमान का निर्माण भी यहीं होता है। घड़ी के कारखाने भी यहाँ पर हैं। यहाँ पर स्थित जल-विद्युत संयंत्र एवं शुक्र ग्रह की वस्तु शक्कर के कारखाने इस प्रांत को आर्थिक संपन्नता प्रदान करते हैं।

मशीनों के पुर्जे, बिजली का सामान एवं संचार के साधनों का निर्माण कार्य भी इस क्षेत्र में होता है। कई महत्वपूर्ण सार्वजनिक उपक्रमों की इकाई हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स (Hindustan Aeronautics) हिंदुस्तान मशीन टूल्स (Hindustan Machine Tools) भारत अर्थ मूवर्स (Bharat Earth Movers), भारत इलेक्ट्रॉनिक्स (Bharat Electronics) भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL) भारतीय टेलीफोन उद्योग और भारतीय एरोनॉटिकल लैबोरेट्रीज (Indian Aeronautical Laboratories) यहाँ पर स्थित हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में दक्षिण पूर्व (आग्नेय) दिशा का यह क्षेत्र लगातार प्रगति कर रहा है। कर्नाटक प्रांत में बंगलौर उच्च शिक्षा का केन्द्र है, यहाँ पर चिकित्सा संबंधी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं कंप्यूटर से संबंधित कई विख्यात शिक्षण संस्थान हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार आग्नेय कोण में जल का स्थान अशुभ फलदायक होता है, जिससे प्रांत पर इसके कुछ दुष्प्रभाव भी पड़ेंगे— जैसे राजनैतिक संकट व तस्करी इत्यादि।

दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा के प्रभाव — वास्तुशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर इस दिशा का स्वामी राक्षस प्रकृति का एवं क्रूर स्वभाव वाला है। प्रतिनिधि ग्रह राहु केतु हैं। इनके प्रभाव से औद्योगिक क्षेत्र में कृषि के क्षेत्र में व खनिज पदार्थ के क्षेत्र में सफलता मिलती है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह दिशा भारी एवं ऊँची होनी चाहिए। यह दिशा भारी होने पर उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम आयु व उत्तम धन-संपदा प्रदान करती है। वास्तुशास्त्र के अनुसार यह दिशा पूर्ण होनी चाहिए अर्थात् इस दिशा में घटाव नहीं होना चाहिए।

केरल प्रांत की दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा की भौगोलिक स्थिति — केरल प्रांत का यह क्षेत्र हिंद महासागर से घिरा हुआ है। यह तटीय क्षेत्र कहलाता है।

केरल प्रांत पर दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा का वास्तुशास्त्रीय प्रभाव -

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत का दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा का क्षेत्र पूर्णतः घटा हुआ है। इस स्थान पर जल का संचय अधिक है अर्थात् हिंद महासागर है। केरल प्रांत का यह क्षेत्र वास्तुदोष उत्पन्न करता है।

केरल प्रांत के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा के क्षेत्र में घटाव होने के कारण यहाँ के निवासी शारीरिक कष्ट व रोगों से परेशान रहेंगे। जीवनयापन के साधन मजदूरी, मछली पालन व राहु-केतु के प्रभाव के कारण दास जैसे कार्यों को अधिक अपनायेंगे। इस क्षेत्र के अधिकतम निवासी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करेंगे।

यहाँ के निवासी अन्य राज्यों व देशों अधिक कार्य करेंगे। षडयंत्रकारी योजना, चोरी जैसे निम्न कार्यों से भी जुड़े रहेंगे। केरल की खनिज संपदा का उचित उपयोग राज्य सरकार एवं वहाँ के निवासी भी नहीं कर पायेंगे।

कर्नाटक प्रांत की दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा की भौगोलिक स्थिति -

वास्तुशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर कर्नाटक प्रांत का दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) क्षेत्र अरब सागर की ओर स्थित है। समुद्र इस क्षेत्र के भीतर की ओर धँसा होने के कारण यह निचला इलाका पहाड़ियों से निर्मित मेढों और घोड़े की रकाबनुमा आकृतियों से एक छोर से दूसरे छोर तक भरा पड़ा है। इस क्षेत्र में मंगलौर बड़ा बंदरगाह है। दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र में कराड, कोडागू एवं हसन का क्षेत्र आता है। इस क्षेत्र में गुरुपुर, नेत्रावती एवं कावेरी नदियाँ हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार कर्नाटक प्रांत का दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) क्षेत्र पूर्ण विकसित नहीं है। जो वास्तुशास्त्र की दृष्टि से दोषयुक्त है, जिसका अशुभ प्रभाव कर्नाटक प्रांत पर पड़ सकता है।

खनिज पदार्थ की दृष्टि से इस क्षेत्र के दक्षिण कराड क्षेत्र में बाक्सआईट व हसन में क्रोमाईट पाया जाता है। कुद्रेमुख की पहाड़ियों पर लौह अयस्क पाया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में प्रांत के इस दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) भाग में कृषि योग्य भूमि सीमित है, अतः कृषि कार्य सीमित है। इस भाग में चावल, नारियल व काजू भरपूर मात्रा में पैदा होते हैं। इनके अतिरिक्त तिलहन, रागी, ज्वार, आलू व संतरे की पैदावार भी होती है। हसन में कहवा का उत्पादन होता है। मडिकेरी में भी कॉफी के बागान, संतरा व रागी की पैदावार होती है।

औद्योगिक दृष्टि से इस क्षेत्र में लघु-उद्योग व बड़े उद्योग सामान्य मात्रा में हैं। दक्षिण-पश्चिम के क्षेत्र में मंगलौर जो एक बहुत बड़ा बंदरगाह है, यह कॉफी एवं काजू निर्यात करने का बड़ा केंद्र है।

मत्स्य उद्योग का कार्य भी इस क्षेत्र में होता है। लघु-उद्योग में नारियल के जूट से रस्सी व जूट की बनी वस्तुओं का निर्माण होता है।

दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा के प्रतिनिधी ग्रह राहू-केतू के प्रभाव के कारण यहाँ के वासियों को कृषि से लाभ, मत्स्य उद्योग से आयात-निर्यात से लाभ प्राप्त होगा। यहाँ के निवासी चिकित्सा के क्षेत्र में, पुलिस-सेना विभाग में सेवा देने वाले, तस्करी इत्यादि कार्यों से लाभ प्राप्त करेंगे।

दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा विकसित नहीं होने के कारण राज्य में निवासियों को रोगों से कष्ट, उदर विकार, वात, कफ में वृद्धि मानसिक रोग, हृदय विकार जैसी बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है।

उत्तर पश्चिम (वायव्य) दिशा के प्रभाव - उत्तर पश्चिम (वायव्य) दिशा का स्वामी बटुक है व प्रतिनिधि ग्रह चंद्रमा है। इस दिशा के अन्य देव पश्चिम दिशा के अधिपति वरुण व उत्तर दिशा के अधिपति कुबेर हैं यह दिशा उत्तम विचार, वाणी व व्यापार वाली दिशा है। प्रतिनिधि ग्रह चंद्रमा स्त्री का कारक ग्रह है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह दिशा प्राणियों के उत्तम विचार, वाणी आपसी तालमेल, व्यवहार, देशांतर, बाहरी व्यापार अर्थात् आयात-निर्यात एवं धन प्रदान करने वाली दिशा है।

केरल प्रांत की उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के अनुसार केरल प्रांत का उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा का यह क्षेत्र समुद्र तटीय अर्थात् जलीय है। केरल प्रांत का यह भाग एकदम सँकरा है एवं वायव्य कोण विस्तृत है अर्थात् निकला हुआ है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत का उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा का क्षेत्र ईशान व उत्तर दिशा से अधिक है अर्थात् वायव्य दिशा का यह भाग विस्तृत है। जो धन-हानि व उन्नति में अवरोध उत्पन्न करता है।

केरल प्रांत पर उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा का वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - केरल प्रांत की वायव्य दिशा एवं इस दिशा का प्रतिनिधी ग्रह चन्द्रमा केरल प्रांत के निवासियों को कला प्रिय नृत्य संगीत प्रिय एवं हास्य प्रिय बनाते हैं। यहाँ का कथकली नृत्य विश्वप्रसिद्ध है। यहाँ की स्त्रियाँ अभिनय एवं नृत्य कला में पुरुषों से आगे होंगी। चंद्रमा माता का कारक तथा स्त्री प्रधान ग्रह है अतः यहाँ के स्त्रियों की संख्या अधिक होगी। इस क्षेत्र की स्त्रियाँ सभी कार्यों में कुशल होगी व पुरुषों के समकक्ष सभी विभागों में कार्य करेंगी। चन्द्रमा की दिशा होने से शिशु मृत्युदर कम होगी व जन्मदर अधिक होगी। कला के क्षेत्र में काव्य के क्षेत्र में, चित्रकारी के क्षेत्र में यह प्रांत अग्रणी है।

... १३ ...
... १४ ...
... १५ ...
... १६ ...
... १७ ...
... १८ ...
... १९ ...
... २० ...

... २१ ...
... २२ ...
... २३ ...
... २४ ...
... २५ ...
... २६ ...
... २७ ...
... २८ ...

... २९ ...
... ३० ...
... ३१ ...
... ३२ ...
... ३३ ...
... ३४ ...
... ३५ ...
... ३६ ...

... ३७ ...
... ३८ ...
... ३९ ...
... ४० ...
... ४१ ...
... ४२ ...
... ४३ ...
... ४४ ...

खनिज संपदा की दृष्टि से केरल प्रांत के वायव्य क्षेत्र में स्थित कासरगोड में केयोलिन लौह अयस्क एवं भूरा कोयला पाया जाता है। कण्णूर में भी भूरा कोयला चूनापत्थर व केयोलिन पाया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में प्रांत के इस भाग में चावल पेडी एवं दालों की पैदावार होती है। भारत में काजू का प्रमुख उत्पादक राज्य केरल है, और प्रांत के वायव्य क्षेत्र में कण्णूर जिला काजू का प्रमुख उत्पादक है। इसके अतिरिक्त तंबाकू की पैदावार भी यहाँ होती है। कासरगोड व कण्णूर में खड़, नारियल, कालीमिर्च, टैपिओका की पैदावार भी होती है।

वायव्य दिशा व्यापार की केन्द्र बिन्दु दिशा है, जो केरल राज्य को आयात-निर्यात में व्यापार में सफलता तो प्रदान करती है, वायव्य दिशा के विस्तृत होने के कारण केरलवासी अन्य देशों में कार्यशील होंगे जैसे अरब देश में काम करने वाले कुल भारतीयों में आधे केरलवासी हैं। जैसा कि प्रवासी भारतीयों की सारणी क्रमांक 8 से स्पष्ट है।

वायव्य दिशा से उत्तम वायु का प्रवेश केरलवासियों को मिलना चाहिये, जिससे व उनकी विचारधारा, आपसी व्यवहार, मैत्री, व्यवहार, उत्तम स्वास्थ्य, धन-सुख की प्राप्ति कर सकें, किंतु प्रांत के इस वायव्य दिशा में वास्तुदोष वहाँ के निवासियों को उपरोक्त दिये गए सुखों की प्राप्ति में अवरोध पैदा करते हैं।

कर्नाटक प्रांत की उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा की भौगोलिक स्थिति - अध्ययन के आधार पर कर्नाटक प्रांत की उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा में छोटी पहाड़ियाँ हैं, यह पठारी क्षेत्र है। इस स्थान पर भीमा, कृष्णा दोनों नदियों का आगमन हुआ है। प्रांत के इस क्षेत्र में बीजापुर बागलकोट, बेलगाम आता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा का पठार क्षेत्र दक्षिणी पठार क्षेत्र सनीचा है, यहाँ की वायु कर्नाटक वासियों के लिए उत्तम वाणी, उत्तम विचार व उत्तम व्यापार के लिए शुभ फलदायक है।

कर्नाटक प्रांत पर उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा के वास्तुशास्त्रीय प्रभाव - वास्तुशास्त्र के अनुसार उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा कर्नाटक वासियों के लिए शुभफल प्रदान करने वाली है।

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

खनिज पदार्थ की दृष्टि से प्रांत के उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा के बेलगांव में बाक्साइट, चूना पत्थर एवं मैग्नीज पाया जाता है। बीजापुर में लौह अयस्क, चूना-पत्थर, एवं डोलोमाइट पाया जाता है।

कृषि क्षेत्र में प्रांत के इस भाग में गन्ना भरपूर मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त गेहूं चावल ज्वार बाजरा मिर्च की खेती होती है। कपास व पान भी यहाँ पैदा होता है।

उद्योग के क्षेत्र में इस प्रांत का बागलकोट क्षेत्र व्यापार, वाणिज्य के क्षेत्र में बहुत आगे है, सीमेंट निर्माण का कार्य भी इस स्थान पर होता है। यह दिशा व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र में कर्नाटक वासियों को विशेष सफलता प्रदान करती है।

उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा का अधिपति ग्रह चंद्रमा कर्नाटक राज्य के वासियों में कला, संगीत एवं साहित्य के गुण प्रदान करता है। यहाँ का कर्नाटकी संगीत प्रसिद्ध है। यह राज्य हिन्दुस्तानी संगीत का बहुत बड़ा केन्द्र है। इस प्रांत में प्रसिद्ध गायकों का जन्म हुआ है जैसे कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन, भीमसेन जोशी इत्यादि हैं जो विश्वप्रसिद्ध हैं। कर्नाटक वासी अत्यंत कला प्रिय हैं।

वायव्य कोण से उत्तम वायु प्राप्त होने के कारण कर्नाटक प्रांत के लोगों में धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त है। इस प्रदेश में सभी धर्मों का समान रूप से प्रचार हुआ है। धर्म के प्रति आस्था इस क्षेत्र के निवासियों का गुण है। इस क्षेत्र में सभी धर्मों का जैसे, शैव वैष्णव, जैन, मुस्लिम, इसाई, पारसी आदि धर्मों का वास है। इस क्षेत्र प्रसिद्ध धर्म स्थल सोनदत्ती येल्लमा मंदिर भी विश्वप्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अपनी गहरी छाप छोड़ी है।

उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा में आंशिक रूप से घटाव है यह पूर्णतः वास्तु दोष तो नहीं है परंतु इस आंशिक दोष के कारण इसका कुछ प्रभाव कर्नाटक वासियों पर पड़ेगा। इस क्षेत्र के निवासियों की विचारधारा मैत्री व्यवहार एवं उनकी भावनाओं पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। इस दिशा दोष के कारण स्त्री जाति को शारीरिक कष्ट, संतानोत्पत्ति में कष्ट आदि हो सकते हैं।

ब्रह्म स्थान का प्रभाव - ब्रह्म स्थान अर्थात् मध्य स्थल, इस स्थान के स्वामी सृष्टि के रचनाकार स्वयं ब्रह्मा हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार यह स्थान शुद्ध तथा निर्माण विहीन होना चाहिए इस स्थान पर गड्ढा या उच्च भूमि नहीं होनी चाहिए। यह स्थान खाली होना चाहिए, जिससे सूर्य का प्रकाश एवं सकारात्मक ऊर्जा इस स्थान से चारों ओर फैल सके।

केरल प्रांत के ब्रह्मस्थान की स्थिति - केरल प्रांत का ब्रह्म स्थान का क्षेत्र थिसुर नामक स्थान पर आता है। यह क्षेत्र केरल के मध्य में ऊँचाई वाले मैदान पर स्थित है ब्रह्म स्थान की स्थिति सामान्य होनी चाहिए अर्थात् ब्रह्म स्थान पर ना ही किसी प्रकार का गड्ढा हो या ना हो वह स्थान ऊँचा हो किन्तु केरल के ब्रह्म स्थान का आधा भाग समुद्री क्षेत्र में आता है। यह स्थिति वास्तुदोष से युक्त है, जिसके दुष्प्रभाव केरल प्रांत पर पड़ेगे।

कर्नाटक प्रांत के ब्रह्मस्थान की स्थिति - कर्नाटक प्रांत का ब्रह्म स्थान का क्षेत्र कोप्पल के पास स्थित इटगी नामक स्थान पर आता है। कर्नाटक के ब्रह्मस्थान की स्थिति केरल की तुलना में बेहतर है जिसके शुभ प्रभाव कर्नाटक राज्य को प्राप्त होंगे।

२१
[Faint, mostly illegible text in Devanagari script, appearing to be a list or a series of short paragraphs.]

6.3 द्वारों के अनुसार शुभ व अशुभ परिणाम

केरल राज्य के प्रवेश द्वार :-

प्रथम प्रवेश द्वार थल व जल मार्ग उत्तर पश्चिम (वायव्य) दिशा से कर्नाटक राज्य से - इस द्वारा के देवता रोगहर तथा प्रतिनिधि ग्रह चंद्रमा है। वास्तुनुसार इस दिशा में प्रवेश द्वार होने से केरल के निवासियों को उत्तम फल प्राप्त होंगे। यह दिशा प्रवेश द्वार हेतु शुभ मानी गई है। इस द्वार क्षेत्र में वास्तु पुरुष की बाँए भुजा व बाँए जंघा का क्षेत्र आता है। चंद्रमा इस दिशा का प्रतिनिधि ग्रह होने के कारण यह मानव के विचारों व भावनाओं पर प्रभाव डालता है।

चंद्रमा मन का स्वामी है अतः यहाँ के निवासी चंचल प्रकृति वाले व अस्थिर विचारों वाले होंगे, सौन्दर्य प्रिय, आदर्शवादी, हास्य व मनोरंजक क्रियाओं को अपनाने वाले नृत्य, संगीत व अन्य कलाओं में प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले होते हैं। इसी के फलस्वरूप यहाँ का कथकली नृत्य विश्वभर में प्रसिद्ध है।

वायव्य दिशा से उत्तम विचार, वाणी, आपसी-तालमेल, मैत्री व्यवहार, स्वास्थ्य सुख, संतान सुख को प्राप्त करने वाली दिशा है। वहाँ के निवासी अन्य देशों व राज्यों से, व्यापार एवं आपसी व्यवहार से धन का अर्जन अधिक करेंगे। यहाँ के नगरों, धार्मिक क्षेत्रों की प्रसिद्धि अन्य राज्यों व देशों में होगी। इसका उदा. यहाँ गुरुवायुर मंदिर, वटुकनाथन मंदिर व पद्मनाभ स्वामी का मंदिर है। साथ ही यहाँ के नगर केरल की राजधानी त्रिवेन्द्रम, एर्णाकुलम, कोच्चि, त्रिसुर इत्यादि हैं। यह दिशा व्यापारिक लेन-देन आपसी व्यापार, देशांतर के लिये शुभ फलकारी है। यहाँ के नगर खड उद्योग, मत्स्य पालन, कृषि औद्योगिक कार्यों में, औद्योगिक मशीनरीज में अन्य राज्यों से सफलता प्राप्त करेंगे। परंतु वायव्य को ईशान (उत्तर-पूर्व) से बड़ा नहीं होना चाहिये। यहाँ यह द्वार भेद वास्तुशास्त्रानुसार उत्पन्न होता है जिसके अशुभ फलस्वरूप केरलवासी चंचल विचार व अस्थिर चित्तवाले रहेंगे। ये प्रवासप्रिय रहेंगे, ये अन्य राज्यों व देशों को केरल राज्य से अधिक पसंद करेंगे। जीवनयापन व धनसंग्रह के लिये अन्य राज्यों व देशों में निवास करेंगे। इनका आपसी-व्यवहार वैचारिक-व्यवहार भावनात्मकता में भी तालमेल नहीं रहेगा। यहाँ के वासियों का स्वास्थ्य सुख उत्तम नहीं रहेगा। आपसी तालमेल अच्छा न होने के कारण मित्र की तुलना में शत्रु पक्ष अधिक बढ़ेंगे। व्यापारिक क्षेत्र में जो लाभ मिलना चाहिये वह अन्य राज्यों को मिलेगा। यहाँ के वासियों को श्वास संबंधी रोग, मानसिक रोग, अनिद्रा, जलोदर, अपंगता आदि रोगों से कष्ट होगा।

यह क्षेत्र केतु ग्रह के अंतर्गत आने के कारण यहाँ भविष्य में बाहरी कंपनियाँ व अन्य राज्यों के लोग अधिक लाभ कमायेंगे। यहाँ के निवासियों को शारीरिक, आर्थिक कष्ट, प्राकृतिक आपदाएँ झेलना पड़ सकती है। एवं असामाजिक तत्वों से, आतंकवादियों से, घुसपैठियों से सतर्कता की आवश्यकता है। शत्रुपक्ष से यहाँ भविष्य में संकट उत्पन्न होने की संभावना है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र पापयक्ष्मा के अधिकार क्षेत्र में आता है। इसके प्रभाव के कारण यहाँ के निवासी सदैव असामाजिक तत्वों को संरक्षण दे सकते हैं जिससे यहाँ लंबे समय तक असामाजिक तत्वों की गतिविधियाँ लगातार बनी रहेंगी।

पूर्व-उत्तर (ईशान्य) दिशा में कर्नाटक प्रांत से प्रवेश द्वार - इस दिशा के स्वामी ईशान्यदेव अर्थात् शिव हैं, प्रतिनिधि ग्रह बृहस्पति हैं। वास्तुशास्त्रानुसार यहाँ पर द्वार आगमन, खाली स्थान शुभ फलदायी होते हैं। यह देव स्थान है, यहाँ से मार्ग होने पर यहाँ के निवासी धार्मिक, दयावान, धर्मसूत्रों का निर्माण करने वाले, विचारवान, महत्वाकांक्षी, अध्ययन अध्यापन क्षेत्र में विशेष योग्यता, हँसमुख, भावुक, उदार विनम्र सेवाभावी होते हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल राज्य के पूर्व में घाटी, पर्वत श्रृंखलाएँ जंगली क्षेत्र राज्य के निवासियों को अशुभ फल प्रदान करने वाले हैं। पूर्व उत्तर दिशा से जो ऊर्जा, शक्ति, तेज, ज्ञान केरल वासियों को नहीं मिल पा रहा है, उसके फलस्वरूप यह राज्य शिक्षा में श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के बावजूद यह राज्य पिछड़ा हुआ होगा व विकसित राज्य नहीं बन पायेगा। पूर्व-उत्तर की पर्वत श्रृंखला, जंगली क्षेत्र केरल वासियों को उत्तम स्वास्थ्य, ज्ञान व शिक्षा में बाधाएँ पहुँचायेंगी। यहाँ अनेक धर्मों का समन्वय स्थापित हो गया। पूर्व-उत्तर दिशा में दोष होने के कारण केरल राज्य में भविष्य में धर्म-युद्ध की संभावना व्यक्त की जा सकती है। यह द्वार क्षेत्र राहू के अंतर्गत आ रहा है जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र के वासियों को उदर-विकार, वात-रोग, निद्रा, मानसिक तनाव, अन्य शारीरिक कष्ट जहरीले जीव जंतुओं से कष्ट होगा।

राहू के अंतर्गत आने से यहाँ निम्न कार्यों से वाहन, मशीनरीज, मत्स्य उद्योग आदि से जीवन-यापन अधिक होगा। धर्म का स्तर, वैदिक धर्म का स्तर लगातार गिरता जायेगा। यहाँ के वासियों की शिक्षा में आध्यात्म ज्ञान दर्शन में अवरोधों का सामना अधिक करना पड़ेगा। नव युवकों में, कुमारों में, शिक्षा के प्रति अरुचि, ज्ञान के प्रति जिज्ञासा लगातार कम होती जाएगी। मुस्लिम व अन्य निम्न जातियों का वर्चस्व बढ़ेगा। उच्च वर्ग इन्हीं के अंतर्गत अपने कार्यों को संपन्न करेंगे। अरब देशों का

प्रभाव केरल-वासियों पर अधिक पड़ेगा ।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र पर्जन्य देवता के अधिकार क्षेत्र में आता है । इनके प्रभाव से प्रांत को स्त्रियों से लाभ मिलता है एवं सभी कार्यक्षेत्र में स्त्रियाँ पुरुषों के समान कार्य करेंगी ।

पूर्व दिशा का प्रवेश द्वार तमिलनाडू से - इस दिशा का स्वामी इंद्र है व प्रतिनिधि सूर्य है । केरल का यह क्षेत्र पूर्ण विकसित है , परंतु पूर्व दिशा से द्वार केरलवासियों के लिये उत्तम ऊर्जा, तेज, प्रकाश सत्य गुणों को प्रदान करने वाला है इस दिशा का प्रतिनिधी ग्रह सूर्य है । वास्तुशास्त्र के अनुसार धर्म-सुख, आरोग्य सुख, आध्यात्मिक ज्ञान सुख प्रदान करने वाली दिशा है । इस दिशा में द्वार खिड़कियाँ खाली स्थान रखा जाये तो उपर्युक्त लिखे सभी शुभ फल प्राप्त होते हैं । केरल राज्य की वास्तु स्थिति वास्तुनुसार विपरित फल अधिक प्राप्त करने वाली हैं पूर्वी क्षेत्र में पर्वतश्रृंखलाएँ अधिक हैं जो द्वार वेध को उत्पन्न करती हैं । इस वेध के फलस्वरूप यहाँ के निवासियों को वह तेज व ऊर्जा, उत्तम व्यक्तित्व प्राप्त होने में अवरोध आयेंगे एवं संघर्ष अधिक करना पड़ेगा, वह ज्ञान जो दूसरों को प्रभावित कर सके वह व्यक्तित्व जो प्रसिद्धि दिला सके, ऐतिहासिक, युग पुरुष, विश्वस्तरीय प्रसिद्धि यहाँ के निवासियों को मिलने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा ।

इस दिशा का प्रतिनिधि ग्रह सूर्य जो उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है, ज्ञान प्रदान करता है, चिकित्सा ज्ञान, मशीनरी ज्ञान, वह ज्ञान केरलवासियों को प्राप्त तो होगा, परंतु उसका उपयोग व लाभ केरल राज्य को प्राप्त नहीं होगा । स्वास्थ्य की दृष्टि से इस दिशा में वेध होने के कारण यहाँ के निवासियों को शारीरिक कष्टों से रोगों से जुझना पड़ेगा । यहाँ के निवासी सत्वगुणों से मुक्त न होकर तामसी गुणों से युक्त होंगे । यहाँ का भोजन सात्विक न होकर तामसिक, मांस व मसालेदार अधिक होगा । सूर्य के अप्रभाव के कारण यहाँ के निवासियों को उदर विकार, नेत्र विकार, हृदय विकार, रक्त-चाप, त्वचा विकार (एलर्जी) जैसे रोगों से अधिक कष्ट एवं रक्त अल्पता जैसे रोगों से जूझना पड़ेगा, चूंकि यह द्वार क्षेत्र शुक्र ग्रह के प्रभाव क्षेत्र में है तो इसके प्रभाव के कारण यहाँ के निवासियों को गुप्त रोग, मधुमेह, प्रमेह, आदि रोगों का सामना करना पड़ेगा । आलस्यता, मानसिक अशांति, नृत्य-संगीत क्षेत्र में बाधाएँ आयेंगी । वीर्य आदि रोगों से पुरुष वर्ग को जुझना पड़ेगा । महिलाओं को वैश्यावृत्ति जैसे निम्न कार्यों को अपनाना पड़ सकता है । जीवन यापन के लिये महिलाओं को मजदूरी श्रम जैसे कार्यों को करना पड़ेगा । सूर्य शुक्र के प्रभाव के कारण यहाँ के निवासी अन्य राज्यों में निवास अधिक करेंगे । महिला पुरुष वर्ग को श्रम कार्य अधिक करना पड़ेगा । यह राज्य इन ग्रहों के प्रभाव के कारण पिछड़ेपन का शिकार होता रहेगा ।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह क्षेत्र सत्यदेवता के अधिकार क्षेत्र में आता है। जिसके प्रभाव से सत्य का गंभीर प्रभाव है अर्थात् जहाँ सत्य है वहाँ असत्य भी बहुतायत में दिखाई पड़ता है। इस क्षेत्र के निवासी सत्य निष्ठा रखने वाले होंगे वहीं दूसरी ओर अत्याधिक बेईमान किस्म के निवासी भी होंगे। यह द्वार शुक्र ग्रह व बुध ग्रह के क्षेत्र से है जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासी भौतिक सुख व वैभवशाली जीवन व्यतीत करने वाले होंगे। सत्यदेव के कारण तस्करी व कालाबाजारी जैसे कार्यों में संलग्न होंगे।

दक्षिण- पूर्व (आग्नेय) दिशा में तमिलनाडू से प्रवेश द्वार -

दक्षिण पूर्व दिशा का स्वामी गणेश है व प्रतिनिधी ग्रह शुक्र है। वास्तुशास्त्र के अनुसार आग्नेय कोण का द्वार मार्ग उत्तम ऊर्जा, पराक्रमता, शत्रुओं पर विजय, स्वार्थवर्धकता, संतानसुख, खनिज पदार्थों से लाभ प्रदान करती है। केरल का यह द्वार जो आग्नेय से संबंधित है, तथा यह क्षेत्र आग्नेय कोण विस्तृत होने के कारण केरल को एक संपन्न राज्य बनाता है। केरल के विकास में आग्नेय दिशा का द्वार केरलवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान, उत्तम सुख, आयु, संतान सुख, शत्रु पर विजय प्रदान करता है।

आग्नेय द्वार केरल राज्य के निवासियों के लिये भूमि लाभ, वन लाभ, कारखानों से, खनिज पेट्रोलियम, जड़ी-बूटी, मसाला, रबर, मत्स्य उद्योग आदि कार्यों से धन प्रदान करता है। वास्तुनुसार आग्नेय कोण में जल का संचय, जलागमन एवं आग्नेय कोण का विस्तार नहीं होना चाहिये, परंतु केरल राज्य में यह दोष स्पष्ट दिखाई देता है। आग्नेय कोण से प्रवेश द्वार के साथ पेरियार झील, अच्छनकोविल झील, अरुविकारा आदि जल स्रोत वास्तुदोष प्रदान करता है। इस दोष के कारण राज्य के वासियों को राजनैतिक समस्याओं का मानसिक परेशानियों का एवं आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ेगा।

राज्य के विवाद, राज्य की समस्याएँ, अपराध अपराधियों से लगातार बढ़ता जाएगा, इस दोष के कारण केरलवासियों की पराक्रमता कम होगी, भय बढ़ेगा, कृषि, चिकित्सकीय, खनिज-पेट्रोलियम क्षेत्र का लाभ अन्य राज्य उठाएंगे। आपसी वाद-विवाद, आध्यात्मिक ज्ञान-दर्शन की कमी, इस क्षेत्र का प्रतिनिधि ग्रह शुक्र होने के कारण वहाँ के निवासी वासनाओं में लिप्त, गुप्त रोगी, संगीत, नृत्य आदि क्षेत्रों में उत्तम सफलता न मिल पाना, आलस्यता आदि से ग्रसित रहेंगे।

यह द्वार चंद्र क्षेत्र के अंतर्गत आने से इस क्षेत्र के निवासी मानसिक रोग, जलोदर रोग, हृदय विकारों से, कष्ट प्राप्त करेंगे। इन्हें प्रवास का कार्य अधिक पसंद होगा। ये मन से शांत व चंचल प्रवृत्ति के होंगे, सौंदर्यप्रिय, नेत्र, श्वास आदि रोगों से, लीवर संबंधी बीमारियों से कष्ट अधिक पायेंगे, स्त्री

जातकों को शारीरिक कष्ट, मासिक धर्म में अनियमितता, संतान उत्पत्ति संबंधी कष्टों से जूझना पड़ेगा।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र आकाश देवता के अधिकार क्षेत्र में आता है, जिसके प्रभाव से इस क्षेत्र के निवासी चोरी व ठगी जैसे कार्यों में एवं षड़यंत्रकारी योजनाओं से जुड़े रहेंगे।

दक्षिण दिशा से प्रवेश द्वार – दक्षिण दिशा का प्रतिनिधि ग्रह मंगल है। इस दिशा का स्वामी यम है। वास्तुअनुसार यह दिशा धन धान्य, समृद्धि व शक्ति की दिशा मानी गई है। वास्तु अनुसार यह यम आदि प्रेत-राक्षसों एवं पूर्वजों की दिशा कही गई है। वास्तु के अनुसार केरल का दक्षिण द्वार व यहाँ का भूखंड शुभफलदायक है। हिंद महासागर केरल के दक्षिण के स्थित है जो केरल को जल मार्ग से मत्स्य उद्योगों से, विदेशी निवासियों से, अन्य राज्यों से अधिक लाभ प्रदान करेगा। वास्तुअनुसार यह दिशा भारी होनी चाहिए, परंतु केरल का यह क्षेत्र कटा हुआ है व आग्नेय से दक्षिण तक जल का संचय अर्थात् दक्षिण में हिंद महासागर का होना, यह केरलवासियों के लिए अशुभ फल प्रदान करने वाला वास्तुदोष है। मंगल का यह क्षेत्र भारी न होने के कारण यहाँ के निवासी दूसरों के अधीन व भययुक्त जीवन यापन करेंगे।

इस दिशा का द्वार क्षेत्र चन्द्रमा के अंतर्गत आता है एवं इस दिशा का स्वामी मंगल है। यहाँ के जातकों को पूर्वजों की आत्माओं से अशुभ फल प्राप्त होंगे। रक्त विकार, त्वचा, हृदय-विकार, नेत्र विकार, मानसिक रोगों से कष्ट होगा।

वास्तुदोष के कारण भविष्य में यहाँ शत्रुओं से, अन्य देशों से जलयुद्ध होने की संभावना बन सकती है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र पूषा देव के अधिकार क्षेत्र में आता है जिनके प्रभाव से यहाँ के निवासियों में सेवाभाव की भावना रहेगी। वे सेवा कार्यों से जुड़े रहेंगे।

दक्षिण-पश्चिमी (नैऋत्य) दिशा से प्रवेश द्वार – इस दिशा का अधिपति राक्षस प्रकृति एवं संहार का अधिपति है। इस दिशा के प्रतिनिधि ग्रह राहु-केतु हैं। वास्तुशास्त्रानुसार केरल का यह समुद्री द्वार केरलवासियों के लिए अशुभ फलदायक है।

वास्तुशास्त्रानुसार केरल राज्य में नैऋत्य भूखंड का भार रहित और यहाँ से द्वार केरल राज्य के लिए व यहाँ के निवासियों के लिए अशुभ फलदायक ही हैं। राहु-केतु के प्रभाव से यहाँ के निवासी

तामसिक प्रवृत्ति के, अच्छे योजनाकार नहीं, निम्न कार्यों, मादक पदार्थ, चोरी, तरकरी, आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े होकर जीवनयापन करेंगे। यहाँ बुर्जुगों को स्वास्थ्य लाभ, उत्तम आयु नहीं मिलेगी। शिशु मृत्यु दर भविष्य में बढ़ सकती है। यहाँ के निवासियों को शारीरिक कष्ट, रोगों से अधिक कष्ट प्राप्त होगा। यहाँ के निवासी मुस्लिम देशों में निम्न वर्गों के अधीन रहकर या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करेंगे। राहु-केतु के प्रभाव से मजदूरी, कृषि, लोहा, खनिज पदार्थ, जीव-हिंसा व अन्य उत्पादनों से आय प्राप्त करके जीवन-यापन करेंगे। राहु केतु के प्रभाव के कारण केरल राज्य की खनिज-संपदा, यहाँ की मशीनरी, यहाँ के मसाले का प्रयोग अन्य राज्य अधिक करेंगे।

राहु-केतु इस दिशा के प्रतिनिधि ग्रह है एवं इस दिशा का द्वार क्षेत्र केतु ग्रह के अंतर्गत आता है जिसके कारण यहाँ के निवासी शारीरिक अपंगता, उदर रोग, मानसिक तनाव से पीड़ित होंगे एवं राजनैतिक दृष्टि से अस्थिरता हमेशा बनी रहेगी। अपराधों से, असामाजिक तत्वों से यहाँ के निवासियों को संघर्ष करना पड़ेगा। निम्न वर्ग की संख्या अधिक बढ़ेगी, गरीबी, भूखमरी, प्राकृतिक आपदाओं से इस राज्य के निवासियों को कष्ट भोगना पड़ेगा।

वास्तुअनुसार यह द्वार क्षेत्र पितृ देवता के अधिकार क्षेत्र में आता है जिसके प्रभाव से यहाँ के वासियों की आयु पर प्रभाव पड़ता है अर्थात् आयु सामान्य होगी।

पश्चिम दिशा से प्रवेश द्वार :- इस दिशा का स्वामी वरुण व प्रतिनिधि ग्रह शनि है। वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल राज्य का पश्चिमी द्वार वरुण के स्थान में होने से केरल वासियों के लिए शुभ फलदायक है।

वास्तु अनुसार केरल का यह पश्चिमी द्वार केरल को एक संपन्न राज्य बनाता है इसी प्रवेश द्वार

के कारण यहाँ के विश्वप्रसिद्ध बंदरगाह कोच्चि, कोझिकोड, वरक्कला, कोवलम है जो विदेशों से व्यापारिक संबंध बनाकर केरल राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाते हैं। यह बंदरगाह केरल राज्य को आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्ध व संपन्न बनाते हैं।

इस दिशा का प्रतिनिधि ग्रह शनि है यहाँ के निवासियों को मशीनरी कारखानों से, रबर उद्योग, खनिज पदार्थ, मसालों आदि व्यापारों से लाभ होगा। बाहरी देशों के व्यापारियों से यहाँ के निवासियों को आर्थिक लाभ प्राप्त होगा।

केरल में पश्चिम दिशा का यह समुद्री द्वार शुभफलदायक है, परंतु यहाँ जल-स्थान होने के कारण अरब देशों का प्रभाव भविष्य में बढ़ता जाएगा। विदेशी ताकतें लगातार अपना प्रभाव बढ़ाकर केरल के निवासियों को आर्थिक कार्यों के लिए संघर्षमय स्थिति निर्मित करेंगी।

यहाँ पर इसका उदा. सर्वप्रथम 1498 में बंदरगाह पर विदेशियों का आगमन हुआ था, इसके पश्चात् विदेशी ताकतों ने केरल पर व्यापार के बहाने अपना संबंध, अपना आधिपत्य जमा लिया था। भविष्य में भी अरब देश व अन्य देश केरल को आर्थिक रूप से कष्ट देने के लिये अपना व्यापार केरल राज्य में बढ़ाते जायेंगे। यह द्वार क्षेत्र शुक्र के अंतर्गत आने से यहाँ के निवासी खुशमिजाज, विलासी, मौजमस्ती करने वाले, दयावान, धार्मिक, चिकित्सा क्षेत्र, सेवा कार्यों में नृत्य-संगीत में प्रसिद्धि को प्राप्त करेंगे।

इसका उदाहरण, केरल राज्य की सबसे अधिक स्त्रियाँ नर्स बनकर अन्य दूसरे राज्यों व विदेशों में सेवा के द्वारा केरल को यश प्रदान कराती हैं।

वास्तुशास्त्रानुसार यह द्वार क्षेत्र पुष्पदंत देवता के अंतर्गत आता है। यह समुद्री द्वार है, जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासी कुशल मछुआरे एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले होते हैं, साथ ही यह द्वार क्षेत्र बुध ग्रह के अंतर्गत भी आता है इसके प्रभाव से व्यापारिक गतिविधियों के द्वारा सुख-समृद्धि एवं सम्पन्नता प्राप्त होगी।

कर्नाटक प्रांत के प्रवेश द्वार व उनके शुभ अशुभ फल

कर्नाटक प्रांत का प्रथम प्रवेश द्वार पूर्वी ईशान दिशा से - कर्नाटक का यह द्वार क्षेत्र राहु ग्रह के अंतर्गत आता है। कर्नाटक प्रांत का ईशान दिशा का यह द्वार प्रांत को शुभ फल प्रदान करने वाला द्वार है। वास्तुशास्त्रानुसार यह द्वार क्षेत्र देवस्थान पर है। इसके शुभफल स्वरूप यहाँ के निवासी धर्म के प्रति श्रद्धा रखनेवाले, धर्म ग्रंथों के रचनाकार, महत्वाकांक्षी, भावुक, उदार अध्ययन क्षेत्र में अग्रणी, तकनीकी विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि क्षेत्रों में सफलता को प्राप्त करेंगे। चूंकि इस द्वार पर देवताओं का स्थान माना गया है इसके फलस्वरूप प्रांत में प्राचीन धार्मिक स्थल अधिक मात्रा में होंगे। उदाहरण के तौर पर विश्व का आठवाँ आश्चर्य कही जाने वाली गोमतेश्वर प्रतिमा जो श्रवणबेलगोला में स्थित है तथा बीजापुर में स्थित गोल गुंबद प्रसिद्ध हैं।

ईशान दिशा से जल का आगमन कर्नाटक वासियों के लिए प्राचीन काल से धर्म की धारा प्रदान कर रहा है। यदि हम कर्नाटक प्रांत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नजर डालते हैं तो यहाँ के राष्ट्रकूट एवं चालुक्य वंश के सम्राट, जिन्होंने धार्मिक स्थलों का निर्माण, कन्नड़ साहित्य का निर्माण, तमिल साहित्य का निर्माण प्रचुर मात्रा में किया। यहाँ के राजा- महाराजा धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले थे। धर्म-साहित्य की दृष्टि में कर्नाटक का स्थान प्रधान ही माना जायेगा। यहाँ के धार्मिक ग्रंथ गोमतेश्वर प्रतिमा काव्य रचना है जो आचार्य नेमिचंद के द्वारा लिखी गई। इनके अतिरिक्त दिगंबर जैन मुनि, आचार्य कुंदकुंद जिन्होंने समयसार, प्रवचनसार जैसे जैन ग्रंथों की रचना की। यह राज्य शिक्षा की दृष्टि से संपूर्ण भारतवर्ष में विख्यात है एवं संस्कृत, प्राचीन साहित्य, चिकित्सा, तकनीकी आदि क्षेत्रों में प्रसिद्ध है। उदाहरण के लिए कर्नाटक प्रांत की राजधानी बैंगलोर जिसे 'सिलिकॉन सिटी' भी कहा जाता है जो तकनीकी शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र है। कर्नाटक प्रांत का यह द्वार यहाँ के निवासियों को धन, ऐश्वर्य एवं वैभव प्रदान करता है। यह द्वार कर्नाटक वासियों के लिए वंशवृद्धि प्रदान करने वाला है।

यह द्वार राहु के अंतर्गत आता है जिसके कारण राजनैतिक दृष्टि से अस्थिरता व राजनीति में मजदूर वर्ग एवं किसान वर्ग का प्रभाव अधिक रहेगा। अपराधों से, आसामाजिक तत्वों से निवासियों को संघर्ष करना पड़ेगा उदाहरण के तौर पर चंदन तस्कर वीरप्पन है। यहाँ के निवासियों को शारीरिक कष्ट व मानसिक कष्ट राहु के प्रभाव से हो सकते हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र वास्तु चक्र के पर्जन्य देवता के अंतर्गत आता है, जिसके प्रभाव से प्रांत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार व स्त्रियों का योगदान सभी कार्यों में कर्नाटक वासियों को प्राप्त होगा एवं स्त्रियों का कार्यों में संलग्न होना प्रांत को लाभ प्रदान करेगा। शिक्षा के क्षेत्र में, सामाजिक कार्यों में स्त्रियाँ आगे रहेंगी।

द्वितीय प्रवेश द्वार पूर्व दिशा से - कर्नाटक प्रांत का यह द्वार बृहस्पति ग्रह के अंतर्गत आता है। तुंगभद्रा नदी का आगमन भी इसी द्वार क्षेत्र से है। यह द्वार कर्नाटक वासियों के लिए उत्तम ऊर्जा, स्वास्थ्य सुख व ज्ञान को प्रदान करने वाला द्वार है।

बृहस्पति ग्रह सत्य गुण से प्रभावित ग्रह है जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासी आध्यात्मिक ज्ञान व शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति व सामाजिक क्षेत्र में प्रसिद्ध होंगे। उदा. स्वरूप यहाँ की चिकित्सा व तकनीकी संस्थाएँ जैसे - कर्नाटक विश्वविद्यालय बेंगलोर, भारतीय विज्ञान संस्थान, जवाहरलाल नेहरू उन्नत वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र, बेंगलोर एवं चिकित्सा के क्षेत्र में मनीपॉल हॉस्पिटल ओपन हार्ट सर्जरी, नारायण हृदयालय बेंगलौर, किडनी फाउंडेशन बेंगलोर पूरे भारत में प्रसिद्ध है।

बृहस्पति के प्रभाव से यहाँ से निवासियों को धन-समृद्धि, वैभव संतान सुख प्राप्त होंगे। इस प्रांत के वासी धार्मिक प्रवृत्ति, उदार, दया युक्त भावनाओं से ओत-प्रोत रहेंगे। यहाँ के मंदिर इस बात के उदा. हैं जैसे शिव मंदिर, गोकर्ण का शिव मंदिर जो रावण द्वारा पूजित है, मैसूर का चामुंडेश्वरी मंदिर प्रसिद्ध हैं।

पूर्व दिशा का द्वार कर्नाटक के बेल्लारी नगर से है। राजनैतिक दृष्टिकोण से संपूर्ण भारत में यह नगर प्रसिद्ध है। वर्तमान में गांधी परिवार का गढ़ माना जाता है। जिसके कारण बेल्लारी के निवासी तथा कर्नाटक राज्य के निवासी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व अन्य सभी क्षेत्रों में लगातार सफलता व प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के दृष्टिकोण से प्राचीन काल से इस राज्य में ऋषि-मुनि, आचार्यों का बोलबाला रहा है। प्रसिद्ध न्यायविद् बिजनानेश्वर, महान धार्मिक नेता बासवेश्वर तथा शंकर रामनुजाचार्य आदि विद्वान प्रसिद्ध धार्मिक आचार्य हैं। वर्तमान में प्रसिद्ध धार्मिक जैन धर्म के आचार्य श्री विद्या सागर जी कर्नाटक प्रांत के ही हैं। धर्म के साथ-साथ कर्नाटक राज्य को इस द्वार ने संस्कृति एवं साहित्य में प्रसिद्धी दिलाई है। प्राचीन काल से ही यहाँ का साहित्य कन्नड़ साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य एवं सल्तनत काल में उर्दू व फारसी साहित्य भी साहित्य की दृष्टि से श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। जिनमें जैन धर्म की ग्रंथ रचना 'जैन आगम्' एवं 'श्रीभाष्य' रामानुज द्वारा लिखित रचना है।

बृहस्पति ग्रह के अंतर्गत इस द्वार के शुभ प्रभाव के कारण प्राचीन काल से वर्तमान काल तक यहाँ के निवासी शुभ फलों को प्राप्त करते आए हैं। सभी धर्मों का समन्वय इस राज्य में व्याप्त है। सत्य गुणों से प्रभावित यहाँ के निवासी सुख-समृद्धि, उत्तम स्वास्थ्य ज्ञान व शिक्षा को प्राप्त करेंगे।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार सूर्य देवता के अंतर्गत आता है जिसके प्रभाववश इस क्षेत्र के निवासी प्रभावशाली, तेजस्वी, क्रोधी होंगे। यहाँ के राजनेता अपनी सत्ता स्थापित करेंगे एवं राजनीतिक रूप से प्रभावशाली होने के कारण उद्योग एवं शिक्षा का स्तर उच्च होगा। सूर्य एवं बृहस्पति के प्रभाव के कारण सोने की खाने यहाँ पाई जाती हैं। यह क्षेत्र सम्मानीय क्षेत्र होगा, विश्व में इस क्षेत्र का व्यवसायिक व शैक्षणिक दृष्टि से नाम होगा।

तृतीय प्रवेश द्वार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा से - यह द्वार क्षेत्र मंगल एवं चंद्र ग्रह के अंतर्गत आता है। यह दक्षिण-पूर्वी आग्नेय दिशा द्वार कर्नाटक राज्य के लिए कष्टकारी है। यह आग्नेय दिशा द्वार कर्नाटक के लिए निकटतम राज्यों से विवाद, शत्रुओं से कष्ट, अपराध एवं असामाजिक तत्वों को बढ़ावा देने वाला द्वार है। इस द्वार के अशुभ फलस्वरूप कर्नाटक के समीप तामिलनाडु राज्य से राजनैतिक विवाद बना रहेगा। इसका उदाहरण - आग्नेय दिशा से कावेरी नदी का आगमन है जिसके कारण कावेरी विवाद राजनैतिक पृष्ठभूमि पर हमेशा गर्म रहता है। इसके फलस्वरूप राजनैतिक स्थिरता का अभाव इस राज्य को सहन करना पड़ेगा। इस प्रांत को अनेक कार्यों में, योजनाओं में सरकार द्वारा उपेक्षित भी होना पड़ेगा। तस्करी, कालाबाजारी के कारण यहाँ के निवासियों को अपराधियों से व नक्सलवादियों से जूझना पड़ सकता है। यह क्षेत्र खनिज संपदा, वन संपदा से समृद्ध है परंतु अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पूर्णतः लाभ से वंचित रह सकता है।

यह द्वार क्षेत्र मंगल व चंद्र ग्रह के अंतर्गत आने से यहाँ के निवासियों को मानसिक, हृदय, रक्त, त्वचा संबंधी बीमारियों से जूझना पड़ेगा। मंगल के प्रभाव के कारण खनिज संपदा से कर्नाटक प्रांत को अधिक लाभ होगा। यहाँ के चंदन वन, कोलार की सोने की खानें इसे समृद्धता प्रदान करती हैं। चंद्रमा के प्रभाववश यहां के निवासी चंचल प्रवृत्ति के, भावुक सौंदर्य प्रिय व साहित्य प्रिय होंगे।

यह दिशा द्वार पराक्रम, ऊर्जा, आरोग्यता प्रदान करता है। इस दिशा द्वार के फलस्वरूप कर्नाटक प्रांत की राजधानी बैंगलूर शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र में संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से ही यह शहर प्रसिद्ध है। यहाँ वास्तुकला के उत्कृष्ट स्थल मौजूद हैं। द्वार दोष होने के कारण भले ही प्राचीनकाल में शत्रुओं से लगातार बाधित होने वाला यह शहर आज भारत का पांचवा सबसे बड़ा

एवं प्रमुख औद्योगिक शहर है। मंगल ग्रह के प्रभाववश यहाँ विमान, टेलीफोन व बिजली संबंधित कार्यों के उद्योग प्रमुख हैं जो कर्नाटक को संपन्नता प्रदान करते हैं।

वास्तुशास्त्र के देवता चक्र के अनुसार यह द्वार-क्षेत्र मृश देवता के अंतर्गत आता है। जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र के निवासी क्रूर स्वभाव वाले होते हैं।

चतुर्थ प्रवेश द्वार दक्षिण दिशा से - यह द्वार क्षेत्र बुध व शनि ग्रह के अंतर्गत आता है। दक्षिण दिशा का यह द्वार कर्नाटक राज्य के लिए अत्यंत शुभकारी है। शनि व बुध की आपसी मित्रता जिसके फलस्वरूप यहाँ के चंदन व सागौन के वन, बुध ग्रह के प्रभाव के कारण भूमि से उत्पन्न जड़ी बूटी, वृक्ष जंगली क्षेत्र, शनि के प्रभाववश यहाँ की खनिज संपदा ने कर्नाटक राज्य को संपन्नता प्रदान की है। बुध के प्रभाववश यहाँ के निवासी वाणी एवं बुद्धि के धनी हैं। शनि के प्रभाववश मेहनती व परोपकारी धार्मिक, योग व ज्ञान दर्शन से युक्त विचारों वाले हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार यह दिशा द्वार धन-धान्य, समृद्धि व शक्ति कर्नाटक प्रांत के निवासियों को लगातार प्रदान कर रहा है।

दक्षिण में स्थित कर्नाटक राज्य के नगर त्याग, बलिदान, पराक्रम, धर्म - संस्कृति व धर्म - आस्था के केन्द्र रहे हैं। मैसूर, मांड्या, श्रवणबेलगोला अत्यंत प्राचीन नगर हैं। मैसूर का उल्लेख महाभारत में है। यहाँ के मंदिर वास्तुकला के उत्कृष्ट उदा. हैं। हलेबिडु में स्थित होयशालेश्वर मंदिर सेंट फिलोमेनांस चर्च - मैसूर व वराहमंदिर प्रसिद्ध हैं।

बुध ग्रह के प्रभाव के कारण यहाँ के निवासी कृषि कार्य व चिकित्सा कार्य में श्रेष्ठ, वाक-पटुता में श्रेष्ठ, स्पष्टवादी, भावुक व उदार होंगे। शिक्षा के दृष्टिकोण से यह राज्य अन्य राज्यों से श्रेष्ठ रहेगा।

शनि के प्रभाववश इस क्षेत्र के निवासियों को मजदूर वर्ग अर्थात् भूमि से जीविका के साधनों को अपनाना पड़ सकता है। शीत, वात, उदर विकारों से, पैरों में कष्ट आदि से शारीरिक कष्ट हो सकते हैं। यह दक्षिण द्वार कर्नाटक प्रांत को अन्य राज्यों से एवं अन्य देशों से धन-धान्य प्रदान करने वाला द्वार है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र बृहत्क्षत देवता के अंतर्गत आता है, जिसके प्रभाववश इस प्रांत में रहने वाले लोग समझदार होते हैं एवं बुध देव के प्रभाव से अच्छे व्यवसायी होते हैं।

पंचम द्वार दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा से - कर्नाटक प्रांत का यह द्वार क्षेत्र राहु ग्रह के अंतर्गत आता है। शास्त्रानुसार यह द्वार क्षेत्र कर्नाटक राज्य को आर्थिक संपन्नता तो प्रदान करेगा परंतु वास्तुदोष के कारण राजनैतिक अस्थिरता बनी रहेगी। यहाँ का यह द्वार क्षेत्र मंगलौर बंदरगाह में है जो अन्य राज्यों से व अन्य देशों से जोड़ने वाला सेतु है। जिसका लाभ कर्नाटक की अपेक्षा अन्य राज्य व अन्य देश उठायेंगे। राहु के प्रभाववश यह द्वार क्षेत्र चिकित्सा, तकनीकी, मशीनरी, मत्स्य पालन उद्योग जैसे कार्यों से जुड़ा रहेगा। यह द्वार क्षेत्र राहु के प्रभाव से त्याग बलिदान के कारण प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। माध्वाचार्य जैसे महान संत इसी भू भाग पर जन्मे तथा भगवान श्री कृष्ण की भक्ति स्थली उडुपी है जो इस द्वार क्षेत्र के अंतर्गत आता है। मंगलौर बंदरगाह आय के स्रोतों का केन्द्र बिन्दु है।

द्वार क्षेत्र में दोष से वास्तुशास्त्र के अनुसार शत्रु भय, अन्य राज्यों से विवाद, असामाजिक तत्वों से कष्ट इस क्षेत्र के निवासियों को उठाना पड़ेगा। राहु के अशुभ प्रभाववश वहाँ के निवासियों को मानसिक रोग, अपंगता, उदर रोग इत्यादि रोगों का सामना करना पड़ सकता है। नैऋत्य क्षेत्र में जल स्थान का संचय अर्थात् समुद्र तट के निकट होने से रुत्री-पुरुष वर्ग के लिए व्याधिकारक, पूर्ण आयु में दोष, रोगों में वृद्धिकारक होगा। कर्नाटक के लिए आर्थिक स्रोत का द्वार यह नैऋत्य द्वार ही कहा जायेगा।

इस द्वार क्षेत्र के निवासी धर्म आस्था व त्याग के लिए प्रसिद्ध हैं। दसवीं सदी का मंगलादेवी मंदिर, सेंट एलॉयसिस चर्च तथा मूदा विदिरे में जैनियों के काशी के नाम से प्रसिद्ध 18 जैन मंदिर हैं। उल्लाल जामा मस्जिद मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। प्रसिद्ध मुकाविका देवी मंदिर कोल्लुर में स्थित है।

यह द्वार क्षेत्र वास्तु शास्त्रानुसार पितृ देवता के अंतर्गत आता है जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासियों की आयु सामान्य से कम ही होती है।

षष्ठम पश्चिम दिशा से समुद्री द्वार - कर्नाटक प्रांत का यह द्वार बृहस्पति ग्रह के अंतर्गत आता है। यह द्वार क्षेत्र पश्चिमी वायव्य में शुभ एवं पश्चिमी नैऋत्य में अशुभ माना जाता है। कर्नाटक प्रांत का यह द्वार क्षेत्र मिश्रित फल देने वाला है अर्थात् शुभ व अशुभ दोनों फलों को प्रदान करेगा। पश्चिम दिशा धनवृद्धि दायक तो है परंतु वास्तुशास्त्र के अनुसार यह पितृ स्थान दिशा क्षेत्र होने के कारण राजभय (राजनीति में संघर्ष), विकार तथा पापवृद्धि दायक, रोगों की वृद्धि, मृत्यु दर में वृद्धि एवं धन के संचय में संघर्ष प्रदान करने वाला द्वार क्षेत्र है।

कारवाड़ जो कर्नाटक प्रांत का पश्चिम दिशा से प्रमुख प्रवेश द्वार है। द्वार का विशेष फल यह है कि यह क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ सर्वप्रथम मलमल उद्योग की शुरुआत हुई थी। यहाँ लौह चुम्बकीय कारखानें एवं सागौन, प्लाई, लकड़ी के प्रसिद्ध कारखानें स्थित हैं। व्यापार की दृष्टि से यह पश्चिम द्वार खनिज पदार्थ व कारखानों से धन प्रदान करने वाला द्वार क्षेत्र है।

भटकल द्वार क्षेत्र, जो पश्चिम दिशा से ही है, त्याग, धर्म से पूर्ण है एवं यहाँ प्रसिद्ध प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें हैं जो धर्म आस्था की केन्द्र बिन्दु हैं। जैसे - जैन स्मारक, मुरदेश्वर स्मारक इसके उदा. है। इस पश्चिम दिशा के द्वार क्षेत्र में वास्तुदोष होने के कारण अन्य राज्यों के वासियों से असामाजिक तत्वों से इस क्षेत्र में निवास करने वालों को भय रहेगा। उदर, वात, शीत, अपंगता आदि रोगों से शारीरिक कष्ट रहेंगे। यह दिशा आचार-विचार को प्रभावित करने वाली दिशा है अतः यहाँ के निवासियों को मानसिक अशांति व दूषित विचारों का सामना करना पड़ सकता है। जिसके फलस्वरूप उस क्षेत्र के निवासी तस्करी, चोरी, लूटपाट जैसे निम्न कार्यों से कष्ट पायेंगे या जुड़े रहेंगे। इसी द्वार क्षेत्र के कारण भटकल तस्करी जैसे कार्यों में संलग्न है, जहाँ से सोने एवं इलेक्ट्रानिक वस्तुओं की तस्करी की जाती है।

वास्तु शास्त्र अनुसार यह द्वार क्षेत्र पुष्पदंत देवता के अधिकार क्षेत्र में आता है, जो धनवृद्धि कारक हैं।

सप्तम द्वार उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा से - कर्नाटक प्रांत के उत्तर पश्चिम वायव्य द्वार का प्रतिनिधि ग्रह मंगल है। पश्चिमी वायव्य का यह द्वार क्षेत्र प्राणियों के जीवन व विचार धारा पर प्रभाव डालता है। वायव्य क्षेत्र में स्थित प्राकृतिक स्थल जैसे धारप्रभा नदी के द्वारा निर्मित गोकाक प्रपात है एवं यहाँ के वनों से प्राप्त होने वाली वायु कर्नाटक राज्य के लिए उत्तम विचार व स्वास्थ्य प्रपात है एवं यहाँ के वनों से प्राप्त होने वाली वायु कर्नाटक राज्य के लिए उत्तम विचार व स्वास्थ्य प्रदान करने वाली है। यह द्वार क्षेत्र व्यापार के लिए आय के स्रोतों को प्रदान करने वाला द्वार क्षेत्र है। यहाँ के निवासी परोपकारी विचारधारा वाले, मित्रता एवं संबंधों का पूर्ण निर्वाह करनेवाले, व्यापार से, संगीत, सिनेमा आदि क्षेत्रों से, वन से उत्पन्न वस्तुओं से, खनिज पदार्थों से, कृषि से धन का अर्जन करेंगे।

वास्तु अनुसार यह द्वार क्षेत्र कर्नाटक राज्य के निवासियों को भावुक एवं धार्मिक विचारधारा वाला बनाता है। यह द्वार क्षेत्र कर्नाटक राज्य को शुभफल प्रदान करने वाला है एवं सभी क्षेत्रों में सफलता प्रदान करने वाला द्वार क्षेत्र है। यह द्वार क्षेत्र असुर देवता के क्षेत्र में आता है जिसके प्रभाव से इस क्षेत्र में भयानक विद्रोह, राजनैतिक संकट उत्पन्न हो सकते हैं।

अष्टम् द्वार उत्तर दिशा से - कर्नाटक प्रांत का यह क्षेत्र बृहस्पति एवं शनि ग्रह के अंतर्गत आता है। कर्नाटक प्रांत के लिए उत्तर दिशा का यह द्वार क्षेत्र अत्यंत शुभफलों को प्रदान करने वाला है एवं ऐश्वर्यता व धन प्रदान करने वाला है। वास्तुशास्त्रानुसार इस दिशा का द्वार कर्नाटक राज्य को धन-संपन्नता के साथ-साथ आरोग्यता, उत्तम विचार, स्त्री सुख, माता सुख एवं धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रदान करने वाला है।

प्राचीन काल से यहाँ के धर्म-आस्था के केन्द्र जैसे विट्ठल मंदिर, गोल-गुंबज, ऐहोले के शिलालेख, जामा मस्जिद एवं अन्य ऐतिहासिक स्थल व प्राचीन मंदिर धर्म के प्रतीक हैं। धन प्रदान करने के लिए यह द्वार क्षेत्र कर्नाटक राज्य का प्रमुख द्वार क्षेत्र है इस द्वार क्षेत्र से विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है एवं रेशम उद्योग के द्वारा भी धन का आगमन इस द्वार क्षेत्र से होता है।

बृहस्पति ग्रह के कारण धर्म क्षेत्र में यह राज्य प्रसिद्ध है साथ ही शिक्षा, तकनीक, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में भी राज्य प्रसिद्ध है। बृहस्पति के कारण कर्नाटक राज्य शिक्षा व औद्योगिक क्षेत्र में, धर्म व संस्कृति के क्षेत्र में विशेष स्थान को प्राप्त करेगा।

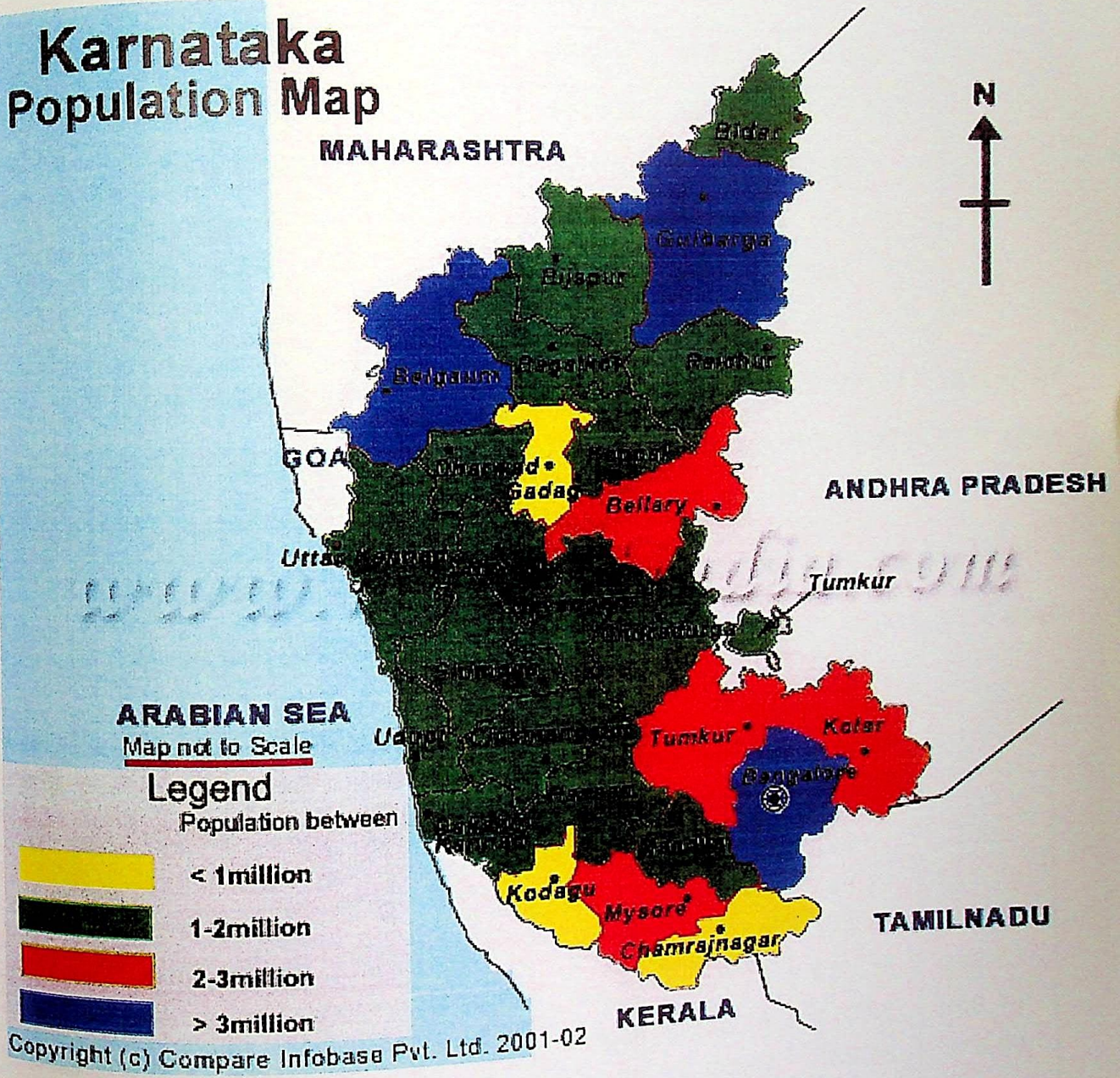
शनि के प्रभाववश इस प्रांत के निवासी त्याग, बलिदान, सेवाकार्य के लिए प्रसिद्ध रहेंगे। यहाँ के निवासी शनि से संबंधित क्षेत्र जैसे औद्योगिक मशीनरी, कृषि, सिनेमा, खनिज पदार्थ आदि क्षेत्रों से धन-लाभ प्राप्त करते हुए संपन्नता को प्राप्त करेंगे।

वास्तुशास्त्र के अनुसार यह द्वार क्षेत्र सोम, मुख्य देवता के अंतर्गत आता है एवं एक द्वार जो बोरी नदी से है जो भल्लाट देव का क्षेत्र है। यह तीनों द्वार राज्य को धार्मिकता की ओर ले जाते हैं एवं मुख्य देव के प्रभाव से यहाँ के वासियों को संतान सुख प्राप्त होगा एवं भल्लाट देव के प्रभाव के फलस्वरूप राज्य को धन-संपन्नता प्राप्त होगी।

Kerala Population Map



Karnataka Population Map



क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरे स्थान पर आता है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत के दक्षिणी प्रांत केरल एवं कर्नाटक भी अधिक जनसंख्या वाले प्रांत हैं। केरल क्षेत्रफल के अनुपात में अधिक आबादी वाला प्रांत है एवं कर्नाटक प्रांत का सभी प्रदेशों में जनसंख्या की दृष्टि से आठवाँ स्थान है।

सारणी क्र. 1

विवरण	इकाई	केरल	कर्नाटक
क्षेत्रफल	वर्ग कि.मी.	38,855	1,90,500
भारत के क्षेत्रफल के अनुपात में	प्रतिशत	1.18	5.83
तटीय क्षेत्र	कि.मी.	590	560

केरल प्रांत का कुल क्षेत्रफल 38,855 वर्ग कि.मी. है। यह पूरे देश के क्षेत्रफल का 1.18 % है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की जनसंख्या 290.99 लाख थी जो 2001 में बढ़कर 318.41 लाख हो गई अर्थात् जनसंख्या में 9.42 % की वृद्धि हुई।

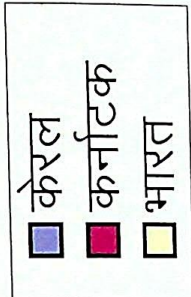
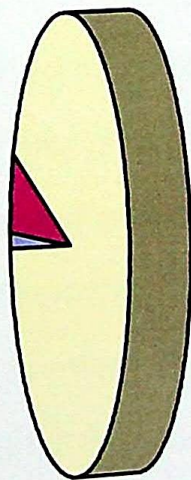
कर्नाटक प्रांत का कुल क्षेत्रफल 190,500 वर्ग कि.मी. है। यह पूरे देश के क्षेत्रफल का 5.83 % है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार इस प्रदेश की जनसंख्या 449.77 थी जो 2001 में बढ़कर 527.33 लाख हो गई अर्थात् 17.24 % की वृद्धि हुई।

सारणी क्र. 2

विवरण	इकाई	केरल		कर्नाटक	
		1991	2001	1991	2001
कुल जनसंख्या	लाख	290.99	318.41	449.77	527.33
पुरुष जनसंख्या	लाख	142.89	154.69	229.52	268.56
महिला जनसंख्या	लाख	148.10	163.73	220.25	258.77
ग्रामीण जनसंख्या	लाख	214.18	235.75	310.69	348.14
शहरी जनसंख्या	लाख	76.80	82.67	139.08	179.20
लिंग अनुपात	लाख	1036	1058	960	964
(महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष)					
शिशु मृत्यु दर	प्रतिशत	7.5	16.3	13.9	51.5
जनसंख्या वृद्धि दर	प्रतिशत	14.32	9.42	21.12	17
जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग कि.मी.)	प्रतिशत	749	819	235	275

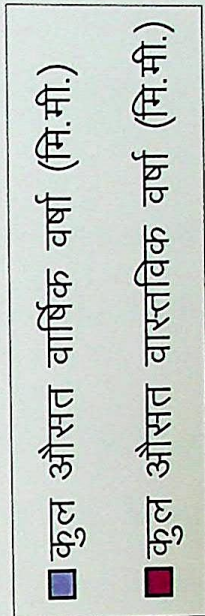
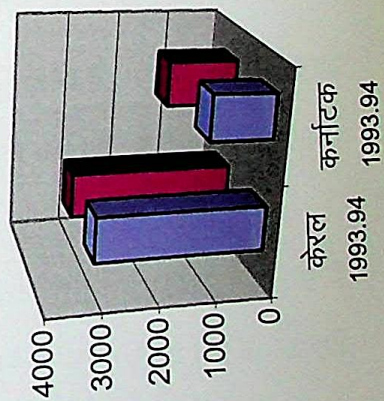
केरल एवं कर्नाटक का क्षेत्रफल (सारणी - 1) का रेखाचित्र

भारत के क्षेत्रफल के अनुपात में केरल एवं कर्नाटक (प्रतिशत)



केरल एवं कर्नाटक प्रांत में वार्षिक वर्षा (सारणी-10) का रेखाचित्र

कुल औसत वर्षा (मि.मी.)



उपर्युक्त सारणी के आधार पर केरल प्रांत में 1991 की जनगणना के अनुसार पुरुष जनसंख्या 142.89 लाख थी जो वर्ष 2001 में 154.69 लाख हो गई एवं महिला जनसंख्या 1991 में 148.10 लाख थी वर्ष 2001 में 163.73 लाख हो गई। केरल में जनगणना के अनुसार पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की जनसंख्या का प्रमाण अधिक है। केरल में 1991 में महिला जनसंख्या पुरुषों की जनसंख्या से 3.65 % अधिक थी जो 2001 में लगभग 5.84 % हो गई।

कर्नाटक प्रांत में 1991 की जनगणना के आधार पर पुरुष जनसंख्या 229.52 लाख थी एवं 2001 में 268.56 लाख हो गई। महिला जनसंख्या 1991 में 220.25 एवं 2001 में 258.77 हो गई। कर्नाटक में महिलाओं की तुलना में पुरुषों की जनसंख्या अधिक है।

केरल प्रांत में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात शहरी जनसंख्या के अनुपात से अधिक है अर्थात् अधिकतर लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं यही स्थिति कर्नाटक प्रांत की भी है। इसका कारण यह है कि केरल व कर्नाटक दोनों ही प्रांत कृषि एवं वन्य क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं, जिसके प्रभाव से अधिकांश निवासी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। केरल प्रांत में 1991 में ग्रामीण जनसंख्या 214.18 लाख थी एवं कर्नाटक में 310 लाख थी। सन् 2001 में केरल में 235.75 लाख हो गई एवं कर्नाटक में 348.14 लाख हो गई।

शहरी जनसंख्या 1991 में केरल में 76.80 लाख थी एवं कर्नाटक में 139.08 थी। 2001 में केरल में 82.67 लाख हो गई एवं कर्नाटक में 179.20 लाख हो गई।

लिंग अनुपात की दृष्टि से (महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष) केरल में 1991 में 1036 एवं कर्नाटक में 960 महिलाएँ थी। 2001 में केरल में 1058 एवं कर्नाटक में 964 महिलाएँ हैं। दोनों प्रांतों की तुलना में केरल में महिलाओं की जनसंख्या अधिक है।

उपर्युक्त सारणी के अनुसार केरल एवं कर्नाटक प्रांत की जनसंख्या वृद्धि दर 1991 में केरल में 14.32 प्रतिशत एवं कर्नाटक में 21.12 प्रतिशत थी। जनसंख्या वृद्धि दर केरल में 2001 में 9.42 एवं कर्नाटक में 17 % थी।

केरल में शिशु मृत्यु दर 1991 में 7.5 प्रतिशत व 2001 में 16.3 % हो गई एवं कर्नाटक में 1991 में 13.9 व 2001 में 51.5 % हो गई। कर्नाटक में शिशु मृत्यु दर का प्रतिशत अधिक है।

उपर्युक्त सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि केरल प्रांत की जनसंख्या का घनत्व 1991 में 749 था व कर्नाटक का 235 प्रति वर्ग किलोमीटर था जो 2001 में केरल में 819 व कर्नाटक में 275 प्रति वर्ग कि.मी. हो गया।

भारत के किसी राज्य में प्रति वर्ग कि.मी. इतने व्यक्ति नहीं रहते, जितने केरल राज्य में रहते हैं। केरल, कर्नाटक की तुलना में जनसंख्या व घनत्व की दृष्टि से अधिक आबादी वाला राज्य है।

साक्षरता - सारणी क्रमांक-3

विवरण	इकाई प्रतिशत	केरल		कर्नाटक	
		1991	2001	1991	2001
साक्षरता	-	89.81	90.92	56	67.04
पुरुष साक्षरता	-	93.62	94.20	67.3	76.29
महिला साक्षरता	-	86.17	87.86	44.3	57.45

उपर्युक्त सारणी के अनुसार केरल की साक्षरता का प्रतिशत वर्ष 1991 में 89.81% था एवं कर्नाटक में 56 % था जो वर्ष 2001 में केरल में 90.92 % व कर्नाटक में 67.04% हो गया।

पुरुष साक्षरता का प्रतिशत केरल में 1991 में 93.62 था जो वर्ष 2001 में 94.20 हो गया एवं कर्नाटक में वर्ष 1991 में पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 67.3% व 2001 में 76.29 % हो गया।

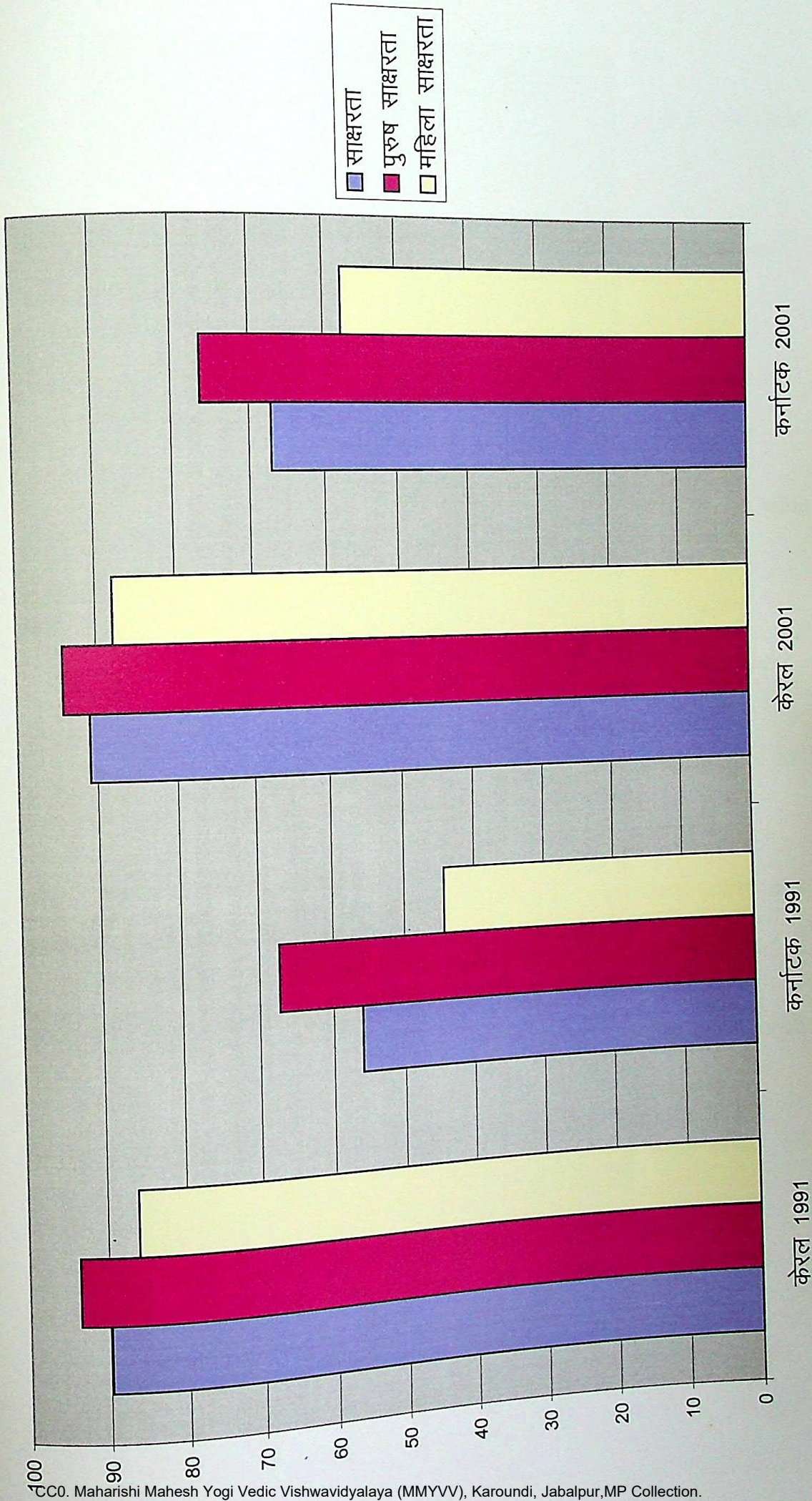
महिला साक्षरता केरल में 1991 में 86.17 % थी व 2001 में 87.86 % हुई व कर्नाटक में 1991 में 44.3 व 2001 में 57.45 % हो गई अर्थात् केरल में साक्षरता का प्रतिशत कर्नाटक की तुलना में अधिक है।

सारणी - 4

जनसंख्या का व्यवसायिक वर्गीकरण - 1991

क्र.	व्यवसाय	केरल	कर्नाटक
1	कृषक	10,15,983	59,15,633
2	कृषक श्रमिक	21,20,452	49,99,959
3	पशुधन एवं अन्य कार्यों में संलग्न	7,67,252	6,16,733
4	खदान कार्यों में संलग्न	82,268	1,16,369
5	लघु उद्योगों में संलग्न	2,13,854	3,22,151
6	लघु उद्योगों के अतिरिक्त अन्य कार्यों में संलग्न	9,62,429	15,28,975
7	निर्माण कार्यों में संलग्न	3,32,340	4,27,972
8	व्यापार एवं वाणिज्य	10,49,493	13,79,954
9	परिवहन एवं संचार	4,97,338	4,54,964
10	अन्य सेवाओं में संलग्न	12,59,678	15,29,407

केरल एवं कर्नाटक में पुरुष व महिला साक्षरता का प्रतिशत (सारणी - 3) का रेखाचित्र



जनसंख्या का व्यवसायिक वर्गीकरण - 1991 (सारणी - 4) का रेखाचित्र



उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि केरल प्रांत की कुल 290.99 जनसंख्या में से 12.2 % कृषक एवं 25.5 % कृषक श्रमिक है एवं कर्नाटक की कुल 449.77 जनसंख्या में से 34.2 % कृषक एवं 28.9 % कृषक श्रमिक है। दोनों प्रांतों की तुलना में कर्नाटक में कृषकों की संख्या का प्रतिशत लगभग तीन गुना अधिक है व कृषक श्रमिक का प्रतिशत लगभग बराबर हैं।

पशुधन एवं अन्य कार्यों में संलग्न केरल में 9.2 % जनसंख्या इस कार्य में लगी हुई है व कर्नाटक में 8.4 % जनसंख्या इस कार्य से जुड़ी हुई है।

खदान कार्यों में संलग्न जनसंख्या केरल में 0.9 % तथा कर्नाटक में 0.6 % है।

लघु उद्योगों में संलग्न जनसंख्या केरल में 2.5 % एवं कर्नाटक में 1.8 % जनसंख्या है। लघु उद्योगों के अतिरिक्त अन्य कार्यों में संलग्न जनसंख्या केरल में 11.5 % व कर्नाटक में 8.8 % है।

निर्माण कार्यों में संलग्न जनसंख्या केरल में 4.0 % एवं कर्नाटक में 2.4 % है। व्यापार एवं वाणिज्य में संलग्न केरल में 12.6 % व कर्नाटक में 7.9 % है। परिवहन एवं संचार कार्यों में संलग्न जनसंख्या केरल में 5.9 % व कर्नाटक में 2.6 % है। इनके अतिरिक्त अन्य सेवाओं में संलग्न जनसंख्या केरल में 15.1 % व कर्नाटक में 8.8 % है।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार कुछ क्षेत्रों में केरल प्रांत का प्रतिशत कर्नाटक प्रांत के प्रतिशत से अधिक होने का कारण दोनों प्रांत के क्षेत्रफल व जनसंख्या का अंतर है। केरल की अपेक्षा कर्नाटक का क्षेत्रफल व जनसंख्या अधिक है।

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

औद्योगिक-क्षेत्र

भारत को हमेशा कृषि प्रधान देश कहा जाता है, क्योंकि यहाँ की जलवायु व उपजाऊ भूमि कृषि-कार्य के लिए उपयुक्त है किंतु भारत सिर्फ कृषि ही नहीं "उद्योग" प्रधान देश भी है। यदि हम इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से मानव ने अपनी आवश्यकता के अनुसार वस्तुओं का निर्माण करना प्रारंभ कर दिया था। मानव ने झोपड़ी से लेकर पत्थर व मिट्टी के घर बनाने के लिये उपयोगी वस्तुओं एवं औजारों का निर्माण कृषि कार्यों के लिए जरूरी औजार इत्यादि का निर्माण प्राचीन काल से ही प्रारंभ कर दिया था। "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है" यह कहावत यह सिद्ध करती है कि किसी भी कार्य को करने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उसका निर्माण भी हो जाता है। प्राचीन समय से ही कुटीर उद्योग की शुरुआत हो चुकी थी जिनमें हाथकरघा, बाँस की वस्तुएँ, मिट्टी के बर्तन होते थे। इन कुटीर उद्योगों के साथ-साथ बड़े उद्योगों की शुरुआत हो गई। आज भारत भी औद्योगिक क्षेत्र में दिनोदिन उन्नति कर रहा है।

"उद्योग" शब्द के अंतर्गत खदान कार्य, उत्पादन एवं बिजली एवं निर्माण आदि आते हैं, परन्तु इनमें 'उत्पादन' शब्द के अंतर्गत खाद्य, बिजली, कपड़ा, रसायन, लोहा, जूट आदि सभी प्रकार के उत्पादन आते हैं, अतः मैंने इसमें केरल एवं कर्नाटक के साथ ही साथ संपूर्ण भारत के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर के आधार पर इन राज्यों की औद्योगिक परिदृश्य पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

सारणी क्रमांक 5

केरल एवं कर्नाटक में सकल घरेलू-उत्पाद की वृद्धि दर

(भारत की तुलना में)

वर्ष	केरल %	कर्नाटक %	भारत %
1981-82 से 1990-91	4.25	15.10	6.52
1991-92 से 1996-97	4.91	12.31	7.15

- ◆ सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 1980-81 के स्थिर मूल्य पर निकाली गई है।

केरल एवं कर्नाटक में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर (भारत की तुलना में) (सारणी - 5) का रेखाचित्र



उपरोक्त सारणी देखने पर हमें केरल एवं कर्नाटक की सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर में विगत 15 वर्षों में आए परिवर्तनों के बारे में जानकारी मिलती है। जिनकी तुलना भारत के कुल सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर से की गई है।

वर्ष 1981-1991 के दौरान केरल में वृद्धि दर 4.25 % तथा कर्नाटक में 15.1 % थी अर्थात् केरल से लगभग 10.85 % अधिक थी। यदि हम भारत की वृद्धि दर से केरल और कर्नाटक की तुलना करते हैं तो हम देखते हैं कि केरल की वृद्धि दर भारत की कुल वृद्धि दर से लगभग 2.27 % कम तथा कर्नाटक की वृद्धि दर 8.58 % अधिक है अर्थात् 1981-1991 के दौरान कर्नाटक ने ना केवल केरल की अपेक्षा लगभग 4 गुनी तेजी से वृद्धि की अपितु भारत की तुलना में भी लगभग 2 गुनी तेजी से वृद्धि की।

इसी प्रकार 1991-1996 के दौरान केरल की वृद्धि दर 4.91% हो गई अर्थात् इसमें लगभग 0.66 % की वृद्धि हुई परंतु कर्नाटक की वृद्धि दर में 2.79 % की कमी आई तथा यह 12.31 % हो गई जबकि 1991-96 के दौरान भारत की सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर में 0.63 % की वृद्धि हुई। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि इन पाँच वर्षों के दौरान केरल शनैः शनैः प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है। वृद्धि दर में 2.79 % की कमी के बाद भी कर्नाटक, केरल से लगभग 3 गुनी तेजी से प्रगति कर रहा है तथा संपूर्ण भारत की तुलना में वह लगभग 1.5 गुना अधिक है।

सारणी क्र.6

आय	इकाई	केरल		कर्नाटक	
		1993-94	1998-99	1993-94	1998-99
प्रति व्यक्ति आय	रुपए	7938	16062	7242	14909

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि केरल में 1993-94 में 7,938 रु. प्रति व्यक्ति वार्षिक आय थी एवं कर्नाटक में 7,242 रु. थी। 1998-99 में केरल में 16,062 रु. व कर्नाटक में 14,909 रु. हो गई अर्थात् दोनों ही प्रांतों में पाँच वर्षों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय लगभग दो गुनी हो गई।

1955 के लिए प्रस्तावित आरक्षण के अनुसार कि कर्जात्मक रूप से यह निर्धारित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है। इस निर्धारित आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है।

1955 के लिए प्रस्तावित आरक्षण के अनुसार कि कर्जात्मक रूप से यह निर्धारित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है। इस निर्धारित आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है।

1955 के लिए प्रस्तावित आरक्षण के अनुसार कि कर्जात्मक रूप से यह निर्धारित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है। इस निर्धारित आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है।

8 के अनुसार

वर्ष	आरक्षण			प्रकार	आरक्षण के लिए
	1955-56	1956-57	1957-58		
1955-56	2000	2000	2000	प्रकार	आरक्षण के लिए

1955 के लिए प्रस्तावित आरक्षण के अनुसार कि कर्जात्मक रूप से यह निर्धारित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है। इस निर्धारित आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है कि यह आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया है।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत की प्रतिव्यक्ति आय (सारणी - 6) का रेखाचित्र



केरल वासियों का खाड़ी देशों में निर्गमन (1976-90)

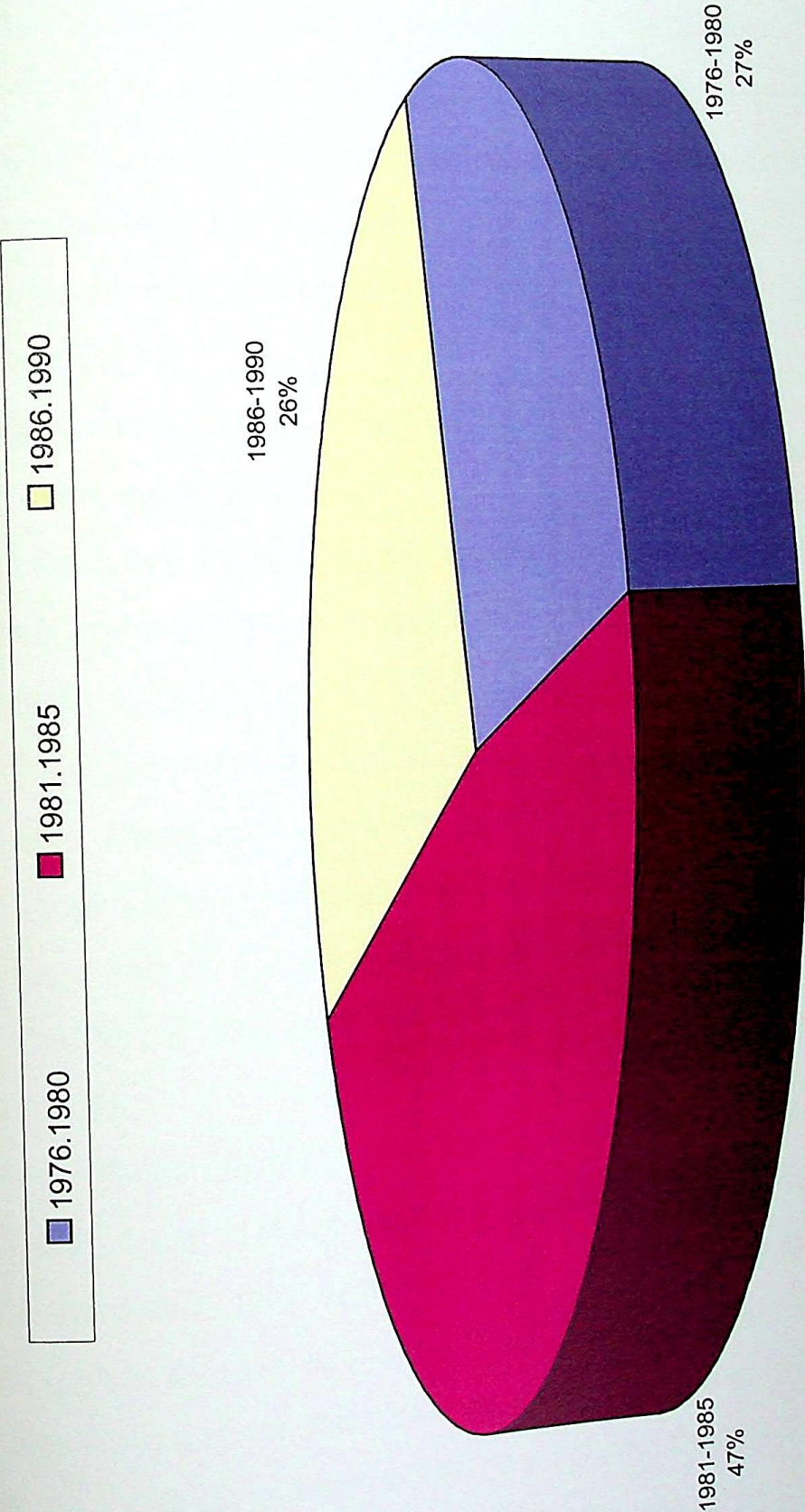
सारणी क्रमांक 8

वर्ष	व्यक्तियों की संख्या
1976-1980	2,51,650
1981-1985	4,46,949
1986-1990	2,39,122
कुल-	9,37,721

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है 1981 एवं 1985 के दौरान देशांतरण सर्वाधिक था। केरलवासियों में खाड़ी देशों के निर्गमन के लिए सर्वाधिक उत्साह इसी समय था। इस बात का ध्यान रखते हुए अप्रवासी व्यक्तियों के परिवार के उत्थान हेतु केरल में नीति-निर्माताओं को एक नीति बनानी पड़ी जिससे अप्रवासियों के परिवार के कल्याण के लिए सहयोग दिया जा सके। अक्टूबर 1983 में केरल-सरकार ने एक घोषणा की जिसमें अप्रवासियों के परिवारों के बच्चों को शिक्षा, आयकर-विभाग के विवादों को सुलझाना एवं उनको मकान बनाने हेतु जमीन उपलब्ध कराना, रेल व हवाई यात्रा किराये में रियायत देना एवं इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास केन्द्र केरल राज्य (KSIDC) द्वारा दो व्यक्तियों का प्रतिनिधि दल खाड़ी देश (मध्य पूर्व) में गया, ताकि अप्रवासियों को अपने गृह राज्य में औद्योगिक इकाई स्थापित करने हेतु प्रलोभित एवं प्रोत्साहित किया जा सके।

1986 के आंकड़ों के अनुसार खाड़ी देशों में जाने वाले केरलवासियों में लगभग 40.1 % अकुशल श्रमिक थे जो वहाँ भवन-निर्माण कार्य में, खेतिहर श्रमिक व घरेलु श्रमिक थे। अर्धकुशल श्रमिक 47.0 % थे, जो काष्ठकार, राजमिस्त्री, इस्पात जोड़ने वाले, पेंटर, ड्राइवर, लोहार इत्यादि थे। इनके अतिरिक्त 6.5 % निजी संस्थाओं में कार्य करने वाले थे एवं 5.2 % उच्चकुशल लोग थे जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों व अन्य उच्च स्थानों पर कार्यरत थे। अन्य कार्यों में संलग्न लोगों का प्रतिशत 1.2 % था।

केरलवासियों का खाड़ी देशों में निर्गमन (सारणी - 8) का रेखाचित्र



कृषि भूमि

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति, उपजाऊ भूमि व पर्याप्त वर्षा देश को कृषि के क्षेत्र से सम्पन्न बनाती है। भारत के दो प्रांत केरल एवं कर्नाटक दोनों ही कृषि व उद्योग के क्षेत्र में अग्रणी हैं। केरल प्रांत की भौगोलिक स्थिति व उर्वरा मिट्टी राज्य को कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। यहाँ की उत्पादित वस्तुएँ अन्य राज्यों व अन्य देशों में भी निर्यात की जाती हैं। केरल में मुख्य रूप से मसाले, मेवे, चाय व काफी का उत्पादन होता है। कर्नाटक प्रांत भी कृषि के क्षेत्र में अलग स्थान रखता है। यहाँ भी मुख्य रूप से चाय, कॉफी, गन्ना एवं मेवों का उत्पादन होता है। इनके अतिरिक्त कर्नाटक में फल एवं फूलों का उत्पादन भी अधिक मात्रा में होता है, इन्हें भी अन्य राज्यों में भेजा जाता है।

केरल एवं कर्नाटक दोनों प्रांतों की कृषि भूमि को सारणी में विभाजित किया गया है, जिनसे कृषि भूमि का अनुपात ज्ञात हो सके।

सारणी क्रमांक 9 जो अग्रलिखित है से यह स्पष्ट होता है कि केरल प्रांत का भौगोलिक क्षेत्र 38855 हेक्टे. है एवं कर्नाटक प्रांत का भौगोलिक क्षेत्र 1,90,500 हेक्टे. है जो केरल प्रांत से चार गुना अधिक है अर्थात् 393.5 % है।

दोनों प्रांतों के वन्य क्षेत्र में दृष्टि डालें तो 1993-94 में केरल प्रांत में कुल भूमि का 27.83 % वन्य क्षेत्र था एवं कर्नाटक प्रांत में 16.1 % वन्य क्षेत्र था किन्तु 1997-98 में केरल के वन्य क्षेत्र का प्रतिशत 27.83 % ही था एवं कर्नाटक प्रांत में 16.0 % हो गया अर्थात् 0.1% की गिरावट वन्य क्षेत्र में आई। इसका कारण क्षेत्र में बढ़ रही आबादी व प्राकृतिक संपदा का नष्ट होना है, किंतु कर्नाटक प्रांत का भौगोलिक क्षेत्र अधिक होने के कारण यह केरल प्रांत की वन संपदा से 183.2 % अर्थात् लगभग 2 गुना है।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत के अन्य कार्यों में प्रयुक्त भूमि पर नजर डालें तो 1993-94 में केरल में कुल भूमि का 7.94 % था एवं कर्नाटक में 6.3% था किंतु पाँच वर्षों में अन्य कार्यों में प्रयुक्त भूमि के प्रतिशत में अंतर आया है। 1997-98 में केरल 8.24 % एवं कर्नाटक में 6.7 % की वृद्धि हुई है।

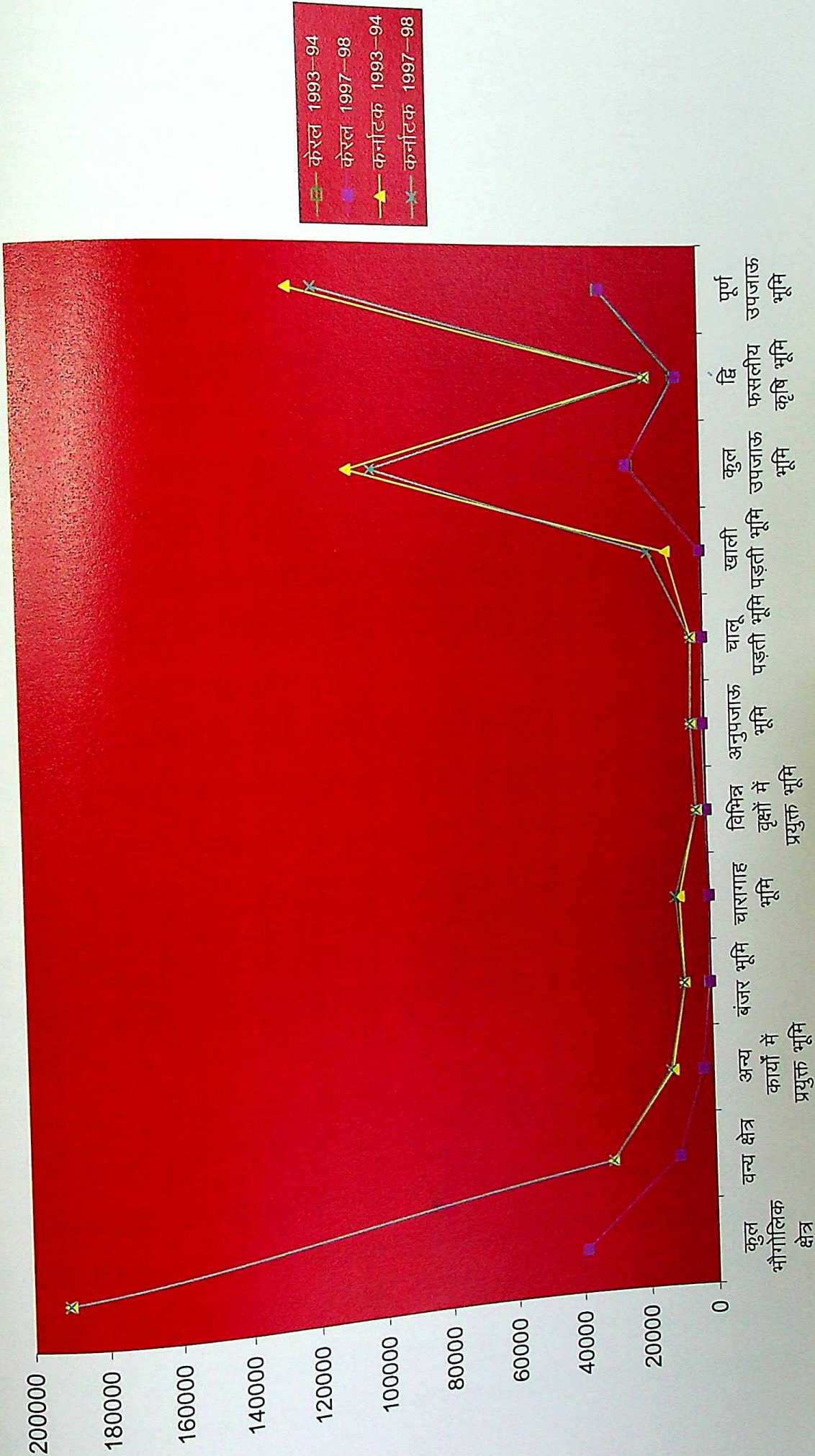
बंजर भूमि का क्षेत्र 1997-98 में केरल में 1.33 % था एवं कर्नाटक में 4.1 % था किंतु 1997-98 में केरल में 1.0 % हो गया एवं कर्नाटक में 4.2 % हो गया अर्थात् कर्नाटक में इन पाँच वर्षों में बंजर भूमि में 0.1 % की वृद्धि हुई है किंतु केरल में 0.33 % की गिरावट बंजर भूमि में आई है। केरल एवं कर्नाटक प्रांत में यह अंतर 1959 % है अर्थात् 5 गुना अधिक बंजर भूमि का क्षेत्र है। जिससे यह सिद्ध होता है कि केरल में बंजर भूमि गिरावट आ रही है एवं कृषि कार्य में प्रगति हो रही है।

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

सारणी क्रमांक 9

क्र.	विवरण	इकाई	केरल				कर्नाटक			
			1993-94	%	1997-98	%	1993-94	%	1997-98	%
1	कुल भौगोलिक क्षेत्र	00 हेक्टे	38,855		38,855		190,500		190,500	
2	वन्य क्षेत्र	00 हेक्टे	10,815	27.83	10,815	27.83	30,760	16.14	30630	16.0
3	अन्य कार्यों में प्रयुक्त भूमि	00 हेक्टे	3084	7.94	3203	8.24	12,170	6.38	12,840	6.74
4	बंजर भूमि	00 हेक्टे	515	1.33	389	1.00	8,000	4.19	8010	4.20
5	चारागाह (भूमि)	00 हेक्टे	16	0.04	8	0.02	8990	4.7	10,170	5.3
6	विभिन्न वृक्षों में प्रयुक्त भूमि	00 हेक्टे	367	0.94	220	0.57	3170	1.6	3130	1.6
7	अनुपजाऊ भूमि	00 हेक्टे	898	2031	651	1.67	4440	2.3	4390	2.3
8	चालू पडती भूमि एवं अन्य पडती भूमि	00 हेक्टे	287	0.74	277	0.71	3960	2.0	3990	2.0
9	खाली परती भूमि	00 हेक्टे	492	1.27	585	1.51	11120	5.8	16710	8.7
10	कुल उपजाऊ भूमि	00 हेक्टे	22381	57.60	22706	53.44	107890	56.6	1,00750	52.8
11	द्विफसलीय कृषि भूमि	00 हेक्टे	8046	20.71	6984	17.97	16430	8.6	16210	8.5
12	पूर्ण उपजाऊ भूमि	00 हेक्टे	30427	78.31	29690	76.41	124320	65.2	116960	61.3

केरल एवं कर्नाटक में भूमि का वर्गीकरण (सारणी - 9) का रेखाचित्र



दोनों प्रांतों में चारागाह (भूमि) की स्थिति 1993-94 में केरल में 0.04 % थी, कर्नाटक में 4.7% थी। 1997-98 में चारागाह (भूमि) केरल में 0.02 % कर्नाटक में 5.3 % हो गई, अर्थात् 5 वर्षों में केरल में चारागाह भूमि में 0.02 % की गिरावट आई एवं कर्नाटक में 0.06 % की वृद्धि हुई।

विभिन्न वृक्षों में प्रयुक्त भूमि 1993-94 में केरल 0.94 % एवं कर्नाटक में 1.06 % थी। 5 वर्षों में अर्थात् 1997-98 में यह केरल में 0.57 % हो गई, अर्थात् घट गई एवं कर्नाटक में 1.6 % ही है। जिससे यह पता चलता है कि कर्नाटक प्रांत वन संपदा व विभिन्न प्रकार के वृक्षों के लिए प्रयुक्त भूमि का उपयोग अधिक कर रहा है जिससे प्राकृतिक संपदा को बचाया जा सके एवं उसका पूर्ण लाभ ले सके। दोनों प्रांतों का यह अंतर 1322.7 % है।

अनुपजाऊ भूमि का क्षेत्र 1993-94 में केरल में 2.31% एवं कर्नाटक में 2.3 % था। किंतु 5 वर्षों में - 1997-98 में केरल में अनुपजाऊ भूमि का क्षेत्र 1.67 % हो गया अर्थात् अनुपजाऊ भूमि में गिरावट आई है जिससे उपजाऊ भूमि के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। कर्नाटक में यह अंतर 5 वर्ष बाद भी उतना ही था अर्थात् 2.3 % जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। केरल और कर्नाटक में अनुपजाऊ भूमि के प्रतिशत का अंतर 27.4 % है।

केरल में चालू पड़ती भूमि एवं अन्य पड़ती भूमि 1993-94 में 0.74 % थी, कर्नाटक में यह 2.0 % थी। किंतु 1997-98 में केरल में यह 0.71 % हो गई एवं कर्नाटक में यह 2.0% ही थी। इससे यह सिद्ध होता है केरल में उपजाऊ भूमि का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है एवं कर्नाटक में क्षेत्रफल के अनुपात में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। किंतु केरल और कर्नाटक में क्षेत्रफल के अनुपात में यह अंतर 1340.4 % है।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत में खाली परती भूमि का क्षेत्र 1993-94 में केरल में 1.27 % था एवं कर्नाटक प्रांत में 5.8 % था। 5 वर्षों में अर्थात् 1997-98 में केरल में यह 1.51 % हो गया जिसमें 0.24 % की वृद्धि हुई है एवं कर्नाटक में यह 8.7 % हो गया जिसमें 2.9 % की वृद्धि हुई। केरल एवं कर्नाटक में खाली परती भूमि का अंतर 476.16 % है।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत में कुल उपजाऊ भूमि का क्षेत्र 1993-94 में केरल में 57.9 % का एवं कर्नाटक में 56.6 % का है। 1997-98 में यह केरल में 58.44 % हो गया अर्थात् उपजाऊ भूमि के क्षेत्रके में 0.54 % की वृद्धि हुई है। कर्नाटक में 1997-98 में यह 52.8 % हो गया अर्थात् पाँच वर्षों में उपजाऊ भूमि क्षेत्र में 3.8 % गिरावट आई है किन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से केरल एवं कर्नाटक का यह अंतर 343.7% का है। कर्नाटक प्रांत में कृषि भूमि के जो गिरावट आई है उसका मूल कारण नगरों में

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

आवासीय स्थलों की कमी के कारण, औद्योगिक स्थलों की आवश्यकता के लिए कृषि भूमि को आवासीय व औद्योगिक स्थलों में परिवर्तित किया गया है। जिसके कारण कृषि भूमि के क्षेत्र में कमी आती जा रही है।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत में द्विफसलीय भूमि का क्षेत्र भी है जिनमें मौसम के अनुरूप फसलें पैदा की जाती हैं। जैसे 1993-94 में केरल में यह 20.7 % था एवं कर्नाटक में 8.6 % था। किन्तु 1997-98 में केरल में द्विफसलीय भूमि क्षेत्र 17.97 % हो गया अर्थात् 2.73 % की गिरावट आई है। कर्नाटक में 1997-98 में यह क्षेत्र 8.5% हो गया जिसमें 0.01% की गिरावट आई है। दोनों प्रांतों अर्थात् केरल और कर्नाटक का यह अंतर क्षेत्रफल की दृष्टि से 132.1% है।

केरल में कुल फसलीय क्षेत्र तथा कर्नाटक में 65.2% था। 1997-98 में केरल में कुल फसलीय भूमि का प्रतिशत 1.89 % घटकर 76.41% तथा कर्नाटक में 3.9% घटकर 61.3% हो गया।

केरल में कर्नाटक की तुलना में सूखे मसालों की पैदावार अधिक होती है जो भारत के बाहर भी निर्यात किए जाते हैं, जिससे केरल को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

सारणी क्र. 10

केरल एवं कर्नाटक प्रांत की औसत वर्षा

विवरण	इकाई	केरल		कर्नाटक	
		1993-94	1997-98	1993-94	1997-98
कुल औसत वार्षिक वर्षा	मि.मी.	3050	-	1139	-
कुल औसत वारस्तविक वर्षा	मि.मी.	3061	3119	1315	1265
कुल संचित क्षेत्र	00 हैक्टे.	32360	35051	232720	236270

निष्कर्ष

पिछले अध्याय केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर जिन तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई है, उनके आधार पर मुझे यह निष्कर्ष प्राप्त होते हैं कि केरल एवं कर्नाटक दोनों ही प्रांत भारत के दक्षिण में स्थित हैं। जिनकी सीमाएँ समुद्रतट को स्पर्श करती हैं फिर भी उनका सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिदृश्य बिल्कुल भिन्न हैं। इन प्रांतों की भौगोलिक स्थिति के अनुसार वास्तुशास्त्र के क्या शुभ व अशुभ प्रभाव इन प्रांतों पर पड़ रहे हैं वे निम्नलिखित हैं -

धर्म के क्षेत्र में - धर्म के क्षेत्र में दोनों ही प्रांत सभी धर्मों को आत्मसात किये हुए हैं। सभी धर्म व जाति के लोग इन प्रांतों में निवास करते हैं, किंतु धर्म क्षेत्र में यहाँ विभिन्नताएँ हैं।

केरल एवं कर्नाटक प्रांत की तुलना में केरल में हिन्दु धर्म के अतिरिक्त मुस्लिम व ईसाई धर्म का अधिक प्रचार-प्रसार है। 1991 में केरल में हिन्दुओं की जनसंख्या 57.28 %, मुस्लिम 23.33%, ईसाई 19.32 % एवं अन्य धर्म 0.01 % थे जिससे यह सिद्ध होता है केरल प्रांत के उपर्युक्त तीन धर्मों का अधिक स्थायित्व है। केरल में अरब व अन्य देशों का अत्याधिक प्रभाव पड़ा जिसके कारण मुस्लिम धर्म व ईसाई धर्म की अधिकता इस प्रांत में देखने को मिलती है। धर्म-परिवर्तन भी इस प्रांत में अधिक मात्रा में हुए हैं।

केरलवासी अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के हैं एवं केरल में स्थित धर्म व आस्था के प्रतीक वहाँ के धार्मिक स्थल, मंदिर इस बात के साक्षी हैं फिर भी केरल में धर्म परिवर्तन हो रहे हैं जिसका कारण वास्तुशास्त्र की प्रतिकूलता है।

कर्नाटक में भी अनेक धर्मों का समान रूप से प्रचार हुआ है। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच व छूत-अछूत का भेद यहाँ नहीं हुआ, इसलिए यहाँ कभी धार्मिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। धार्मिक स्थलों की भी कर्नाटक में कमी नहीं है सभी धर्मों के धर्म स्थल यहाँ पर स्थित हैं। इन दोनों प्रांतों की स्थिति धर्म के क्षेत्र में विपरीत क्यों है ?

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल एवं कर्नाटक प्रांत में धर्म के क्षेत्र में केरल प्रांत की स्थिति विपरीत है, अर्थात् वास्तु स्थिति दोष युक्त है। केरल में पूर्व व उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा जो वहाँ के वासियों की सकारात्मक ऊर्जा, एश्वर्यता एवं संपूर्णता, आध्यात्मिक ज्ञान, धर्म के प्रति श्रद्धा प्रदान करती है परंतु पूर्वी ईशान का कटा होना वास्तुदोष उत्पन्न करता है। जिसके अशुभ प्रभाव से वहाँ के

वासियों को उपरोक्त सुखों से वंचित रहना पड़ेगा एवं यह स्थिति संघर्ष की स्थिति, धर्म परिवर्तन एवं ऊँच नीच का भेदभाव जैसी स्थिति उत्पन्न करती है। केरल में धर्म परिवर्तन के यही कारण हैं।

केरल की तुलना में कर्नाटक प्रांत की वास्तुस्थिति धर्म के क्षेत्र में श्रेष्ठ हो रही है। उसका कारण कर्नाटक प्रांत की पूर्व व उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा हैं, जो कर्नाटकवासियों को धार्मिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करती हैं। कर्नाटक प्रांत की ईशान दिशा का विस्तृत होना एवं पूर्व दिशा की स्थिति केरल की अपेक्षा ज्यादा शुभ फल प्रदान करने वाली है अर्थात् यहाँ पूर्वी क्षेत्र हल्का एवं खुला हुआ है। जिससे पूर्व दिशा, जो अग्नि तत्व का आधार है, की ओर से कर्नाटक प्रांत के निवासियों को सूर्य की प्रखरता व उसकी सकारात्मक ऊर्जा के कारण धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्राप्त होती है अर्थात् वास्तुशास्त्र के अनुसार धर्म से जुड़ी हुई इन दोनों दिशाओं का कर्नाटक पर पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है।

द्वार क्षेत्र - केरल प्रांत का पूर्व दिशा का द्वार क्षेत्र शुक्र के अंतर्गत आता है, जिसके प्रभाव के कारण भी यहाँ के निवासी धर्म के क्षेत्र में संघर्षशील रहेंगे। केरल की तुलना में कर्नाटक में पूर्वी द्वार क्षेत्र व उत्तर-पूर्वी द्वार क्षेत्र शुभ है जो बृहस्पति ग्रह अर्थात् धर्म-ज्ञान के देवता के क्षेत्र में आता है एवं ईशान द्वार क्षेत्र भी धर्म के प्रति श्रद्धा व आस्था प्रदान करता है। केरल का द्वितीय द्वार क्षेत्र बुध ग्रह के अंतर्गत आता है। जिसके फलस्वरूप यहाँ निवासी व्यवसाय तो करेंगे किन्तु ब्रह्म स्थान में दोष होने के कारण वे उन्नति नहीं कर पायेंगे।

शिक्षा के क्षेत्र में - शिक्षा व ज्ञान की दृष्टि से दोनों ही प्रांत संपन्न हैं। इनकी शिक्षा व ज्ञान की संपन्नता के कारण अलग-अलग हैं। जैसे केरल में शिक्षा का स्तर बहुत उच्च है। पूरे भारत वर्ष में केवल केरल ही ऐसा प्रांत है जिसे 90.20 % साक्षर अर्थात् लगभग 100 % साक्षर घोषित किया गया है किन्तु यह प्रांत पूर्णतः साक्षर घोषित होने के बाद भी अन्य राज्यों व देशों में जाकर अपनी शिक्षा का उपयोग कर रहा है, किन्तु यहाँ के निवासी अपने ही जन्म स्थान अर्थात् अपने ही प्रांत को इसका पूर्ण लाभ नहीं दे पा रहे हैं। पिछले अध्याय में दर्शाई गयी तालिका क्रमांक 3 के अनुसार 1991 में साक्षरता का प्रतिशत 89.81% था जो 2001 में 90.20 % हो गया। जिससे यह पता चलता है, कि यहाँ साक्षरता का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है।

कर्नाटक प्रांत में भी शिक्षा का स्तर बहुत उच्च है फिर भी यह प्रांत साक्षरता के प्रतिशत में तो केरल की बराबरी नहीं कर पाया किंतु अपनी शिक्षा का पूर्ण उपयोग इस राज्य ने किया है। आज के समय में यह भारत का तकनीकी शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र है। भारत के हर राज्य से लोग यहाँ पर शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते हैं। अपनी शिक्षा व ज्ञान के माध्यम से यहाँ के निवासी दिनोदिन तरक्की तो कर ही रहे हैं, साथ ही पूरे प्रांत को इनकी शिक्षा व ज्ञान का लाभ भी मिल रहा है। 1991 में कर्नाटक की साक्षरता 56% थी व 2001 में 67.04 % हो गई अर्थात् प्रतिशत के अनुसार केरल प्रांत की तुलना में कर्नाटक के प्रतिशत का अंतर (-) 34.2% है। कर्नाटक का प्रतिशत कम होने के बाद भी वह शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी है। जिससे राज्य सरकार को भी आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार इसका मूल कारण केरल व कर्नाटक प्रांत की भौगोलिक स्थिति है जैसे केरल एवं कर्नाटक प्रांत के पूर्व व उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा की स्थिति जो शिक्षा व ज्ञान प्रदान करती है दोनों ही प्रांतों की भिन्न-भिन्न है जिसके प्रभाव के कारण दोनों प्रांतों में शिक्षा के क्षेत्र में अंतर दिखाई पड़ता है। केरल प्रांत की पूर्व दिशा जो पूर्व की ओर विस्तृत है, किंतु वह ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई है। कर्नाटक प्रांत में पूर्व दिशा की वास्तु स्थिति के अनुसार इस ओर छोटी-छोटी पर्वत श्रृंखलाएं हैं। केरल के पूर्व में नदियों का स्थान है, जो पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हैं, वास्तुशास्त्र के अनुसार अशुभ फल प्रदान करती हैं अर्थात् पूर्व की ओर ढलान होना वास्तु अनुसार उत्तम स्थिति मानी जाती है किन्तु यहाँ पश्चिम की ओर ढलान है।

केरल प्रांत की उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा मानचित्र के अनुसार कटी हुई है, एवं इसके विपरित कर्नाटक का उत्तर-पूर्वी भाग विस्तृत है, किंतु पूर्वी भाग अल्पतम घटाव वाला है। इन दोनों प्रांतों के मानचित्र के अनुसार स्थितियाँ देखने पर यह सिद्ध होता है कि केरल में उच्च साक्षरता का मुख्य कारण प्रांत की पूर्व दिशा है जो पूर्व की ओर थोड़ी विस्तृत है। पर्वतों के बीच से सूर्य का तेज व प्रकाश जो केरलवासियों को शिक्षा व ज्ञान का स्तर बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है एवं पूर्व में जलस्थान उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे केरलवासी लाभ भी ग्रहण कर रहे हैं किन्तु उसका लाभ अपने ही राज्य को नहीं दे पा रहे हैं। उसका कारण है, उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा का कटा हुआ होना। जो शिक्षा व ज्ञान को पूर्व दिशा के शुभ प्रभाव के कारण ग्रहण कर रहे हैं किंतु उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा के कारण उस ज्ञान व शिक्षा को फैला नहीं पा रहे हैं उसका लाभ अन्य लोगों को या स्वयं को नहीं मिल पा रहा है। पूर्व दिशा के प्रभाववश केरल वासियों को साक्षरता के प्रतिशत में बढ़त तो प्राप्त हो रही है किंतु उस शिक्षा का केरल प्रांत को पूर्ण लाभ नहीं मिल पा रहा है।

इसके विपरीत कर्नाटक प्रांत की स्थिति है जो वास्तुशास्त्र के अनुसार ईशान दिशा के विस्तृत होने के कारण वह अपनी शिक्षा व ज्ञान का पूर्ण लाभ ले रहा है साथ ही अन्य राज्यों को भी इससे अधिक लाभ हो रहा है । इसका पूर्वी भाग अल्पतम होने के कारण साक्षरता के प्रतिशत में कमी आई है, किन्तु ईशान क्षेत्र पूर्ण होने के कारण यह प्रांत शिक्षा के स्तर में तकनीकी शिक्षा में एवं अन्य उच्च शिक्षा के माध्यम से पूरे भारत व अन्य देशों में नाम कमा रहा है ।

कला- शिक्षा के क्षेत्र में - कला के क्षेत्र में केरल एवं कर्नाटक दोनों की प्रांत बहुत प्रसिद्ध हैं । केरल प्रांत कथकली, कलारी नृत्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध है साथ ही केरल प्रांत का सोपानम् संगीतम् भी प्रसिद्ध है । कर्नाटक की संगीत कला भी प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त साहित्य चित्रकला एवं अन्य कलाओं में भी यह दोनों प्रांत प्रसिद्धी को प्राप्त करेंगे ।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल में नृत्य एवं अन्य कलाओं का उच्च स्तर उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा के कारण हैं । केरल प्रांत की वायव्य दिशा जो कि विस्तृत दिखाई पड़ती है व चंद्रमा के प्रभाववश यह कला वहाँ के निवासियों को नृत्य संगीत के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्रदान करती है । केरल में वायव्य दिशा के विस्तृत होने के कारण वहाँ के निवासी बाहरी देशों व राज्यों में जाकर प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे । कर्नाटक प्रांत में भी वायव्य दिशा व चंद्रमा के प्रभाव से वहाँ कर्नाटक संगीत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है ।

द्वार क्षेत्र - वायव्य दिशा के द्वार क्षेत्र के कारण दोनों प्रांतों का सामाजिक जीवन स्वस्थ मनोरंजन अर्थात् नृत्य-कला, संगीत से युक्त रहेगा । केरल में शनि, राहू-केतु के प्रभाव वश इस क्षेत्र के निवासी तामसी प्रवृत्ति वाले एवं मादक पदार्थों का सेवन करने वाले होंगे साथ ही सेवा से संबंधित कार्य जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में होटल व्यवसाय के क्षेत्र में अन्य स्थानों पर जाकर अपनी सेवाएँ प्रदान करेंगे ।

तकनीकी क्षेत्र में :- तकनीकी क्षेत्र में केरल व कर्नाटक दोनों ही प्रांत उच्च स्थान रखते हैं । केरल में त्रिवेन्द्रम के पास थुम्बा नामक स्थान पर स्थित इसरो (ISRO) (Indian space Research Organisation) एवं विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर (VSSC) इसके उपयुक्त उदाहरण हैं ।

कर्नाटक के बेंगलोर में इसरो सेटेलाइट सेंटर का मुख्यालय है। प्रथम रॉकेट थुम्बा इक्विटोरियल रॉकेट लॉचिंग स्टेशन (Thumba Equatorial Rocket launching Station) से नवंबर 1963 में प्रक्षेपित किया गया था। त्रिवेन्द्रम का विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर (Vikram Sarabhai Space Centre) सेटेलाइट और रॉकेट प्रक्षेपण के विकास का एक प्रमुख केन्द्र है।

सामाजिक क्षेत्र में - सामाजिक स्थिति के अनुसार केरल एवं कर्नाटक प्रांत की स्थिति भिन्न है। खान-पान, रहन-सहन एवं पहनावे में भी कुछ असमानताएँ हैं। केरल प्रांत की वास्तुस्थिति के अनुसार परिवारों में स्त्री व पुरुष वर्ग में मतभेद की स्थिति अधिक रहेगी और स्त्री वर्ग का स्तर समाज में प्रतिदिन बढ़ेगा। परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिये स्त्री वर्ग को भी संघर्ष करना पड़ेगा। केरल वासी तामसी प्रवृत्ति वाले-मांसाहार एवं मादक पदार्थों का सेवन अधिक करेंगे। केरल वासियों का स्वभाव परोपकारी एवं सेवाभाव से पूर्ण होगा। आज संपूर्ण देश में व देश के बाहर भी केरल वासी चिकित्सा, तकनीकी एवं होटल व्यवसाय से लोगों को अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

सामाजिक दशा के अनुसार वर्तमान में इस राज्य में स्त्री पुरुषों का भेदभाव अधिक नहीं है ना ही परिवार की बागडोर किसी एक सदस्य के हाथ में है, स्त्री-पुरुष बराबरी से हर कार्य संपन्न करते हैं। जाति-प्रथा जैसे कुरीतियाँ भी इस प्रांत में देखने नहीं मिलती। सामाजिक दशा में हालांकि ब्राम्हण वर्ग का प्रतिनिधित्व अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है, वे अपने ज्ञान, बुद्धि की तीव्रता के कारण समाज में श्रेष्ठ माने जाते हैं। धर्म आस्था के केंद्र मंदिर सामाजिक व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। मंदिरों में कठोर अनुशासन के नियमों का पालन करना आज भी अनिवार्य है। केरल की संस्कृति में व सामाजिक व्यवस्था में पुराने रीति-रिवाज एवं परंपराएँ व समस्त संस्कार आज भी व्याप्त हैं।

वहीं कर्नाटक प्रांत की सामाजिक स्थिति केरल की अपेक्षा भिन्नता लिये हुए है। कर्नाटक प्रांत के वासियों का रहन-सहन एवं वेशभूषा तो समान है किंतु खान-पान में यहाँ के लोग सात्विक प्रवृत्ति वाले अधिक हैं। शाकाहारी भोजन अधिक करते हैं। पारिवारिक स्थितियों में पुरुष वर्ग प्रधान हैं। जाति-प्रथा एवं कुरीतियाँ सामाजिक जीवन का अंग हैं, किंतु इनमें समय के साथ बहुत परिवर्तन हुए हैं। सभी संस्कारों व संस्कृतियों का विशेष प्रभाव है। सात्विक प्रवृत्ति, भावुकता यहाँ के निवासियों में

...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...
...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

देखने मिलती है। स्त्रियों की स्थिति भी केरल की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सामाजिक जीवन में ग्रहों के शुभ फलस्वरूप, वास्तु शास्त्र के अनुसार कर्नाटक राज्य एक संपन्न राज्य है एवं समय के साथ-साथ इस प्रांत में बहुत जल्दी परिवर्तन हुए हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत में कर्नाटक की अपेक्षा आठों दिशाओं में एवं द्वार क्षेत्रों में कुछ न कुछ दोष उत्पन्न हुए हैं। जिसके फलस्वरूप केरल राज्य में कर्नाटक राज्य की अपेक्षा सामाजिक जीवन अधिक प्रभावित हुआ है। उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में घटाव होने के कारण केरल में ब्राह्मण वर्ग को श्रेष्ठ सम्मान एवं गृह मालिक के सम्मान में कमी होगी। वर्ण व्यवस्था धूमिल पड़ जायेगी, संस्कारों एवं परंपराओं के नियमों का पालन ईशान दिशा के दोष के कारण शिथिल पड़ेगा। पश्चिम, दक्षिण एवं नैऋत्य दिशा में जल स्थान की अशुभ स्थिति व दुष्प्रभाव के कारण केरल प्रांत कर्नाटक की अपेक्षा श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं कर पायेगा। केरल वासियों को जीवनयापन के लिए मत्स्य उद्योग जैसे निम्न कार्यों को या अन्य राज्यों में जाकर या दूसरों के अधीन रहकर जीवन यापन करना पड़ेगा। निम्न कार्यों से एवं मादक पदार्थों से भी इनका रहन-सहन प्रभावित होगा।

वायव्य दिशा के द्वार क्षेत्र के कारण दोनों प्रांतों का सामाजिक जीवन स्वस्थ मनोरंजन अर्थात् नृत्य कला व संगीत से युक्त रहेगा। केरल में शनि, राहु, केतु के प्रभाववश इस क्षेत्र के निवासी तामसी प्रवृत्ति वाले एवं मादक पदार्थों का सेवन करने वाले होंगे साथ ही सेवा से संबंधित कार्यों से जुड़े रहेंगे।

राजनैतिक क्षेत्र में - केरल एवं कर्नाटक प्रांत दोनों की ही राजनैतिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। दोनों ही प्रांतों में राजनैतिक संघर्ष की स्थिति निर्मित होती रहेगी, किन्तु केरल में यह स्थिति प्राचीन काल से चली आ रही है। प्राचीन काल से ही केरल राज्य का अन्य राज्यों से संबंध रहा है। राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से पुर्तगाली, ब्रिटिश, डच व अन्य विदेशी ताकतों का यहाँ पर व्यापारिक एवं राजनैतिक संबंध तो रहा ही है, साथ में केरल की आर्थिक व राजनैतिक दशा भी विदेशियों से अछूती नहीं रही है। राजनैतिक अस्थिरता यहाँ पर बनी रहेगी। अनेक धर्मों का प्रभाव भी राजनीति के क्षेत्र में पड़ने के कारण यहाँ की राजनीति स्वार्थयुक्त होगी।

वर्तमान में भी ग्रहों व वास्तुदोष के प्रभाववश राजनैतिक उतार-चढ़ाव अन्य राज्यों से मनमुटाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। राजनीतिक संघर्ष के कारण यह प्रांत प्रसिद्धि व संपन्नता से वंचित

हो सकता है। विदेशी शासकों ने प्राचीन काल से ही अपनी सत्ता को चलायमान रखा है। राजनीतिक स्थिति में अंग्रेजी की कहावत 'फूट डालो राज करो' का प्रभाव सबसे अधिक केरल प्रांत पर पड़ा है इसी कारण से प्राचीन काल से वर्तमान काल तक वही स्थिति चली आ रही है।

इतिहास की दृष्टि से कर्नाटक राज्य की राजनीतिक स्थिति पर नजर डालें तो यह राज्य प्राचीन काल से ही समृद्ध व सुसंस्कृत राज्य रहा है। प्रारंभ से ही धर्म-अध्यात्म का प्रभाव इस राज्य पर है। ग्रहों के शुभ प्रभाव के कारण यहाँ के राजा-महाराजा न्यायप्रिय, धार्मिक, दयावान व राज्य को सुचारु रूप से चलाने में सक्षम रहे हैं। अतः वास्तु शास्त्र के अनुसार राज्य की स्थिति राजनैतिक दृष्टिकोण से कर्नाटक के विकास के लिये आर्थिक संपन्नता प्रदान करती है। यहाँ की राजनीति हिंदु वादी, वैष्णव एवं शैव मत वाले राजाओं से प्रभावित रही है। ब्रिटिश शासन काल में एवं उसके पूर्व में कुछ समय के लिये सल्तनत काल के कुछ शासक टीपू सुल्तान, हैदर अली के द्वारा इस राज्य को संपन्न व प्रसिद्ध बनाने के प्रयास किये थे।

कर्नाटक के ग्रहों की स्थिति के अनुसार कुछ वास्तु दोष जैसे दक्षिण-पश्चिम व दक्षिण-पूर्व में जल का स्थान होने के कारण एवं मंगल तथा राहू, शनि के अशुभ प्रभाववश राजनीति कुछ दूषित अवश्य रही, जिसके फलस्वरूप विदेशी ताकतों ने यहाँ से धन का लाभ अधिक लिया। असामाजिक तत्वों से, अपराधिक तत्वों से राजनीति हमेशा प्रभावित रहेगी। अन्य राज्यों से राजनीतिक संघर्ष चलते रहेंगे।

केरल प्रांत की वास्तुस्थिति के अनुसार पूर्व दिशा व दक्षिण दिशा अर्थात् सूर्य व मंगल ग्रह की स्थिति राजनीतिक दृष्टिकोण से अनुकूल नहीं है। साथ ही राहू-केतू व शनि ग्रह के अशुभ प्रभाव के कारण राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त रहेगी।

आर्थिक क्षेत्र में -केरल एवं कर्नाटक प्रांत की समृद्धि का कारण वहाँ की कृषि, वन संपदा, खनिज, चिकित्सा क्षेत्र, तकनीकी क्षेत्र व औद्योगिक क्षेत्र हैं। इन सभी क्षेत्रों के माध्यम से जो सफलता व समृद्धि केरल एवं कर्नाटक को प्राप्त हुई है, उनका मुख्य कारण केरल एवं कर्नाटक प्रांत की वास्तु स्थिति व ग्रहों के शुभ प्रभाव हैं जो केरल व कर्नाटक को प्राप्त हो रहे हैं, जिसके फलस्वरूप वह हर क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं, साथ ही आर्थिक दृष्टि से अत्यंत मजबूत राज्य साबित हो रहे हैं।

कृषि क्षेत्र में - केरल एक कृषि प्रधान प्रांत है, जो पूरी तरह कृषि पर निर्भर है। केरल प्रांत में कृषि से उत्पन्न वस्तुएँ जैसे चाय, कॉफी, मसाले, मेवे एवं नारियल व गन्ना की पैदावार लाभदायक सिद्ध हुई है। इन्हीं कृषि से उत्पन्न वस्तुओं को केरल के बाहर अन्य राज्यों में व अन्य देशों में निर्यात किया जाता है, जिससे केरल को आर्थिक लाभ व विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। आयात-निर्यात के क्षेत्र में केरल के बंदरगाह बहुत मददगार साबित होते हैं व केरल को आर्थिक मजबूती प्रदान करते हैं। मत्स्य उद्योग के द्वारा भी केरल आर्थिक लाभ प्राप्त करेगा।

कर्नाटक में भी कृषि का स्तर उच्च है, चाय कॉफी के बागान व अन्य फसलें जैसे धान, गन्ना, नारियल, इलायची, तिलहन और तम्बाकू की उपज होती है। काजू, रबड़ यहाँ की मुख्य फसलें हैं। भारत में सबसे अधिक फल व फूलों की पैदावार कर्नाटक राज्य में होती है।

यदि हम केरल और कर्नाटक प्रांत की कुल कृषि भूमि के प्रतिशत को देखें तो केरल में यह 1993-94 में 78.31% थी व कर्नाटक में 65.2% एवं 1997-98 में केरल का प्रतिशत 76.41% व कर्नाटक में 61.3% हो गया। यदि हम दोनों प्रांतों की कुल कृषि भूमि को देखते हैं तो कर्नाटक का प्रतिशत 15% कम है। चूंकि कर्नाटक क्षेत्रफल की दृष्टि से केरल की अपेक्षा लगभग 5 गुना है। अतः कर्नाटक में लगभग 86533 हेक्टेयर अधिक कृषि भूमि है।

भौगोलिक क्षेत्रफल के हिसाब से केरल कर्नाटक का 20% है परंतु जनसंख्या की दृष्टि से यह उसका लगभग $1/2$ है। अतः यहाँ प्रति व्यक्ति भूमि व प्रति व्यक्ति कृषि भूमि का प्रतिशत कम है।

वन्य क्षेत्र में - केरल एवं कर्नाटक दोनों ही प्रांत प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रकृति ने इन दोनों ही प्रांतों को हरियाली से सँवारा है। बारह महीने यहाँ हरियाली ही हरियाली छाई रहती है, यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अद्भुत है।

केरल प्रांत में हरियाली व वन्य क्षेत्र भरपूर मात्रा में हैं। इन वनों के माध्यम से केरल को सागौन, शीशम व चंदन की लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। ये लकड़ियाँ बाहरी राज्यों व बाहरी देशों में निर्यात की जाती हैं। इसकी तुलना में कर्नाटक प्रांत में वन्य क्षेत्र अधिक होने के कारण यहाँ सागौन, शीशम, रोजवुड व चंदन जैसी बहुमूल्य लकड़ियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। इन लकड़ियों

... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...

... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...

... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...

... ३३ ...
... ३३ ...

... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...

... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...
... ३३ ...

के द्वारा प्लाई हस्तशिल्प की वस्तुएँ व अन्य घरेलू वस्तुओं का निर्माण किया जाता है एवं बाहरी देशों व राज्यों में निर्यात किया जाता है। जिसके माध्यम से कर्नाटक प्रांत को पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। ये वन क्षेत्र कर्नाटक को समृद्धशाली राज्य बनाते हैं।

केरल प्रांत का वन्य क्षेत्र 1993-94 में 27.83% व कर्नाटक में 16.1% या जो 1997-98 में केरल में 27.83 % व कर्नाटक में 16.0 % हो गया। 5 वर्षों में दोनों ही प्रांतों में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुए। प्रतिशत के अनुपात में केरल का प्रतिशत वन्य क्षेत्र में अधिक है किंतु क्षेत्रफल की दृष्टि से कर्नाटक प्रांत का वन क्षेत्र अधिक है और कर्नाटक के वनों से प्राप्त चंदन सागौन की लकड़ी विश्व में प्रसिद्ध है जो बाहर देशों में भी निर्यात की जाती है, जिससे राज्य को आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

वास्तुशास्त्र की दृष्टि से अगर हम केरल प्रांत की दक्षिण दिशा जो मंगल ग्रह का क्षेत्र है एवं साथ ही भूमि से संबंधित है, पर नजर डालें तो हम देखेंगे कि केरल का यह दक्षिणी भाग घटाव वाला अर्थात् संकरा है एवं इसके दक्षिण में ही हिंद महासागर है एवं इसकी अपेक्षा कर्नाटक का दक्षिणी भाग व दक्षिण-पूर्वी भाग विस्तृत है। जिनके प्रभाववश वह वन संपदा में अधिक समृद्ध है एवं केरल प्रांत में दक्षिण दिशा के अशुभ प्रभाववश कर्नाटक की अपेक्षा वन संपदा के क्षेत्र से आर्थिक लाभ कम होता है। दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम दिशा में जल-स्थान केरल को अशुभ प्रभाव प्रदान करते हैं जिनके प्रभाववश केरल को वन्य क्षेत्र में व कृषि के क्षेत्र में जो लाभ मिलने चाहिये वह प्राप्त नहीं हो रहे हैं। राहू-केतु व शनि के प्रभाव से केरल में तामसिक प्रकृति के फसलों की खेती अधिक मात्रा में होती है जैसे काली मिर्च, अदरक एवं अन्य मसाले इत्यादि।

खनिज पदार्थ के क्षेत्र में- केरल एवं कर्नाटक प्रांत खनिज पदार्थों की दृष्टि से समृद्ध हैं। केरल प्रांत में भी सभी प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं किंतु कर्नाटक में केरल की अपेक्षा अधिक मात्रा में खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। कर्नाटक खनिज पदार्थों का भंडार है। संपूर्ण भारत में मात्र कर्नाटक ही ऐसा राज्य है जहाँ सर्वाधिक मात्रा में सोना पाया जाता है, अर्थात् देश के कुल उत्पादन का लगभग 84% सोना कर्नाटक से ही प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त लोहा एवं अन्य खनिज यहाँ पाये जाते हैं। इस तरह से हम कह सकते हैं कि खनिज पदार्थ की दृष्टि से कर्नाटक प्रांत केरल प्रांत की अपेक्षा अधिक संपन्न है।

... किं च ॥ १ ॥ ...
... किं च ॥ २ ॥ ...
... किं च ॥ ३ ॥ ...
... किं च ॥ ४ ॥ ...
... किं च ॥ ५ ॥ ...
... किं च ॥ ६ ॥ ...
... किं च ॥ ७ ॥ ...
... किं च ॥ ८ ॥ ...
... किं च ॥ ९ ॥ ...
... किं च ॥ १० ॥ ...

... किं च ॥ ११ ॥ ...
... किं च ॥ १२ ॥ ...
... किं च ॥ १३ ॥ ...
... किं च ॥ १४ ॥ ...
... किं च ॥ १५ ॥ ...
... किं च ॥ १६ ॥ ...
... किं च ॥ १७ ॥ ...
... किं च ॥ १८ ॥ ...
... किं च ॥ १९ ॥ ...
... किं च ॥ २० ॥ ...

... किं च ॥ २१ ॥ ...
... किं च ॥ २२ ॥ ...
... किं च ॥ २३ ॥ ...
... किं च ॥ २४ ॥ ...
... किं च ॥ २५ ॥ ...
... किं च ॥ २६ ॥ ...
... किं च ॥ २७ ॥ ...
... किं च ॥ २८ ॥ ...
... किं च ॥ २९ ॥ ...
... किं च ॥ ३० ॥ ...

वास्तुशास्त्र के अनुसार पूर्व दिशा एवं दक्षिण-पश्चिम(नैऋत्य) एवं दक्षिण पूर्व(आग्नेय) दिशा खनिज पदार्थ की दृष्टि से उत्तम मानी जाती हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल की पूर्व दिशा वास्तुदोषयुक्त है, एवं इसके दक्षिण-पश्चिम व दक्षिण-पूर्व में जल स्थान है अर्थात् वास्तुदोष है, जिसके अशुभ प्रभाव केरल की खनिज संपदा पर पड़ रहे हैं अतः अधिक मात्रा में खनिज पदार्थों की प्राप्ति नहीं हो रही है। वहीं दूसरी ओर कर्नाटक में पूर्व दिशा एवं आग्नेय कोण की शुभ स्थिति इसे खनिज संपदा से संपन्न राज्य बनाती है। आग्नेय कोण में स्थित कोलार की सोने की खानें एवं बंगारपेट नामक स्थान जहाँ अधिक मात्रा में सोना पाया जाता है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कर्नाटक भारत के सभी राज्यों व अन्य देशों से खनिज पदार्थ, मुख्य रूप से सोने के द्वारा व्यापारिक रूप से जुड़ा हुआ है।

चिकित्सा के क्षेत्र में - चिकित्सा के क्षेत्र में केरल एवं कर्नाटक दोनों ही प्रांत अपना अलग स्थान रखते हैं। केरल प्रांत ही एक ऐसा प्रांत है, जिसमें सबसे अधिक लोग चिकित्सा के क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। भारत के हर राज्य व अन्य देशों में भी केरल वासी चिकित्सा के क्षेत्र में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। वास्तुदोष एवं ग्रहों के प्रभाव के कारण केरलवासियों को चिकित्सीय सेवा के लिये अन्य स्थानों पर जाना पड़ता है। आयुर्वेदिक चिकित्सा(पंचकर्म) के क्षेत्र में केरल प्रसिद्ध है।

कर्नाटक ने भी चिकित्सा के क्षेत्र में अपना उच्च स्थान बना लिया है। चिकित्सीय सेवा में कर्नाटक वासियों का योगदान महत्वपूर्ण है किन्तु कर्नाटक की वास्तुस्थिति एवं ग्रहों की स्थिति के अनुसार कर्नाटक वासी अपने ही राज्य में चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। यहाँ के उच्च श्रेणी के अस्पताल राज्य को आर्थिक समृद्धता प्रदान करते हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत की उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में घटाव होने के कारण यहाँ के चिकित्सक अपनी सेवा प्रांत में नहीं दे पायेंगे। दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा का कटा हुआ होना एवं वहाँ जल स्थान होने के कारण व राहु-केतु के अशुभ प्रभाववश यहाँ के निवासियों को सेवा जैसे कार्यों को करना पड़ेगा। दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा शुक्र से संबंधित है तथा स्त्रियों के कार्य क्षेत्र को प्रभावित करती है। केरल के आग्नेय दिशा में जल-स्थान होने के कारण वास्तु के अशुभ प्रभाववश स्त्रियों को सेवा के क्षेत्र में एवं दूसरे स्थान में अपनी सेवाएँ प्रदान करना पड़ती हैं।

कर्नाटक प्रांत की वास्तुस्थिति के अनुसार उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा, दक्षिण-पूर्व (आग्नेय) दिशा की स्थिति तो प्रांत को चिकित्सा के क्षेत्र में शुभ फल प्रदान करने वाली है 'जिनके शुभ प्रभाव से प्रांत के चिकित्सकों को व चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत् लोगों को अन्यत्र स्थानों पर नहीं जाना पड़ेगा किन्तु दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) दिशा वास्तुदोष युक्त है अर्थात् जल स्थान होने के कारण कर्नाटक वासी रोगों से पीड़ित होंगे।

उद्योग के क्षेत्र में - औद्योगिक दृष्टि से केरल प्रांत समृद्ध है। यहाँ बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग एवं कुटीर उद्योग दोनों ही हैं जिससे वहाँ के निवासियों को रोजगार मिलता है। इस प्रांत के कुछ स्थानों पर जैसे केरल की राजधानी त्रिवेंद्रम, एर्नाकुलम्, आलुवा इत्यादि में बड़े उद्योग भी हैं। जिनमें मशीनी औजार, शुष्क सैल, बिजली से संबंधित वस्तुओं का निर्माण होता है।

केरल का पश्चिमी भाग समुद्र तटीय है। इन तटों पर स्थित बंदरगाह व्यापारिक दृष्टि से अन्य राज्यों व देशों से जुड़े हुए हैं। इन बंदरगाहों के कारण केरल बाहरी देशों से आर्थिक लाभ व प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। व्यवसाय व वाणिज्य की दृष्टि से मुंबई के बाद केरल के कोच्चि बंदरगाह का ही स्थान है। कोच्चि, एरनाकुलम एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र है।

कर्नाटक प्रांत भी औद्योगिक दृष्टि से एक संपन्न राज्य है। यहाँ पर औद्योगिक संस्थानों में लघु एवं वृहत् दोनों ही पैमाने के उद्योग धंधे शामिल हैं। यहाँ बड़े-बड़े मशीनी औजार, इस्पात कारखाने, रेशम उद्योग, वस्त्र उद्योग एवं इनके अतिरिक्त विमान, टेलीफोन, संचार के साधन, एयरक्राफ्ट इत्यादि बड़े औद्योगिक संस्थान स्थित हैं। सूचना और औद्योगिकी व इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में कर्नाटक की राजधानी 'बैंगलूर' सायबर राजधानी की नाम से जानी जाती है। यह देश का प्रमुख औद्योगिक राज्य है। यहाँ स्थित इन औद्योगिक संस्थानों के अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी इस राज्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। जिसके फलस्वरूप कर्नाटक का नाम भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी जाना जाता है। इन बहुराष्ट्रीय कंपनी के द्वारा मिलने वाला लाभ इस राज्य को होता है, जो राज्य को अतिरिक्त आय प्रदान करता है।

केरल में प्रति व्यक्ति आय 1993-94 में 7939 रु. एवं कर्नाटक में 7242 रु. थी। अगले 5 वर्षों में यह केरल में 1998-99 में 16062 रु. हो गई, एवं कर्नाटक में 14909 रु. हो गई अर्थात् दोनों ही स्थानों पर लगभग दो गुना हो गई। (सारणी क्रं 6 में दर्शाया गया है)

केरल प्रांत के अधिकांश निवासी विदेशों में कार्य कर रहे हैं, जिनके द्वारा उन्हें विदेशी मुद्रा का लाभ होता है, केरल में महंगी फसलों की पैदावार अधिक होती है जैसे मसाले, मेवे इत्यादि जो बाहर निर्यात किए जाते हैं। यही कारण है कि उनकी प्रति व्यक्ति आय अधिक है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार केरल प्रांत की दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम अर्थात् नैऋत्य दिशा जो व्यापारिक दृष्टिकोण से शुभ मानी जाती है कर्नाटक की अपेक्षा संकरी है। दक्षिण व नैऋत्य में जल-स्थान का होना भी अशुभ प्रभाव प्रदान करता है। इन दोनों अशुभ प्रभावों व मंगल राहु-केतु ग्रहों के अशुभ प्रभावों के फलस्वरूप केरल प्रांत आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। कर्नाटक प्रांत की इन दिशाओं की स्थिति शुभ है किंतु कर्नाटक के नैऋत्य दिशा में भी जल-स्थान होने से कुछ अशुभ प्रभाव आद्योगिक क्षेत्र में पड़ेगे परंतु वे अशुभ प्रभाव केरल की अपेक्षा कम होंगे। कर्नाटक में दक्षिण दिशा की स्थिति शुभ फल प्रदान करने वाली है।

केरल प्रांत में पश्चिमी भाग पर समुद्री बंदरगाह केरल को व्यापारिक लाभ, समृद्धि व ऐश्वर्यता प्रदान कर रहे हैं। इसका वास्तुशास्त्रीय कारण पश्चिम दिशा में जल के देवता का वास होना है, जो प्रांत को बंदरगाह के माध्यम से देश के बाहर भी व्यापारिक गतिविधियों के माध्यम से जोड़ता है, जिसके द्वारा केरल प्रांत को विदेशी मुद्रा का लाभ प्राप्त होता है। कर्नाटक प्रांत के नैऋत्य में स्थित बंदरगाह मंगलौर है। केरल की अपेक्षा कर्नाटक में बंदरगाह से विदेशी मुद्रा का लाभ कम है।

केरल प्रांत की उत्तर-पश्चिम दिशा विस्तृत होने के कारण इस प्रांत को प्रसिद्धि प्राप्त होगी वह अपनी प्राकृतिक सुंदरता के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। यहाँ के निवासी व्यापार के क्षेत्र में, आयात निर्यात के क्षेत्र में बाहरी देशों से जुड़े रहेंगे। उन्नति के क्षेत्र में केरल को अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ेगा। कर्नाटक प्रांत की वायव्य दिशा की वास्तुस्थिति में आंशिक दोष है अर्थात् यह घटी हुई है लेकिन उसके अशुभ प्रभाव केरल की तुलना में कम ही प्राप्त होंगे।

केरल प्रांत की उत्तर दिशा का क्षेत्र पूर्णतः घटा हुआ है, अर्थात् कुबेर की दिशा है ही नहीं एवं बुध ग्रह जो व्यापार के देवता माने जाते हैं, उनका स्थान भी नहीं है। इन दोनों के अशुभ प्रभाव के फलस्वरूप केरल व्यापारिक क्षेत्रों में एवं इसके अतिरिक्त कृषि, उद्योग इत्यादि के क्षेत्र में भी व्यापारिक लाभ व आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर पायेगा। इसके विपरीत कर्नाटक प्रांत की उत्तर दिशा व बुध ग्रह की स्थिति व्यापार व अन्य क्षेत्रों में शुभ परिणाम देने वाली है क्योंकि कर्नाटक की उत्तर दिशा पूर्ण है जिसके फलस्वरूप वह लगातार उन्नति कर रहा है।

केरल प्रांत की पूर्व दिशा एवं ईशान दिशा में भी वास्तुदोष है अर्थात् पूर्व दिशा जो पूर्णतः पहाड़ों के द्वारा ढकी हुई है एवं ईशान दिशा का क्षेत्र भी पूर्णतः घटा होने के कारण केरल को आर्थिक क्षेत्र एवं अन्य क्षेत्रों में अवरोधों का सामना करना पड़ेगा। केरल की तुलना में कर्नाटक प्रांत की पूर्व एवं ईशान दिशा की स्थिति एवं बुध व ब्रह्मस्पति गृह शुभ परिणाम देने वाले हैं जिसके फलस्वरूप यह हर क्षेत्र में जैसे व्यापारिक, शैक्षणिक एवं वन्य क्षेत्र के प्रभाव से आर्थिक लाभ एवं इन क्षेत्रों में प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।

केरल प्रांत की आग्नेय दिशा में जल स्रोत अर्थात् नदियाँ होने के कारण यह औद्योगिक क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पायेगा एवं यहाँ के निवासियों को आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ेगा। केरल के पश्चिमी क्षेत्र में अधिक औद्योगिक संस्थान हैं एवं दक्षिण में कम हैं। पश्चिम में शनि व वरुण देवता के शुभ प्रभाव पड़ने से इस क्षेत्र के माध्यम से केरल को व्यवसायिक दृष्टिकोण से शुभ फल प्राप्त होते हैं। केरल का दक्षिणी भाग अर्थात् मंगल ग्रह का स्थान जो व्यापार-व्यवसाय से जुड़ा होता है, जल से पूर्ण है एवं दक्षिण दिशा में उद्योग कम हैं अर्थात् दक्षिण दिशा भारहीन है। केरल की तुलना में कर्नाटक में दक्षिण दिशा में व आग्नेय दिशा में ही सारे उद्योग धंधे हैं एवं उत्तर दिशा भारहीन है।

यदि हम केरल एवं कर्नाटक प्रांत की पूर्ण भौगोलिक स्थिति पर वास्तुशास्त्रीय दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि केरल प्रांत की वास्तुस्थिति कर्नाटक प्रांत की वास्तुस्थिति के समक्ष कमजोर है। केरल प्रांत की मुख्य दिशाएँ ईशान एवं पूर्व वास्तुदोष युक्त हैं। कर्नाटक प्रांत की ये दोनों दिशाएँ शुभ फल प्रदान करने वाली हैं जिनकी शुभ स्थिति का वर्णन हम उपरोक्त दिए गए विभिन्न क्षेत्रों में वर्णित कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त केरल की दक्षिण, नैऋत्य व वायव्य दिशाएँ भी वास्तुदोष से युक्त हैं। केरल की दक्षिण दिशा व नैऋत्य में जल स्थिति अशुभ फल प्रदान करने वाली है एवं वायव्य दिशा के विस्तृत होने के कारण केरलवासियों को अन्य देशों व राज्यों में कार्य करना पड़ेगा। केरल की तुलना में कर्नाटक की इन दिशाओं में दोष अल्पतम ही हैं।

केरल प्रांत की पूर्ण ढलान पूर्व से पश्चिम की ओर है, जिसके फलस्वरूप केरल आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। कर्नाटक प्रांत की पूर्ण ढलान पश्चिम से पूर्व की ओर है जो प्रांत को वैभवशाली प्रांत बनाती है। कर्नाटक प्रांत की उत्तर दिशा का भाररहित होना व दक्षिण दिशा का

भारी होना कर्नाटक को सुखी - समृद्धशाली व वैभवशाली राज्य बनाता है एवं केरल में उत्तर दिशा का घटाव आर्थिक, व्यापारिक क्षेत्र में विभिन्न कष्ट व अवरोध उत्पन्न करेगा।

ब्रह्म स्थान में वास्तुदोष अर्थात् जल-स्थान होने के कारण केरल सभी स्थानों में अर्थात् अपने कार्य क्षेत्र में, व्यवसाय के क्षेत्र में सफलता तो प्राप्त कर रहा है किन्तु वह कर्नाटक की तुलना में प्रगति नहीं कर पा रहा है।

मन्त्रोक्तं यत् सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं - सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं
सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं
सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं
सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं

॥ ३ ॥

सुझाव

निष्कर्ष के आधार पर हम यह सुझाव दे सकते हैं कि -

1. केरल एवं कर्नाटक प्रांतों का वास्तुशास्त्रीय सीमांकन कार्य बहुत विस्तृत है, जिस पर तुरंत अमल नहीं किया जा सकता किन्तु दोनों प्रांतों की राज्य सरकार एवं भारत सरकार के लिए मेरा सुझाव है कि भारत की सर्व-विध प्रगति के साथ केरल और कर्नाटक प्रांत देश के समृद्ध एवं सम्पन्न प्रांतों की सूची में अग्र स्थान पर हो। इसके लिए भाषाभेद की अहंवृत्ति का त्यागकर वास्तु अनुरूप सीमांकन पर परस्पर अभिस्वीकृति देकर एक इतिहास रचें। दूसरे प्रांतों के लिए प्रेरक बनें और अपने-अपने प्रांतों की जनता के लिए समृद्धि और सम्पन्नता का मार्ग प्रशस्त करें।
2. केरल एवं कर्नाटक प्रांतों में मकान, व्यवसायिक केन्द्र एवं अन्य भवन-निर्माण कार्य वास्तुशास्त्र के अनुसार हो।
3. प्रांतों में हो रहे परिवर्तन एवं नवीन-निर्माण कार्य जैसे तालाब औद्योगिक स्थल, मनोरंजन स्थल, उद्यान इत्यादि का निर्माण वास्तुशास्त्रीय विधियों को अपनाकर करें एवं उसके दुष्परिणामों से बचें।
4. राज्यों की सरकारी संस्थाएँ गृह-निर्माण मंडल व अन्य गृह निर्माण समितियों को भवन-निर्माण में वास्तुशास्त्र के नियमों से अवगत होकर ही निर्माण कार्य करना चाहिए।
5. जो शासकीय और सार्वजनिक भवन/सम्पत्ति हैं उनका भी वास्तु परीक्षण कर उनमें वास्तु अनुरूप संशोधन-सुधार कराने का साहसिक निर्णय लिया जावे।
6. वर्तमान शोध का अध्ययन क्षेत्र केवल केरल एवं कर्नाटक प्रांत है किन्तु इन सुझावों को अन्य प्रदेशों पर भी प्रयोग किया जा सकता है जिससे पूरा भारत वास्तुशास्त्र के शुभ परिणाम प्राप्त कर सके तभी वर्ष 2020 में हमारे महामहिम राष्ट्रपति जी के दिव्य सपनों का भारत विश्व का सशक्त और समर्थ राष्ट्र बनेगा।

अध्याय - सात्वत



7. उपसंहार, मूल्यांकन एवं प्रदेय

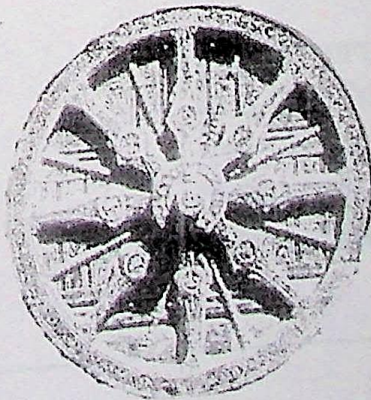
इस तरह भूमिका में दिए गए स्रोतों के आधार पर उपलब्ध जानकारी इत्यादि के सम्यक अध्ययन के रूप में यह शोध प्रबंध प्रस्तुत है। इसका उद्देश्य किसी भी प्रांत को श्रेष्ठता में अधिक अथवा न्यून दर्शित करना नहीं है वरन् वास्तु-सिद्धांत भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं संस्कृति दृश्यों को कहाँ किस रूप में प्रभावित कर रहे हैं यही सार दर्शित करना है।

भारत भूमि तो शस्य श्यामला है, सुजलाम सुफलाम् है। भारत अनेकता में एकता की भूमि है। चेरापूंजी जैसा स्थान विश्व में सर्वाधिक वर्षा का स्थान है तो राजस्थान के रेगिस्तान अल्पवर्षा का कीर्तिमान बना रहे हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तामिलनाडु और उत्कल प्रांत जहाँ समुद्रतटीय प्रदेश होने के नाते सागर की उत्ताल तरंगों द्वारा अभिनंदित है तो पूर्वांचल, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश हिमाचल, पंजाब हिमालय के हिम-मण्डित शिखरों के साथ विश्व के सर्वोच्च शिखर के रूप में एवरेस्ट भारत का मस्तक उन्नतोत्तम किये हुए है।

उक्त शोध प्रबंध से यह बात स्पष्ट है कि किसी भी प्रांत की समृद्धशाली बनाने में वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का अनुपालन अत्यंत सहायक है।

स्वतंत्रता के बाद पूर्व में चाहे 1957 में भाषावार, प्रांतवार रचना की गई हो या छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और झारखंड के निर्माण में राजनैतिक भूमिका ही अधिक है। प्रांतों की मांग अभी भी यत्र-तत्र सुनाई पड़ रही है, जैसे विदर्भ, बुंदेलखंड, तेलंगाणा आदि के लिए। यह शोध प्रबंधन भविष्य के प्रांतों की रचना के आकार निर्धारण में महत्वपूर्ण होगा।

अतः “केरल एवं कर्नाटक प्रांत का वास्तुशास्त्रीय तुलनात्मक अनुशीलन” को आधार बनाकर किए गए शोध-प्रबंध को अब मैं विराम देती हूँ पर वास्तव में यह वर्तमान राज्यों के पुर्नगठन एवं भविष्य में बनने वाले प्रदेश के निर्माण के लिए दिशा निर्देश के रूप में कालचक्र का प्रारंभ है



Valmiki
10/10/17
7/6/17

संदर्भ ग्रंथ

क्र.	लेखक का नाम	ग्रंथ
1	अच्युतन ए., प्रभु.टी.एस. बालगोपाल	(1998) मनुष्यालय चंद्रिका वास्तुविद्याप्रतिष्ठानम् ऐकेडमिक सेंटर, सारस्वत, किलियानंद, कालीकट
2	आचार्य मृत्युंजय	(2000) वास्तुशास्त्र, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली
3	अग्रवाल इ.पंकज	(2000) वास्तु, वैदिक वास्तु संस्थान एवं शोध संस्थान, इंदौर
4	बाजपेयी कृष्णदत्त	(2000) भारतीय वास्तुकला का इतिहास उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
5	प्रभु.टी.एस. बालगोपाल अच्युतन ए.	(1999) ए टैक्स्ट बुक ऑफ वास्तुविद्या वास्तुविद्या प्रतिष्ठानम् सारस्वतम् किलियानंद, कालीकट
6	श्रीवास्तव डॉ.बलराम	(1999) रुपमंडन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
7	विश्वकर्मा	(1998) विश्वकर्मा प्रकाश, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, मुंबई
8.	ज्ञानेश्वर डॉ.उमेश पुरी	(1998) वास्तुकला और भवन निर्माण रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार
9.	शुक्ल डॉ.द्विजेन्द्रनाथ	(1999) समराङ्गण-सूत्रधार-वास्तुशास्त्र भवन- निवेश (प्रथम भाग) मेहरचंद लछमनदास पब्लिकेशन
10	शर्मा सतीश	(1998) वास्तु विद्या ज्योतिष मंथन प्रकाशन जयपुर
11	शर्मा पं. गोपाल	(1997) सुगम-वास्तुशास्त्र, डायमंड पॉकेट बुक्स, (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली
12	कॉक्स कैथलीन	(2000) वास्तुलिविंग, हरपर कॉलिन्स पब्लिशर, इंडिया प्रा.लिमिटेड, नई दिल्ली

सिद्धांत

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1	सिद्धांतस्य प्रथमः भागः (१००१)	१
2	सिद्धांतस्य द्वितीयः भागः (१००२)	२
3	सिद्धांतस्य तृतीयः भागः (१००३)	३
4	सिद्धांतस्य चतुर्थः भागः (१००४)	४
5	सिद्धांतस्य पंचमः भागः (१००५)	५
6	सिद्धांतस्य षष्ठः भागः (१००६)	६
7	सिद्धांतस्य सप्तमः भागः (१००७)	७
8	सिद्धांतस्य अष्टमः भागः (१००८)	८
9	सिद्धांतस्य नवमः भागः (१००९)	९
10	सिद्धांतस्य दशमः भागः (१०१०)	१०
11	सिद्धांतस्य एकादशः भागः (१०११)	११
12	सिद्धांतस्य द्वादशः भागः (१०१२)	१२

क्र.	लेखक का नाम	ग्रंथ
13	भारद्वाज श्री कृष्णदत्त जी	(1979) कल्याण-सूर्याक, कल्याण कार्यालय गीताप्रेस, गोरखपुर
14	थामपुरन आशालता	(2000) ट्रेडिशनल आर्किटेक्चरल फार्म ऑफ मालाबार कोस्ट, वास्तुविद्याप्रतिष्ठानम् सारस्वतम्, कोझिकोड
15	श्रीकृष्णकृपाश्री मूर्ति	(1990) श्री भगवद्गीता यथारूप, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, मुंबई
16	जोशी डॉ. बसंत चौधरी किशोर	(2000) फेंग शुई, एक्युपेशर हैल्थ केयर सिस्टम, जोधपुर
17	गोयन्दका, हरिकृष्ण दास-	(1995) मुंडकोपनिषद्, गोविंद भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर (पन्द्रहवां संस्करण)
18	जोशी जयशंकर	(1967) हलायुध कोष, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
19	मिश्र, डॉ. सुरेशचंद्र	(1997) बृहत् संहिता, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली
20	विशुद्धमती, माताजी	(1996) वत्थुविज्जा, आचार्य शिवसागर दि. जैन ग्रन्थमाला, शक्तिवीरनगर, श्री महावीर जी, राजस्थान
21	शुक्ल श्री कमलकान्त	(1996) वास्तुसौख्यम्, संपूर्णानंद संस्कृत विशेषांक विश्वविद्यालय, वाराणसी
22	शर्मा प्रो. सुरेश्वर	(1996-) विज्ञान भारती प्रदीपिका, वास्तुशास्त्र विशेषांक (खण्ड-2) विज्ञान भारती प्रकाशन उदयाचल गुप्तेश्वर, जबलपुर.
23	झा, तारिणीश	(1907-) मत्स्य पुराण, डॉ. प्रमाण मिश्र शास्त्री", सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद
24	द्विवेदी श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद	(1990) मुहुर्त चिन्तामणि, चौखम्बा सुरभारती, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
१	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१
२	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	२
३	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	३
४	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	४
५	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	५
६	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	६
७	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	७
८	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	८
९	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	९
१०	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१०
११	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	११
१२	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१२
१३	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१३
१४	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१४
१५	संस्कृत भाषा का इतिहास (१९०१) प्रो. ए. ए. शर्मा	१५

क्र.	लेखक का नाम	ग्रंथ
25	रमन प्रो. वी. वी.	(1996) वैभवपूर्ण जीवन के लिए वास्तुशास्त्र विद्याभवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
26	तारखेडकर ए. आर.	(1996) प्रकृति नियम और हमारी वास्तु रचना कास्मो पब्लिशिंग हाऊस, इंडिया बैंक स्ट्रीट लेन - 4 धुलिया महाराष्ट्र
27	शुक्ल डी.एन.	(1988) भारतीय वास्तुशास्त्र, मेहरचन्द लक्षणदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
28.	शास्त्री पं. जगदीश	(1999) भारतीय वास्तु विज्ञान, विद्या भवन चौड़ा रास्ता, जयपुर
29.	त्रिपाठी डॉ. ब्रम्हानंद	(1999) बृहद वास्तुमाला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी
30.	शर्मा पं. श्रीराम	(1997) अथर्ववेद संहिता, वहडवचस शांतिकुंज हरिद्वार (उ. प्र.)
31.	शास्त्री, डॉ. रामचन्द्र वर्मा	(1997) मनुस्मृति, विद्या विहार 1685 रचा दखनीसराय, दरियांगंज, दिल्ली
32.	शास्त्री, आचार्य उमेश,	(1996) वास्तु, विज्ञानम् व्यास वाला पक्ष शोध संस्थान, दीनानाथ मार्ग, जयपुर
33	मेहता, एस. के.	(1999) सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र, विद्याभवन-6 चौड़ा रास्ता, जयपुर
34	मिश्र, अनूप	(1999) श्री मण्डन सूत्रधार विरचितो वास्तुराज-वल्लभ, मास्टर खिलाड़ी, लाल कचौड़ी गली, वाराणसी
35	गोयन्दका, जयदयाल	(1988) महाभारत, गोविन्द भवन गोरखपुर
36	झा, रविकान्त	(1972) वास्तुकला का इतिहास
37	पाण्डेय, डॉ. आर. एन.	(2003) दक्षिण भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

क्र.सं.	ग्रन्थस्य नाम	पृ.सं.
१	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
२	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
३	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
४	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
५	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
६	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
७	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
८	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
९	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१०	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
११	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१२	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१३	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१४	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१५	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१६	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१७	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१८	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
१९	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००
२०	अथर्ववेदस्य सूक्तानि (१००)	१००

क्र.	लेखक का नाम	ग्रंथ
38	राव, ए.वी. शंकरनारायणन्	(2001) टैम्पल्स ऑफ कर्नाटक वासन बुक डिपो, बंगलौर
39	श्रीनिवासन्, के. आर.	(2001) टैम्पल्स ऑफ साउथ-इंडिया नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
40	पनीक्कर, कवलम नारायण	(1998) केरल लोक संस्कृति और साहित्य, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली
41	केरला स्टेट निर्मिथी केन्द्र	(1992) गिलिम्प्स ऑफ आर्किटेक्चर केरला स्टेट निर्मिथी केन्द्र
42	देशपांडे अरुणा	(2003) भारत के पर्यटन स्थल क्रेस्ट पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली
43	अजर रहमान	(2000) टाईगर सुल्तान, नायाव पब्लिकेशन, बंगलौर
44	कोल्हार कुलकर्णी डॉ. कृष्णा	(2002) बीजापुर द वण्डर लैंड डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन, बीजापुर, कर्नाटक
45	प्रभाकर विष्णु	एक देश एक हृदय, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
46	सिंह श्री गोपाल	भारत का भूगोल, आत्माराम एंड संस, दिल्ली
47	राव, डी. मुरलीधर	भवन-निर्माण एवं वास्तुशास्त्र पुस्तक-महल-नई दिल्ली
48	त्रिवेदी, श्री शंकर दयाल	गृह नक्षत्र तंत्रम, हिन्दी सेवा-सदन, मथुरा
49	शर्मा (मिश्र) पं. रमेश चंद्र	भवन वास्तुशास्त्र एवं भाग्यफल, मयूरेश प्रकाशन मदनगंज, किशनगढ़
50	जनरल	कल्चरल हिस्ट्री ऑफ केरल
51	स्टैटिस्टिकल आऊट लाइन	(2001) डायरेक्ट्रेड ऑफ एकानॉमिक्स एंड स्टैटिस्टिक्स ऑफ बंगलौर, कर्नाटक

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
१	अथर्ववेद	१
२	अथर्ववेद	२
३	अथर्ववेद	३
४	अथर्ववेद	४
५	अथर्ववेद	५
६	अथर्ववेद	६
७	अथर्ववेद	७
८	अथर्ववेद	८
९	अथर्ववेद	९
१०	अथर्ववेद	१०
११	अथर्ववेद	११
१२	अथर्ववेद	१२
१३	अथर्ववेद	१३
१४	अथर्ववेद	१४
१५	अथर्ववेद	१५
१६	अथर्ववेद	१६
१७	अथर्ववेद	१७
१८	अथर्ववेद	१८
१९	अथर्ववेद	१९
२०	अथर्ववेद	२०
२१	अथर्ववेद	२१
२२	अथर्ववेद	२२
२३	अथर्ववेद	२३
२४	अथर्ववेद	२४
२५	अथर्ववेद	२५
२६	अथर्ववेद	२६
२७	अथर्ववेद	२७
२८	अथर्ववेद	२८
२९	अथर्ववेद	२९
३०	अथर्ववेद	३०
३१	अथर्ववेद	३१
३२	अथर्ववेद	३२
३३	अथर्ववेद	३३
३४	अथर्ववेद	३४
३५	अथर्ववेद	३५
३६	अथर्ववेद	३६
३७	अथर्ववेद	३७
३८	अथर्ववेद	३८
३९	अथर्ववेद	३९
४०	अथर्ववेद	४०
४१	अथर्ववेद	४१
४२	अथर्ववेद	४२
४३	अथर्ववेद	४३
४४	अथर्ववेद	४४
४५	अथर्ववेद	४५
४६	अथर्ववेद	४६
४७	अथर्ववेद	४७
४८	अथर्ववेद	४८
४९	अथर्ववेद	४९
५०	अथर्ववेद	५०
५१	अथर्ववेद	५१
५२	अथर्ववेद	५२
५३	अथर्ववेद	५३
५४	अथर्ववेद	५४
५५	अथर्ववेद	५५
५६	अथर्ववेद	५६
५७	अथर्ववेद	५७
५८	अथर्ववेद	५८
५९	अथर्ववेद	५९
६०	अथर्ववेद	६०
६१	अथर्ववेद	६१
६२	अथर्ववेद	६२
६३	अथर्ववेद	६३
६४	अथर्ववेद	६४
६५	अथर्ववेद	६५
६६	अथर्ववेद	६६
६७	अथर्ववेद	६७
६८	अथर्ववेद	६८
६९	अथर्ववेद	६९
७०	अथर्ववेद	७०
७१	अथर्ववेद	७१
७२	अथर्ववेद	७२
७३	अथर्ववेद	७३
७४	अथर्ववेद	७४
७५	अथर्ववेद	७५
७६	अथर्ववेद	७६
७७	अथर्ववेद	७७
७८	अथर्ववेद	७८
७९	अथर्ववेद	७९
८०	अथर्ववेद	८०
८१	अथर्ववेद	८१
८२	अथर्ववेद	८२
८३	अथर्ववेद	८३
८४	अथर्ववेद	८४
८५	अथर्ववेद	८५
८६	अथर्ववेद	८६
८७	अथर्ववेद	८७
८८	अथर्ववेद	८८
८९	अथर्ववेद	८९
९०	अथर्ववेद	९०
९१	अथर्ववेद	९१
९२	अथर्ववेद	९२
९३	अथर्ववेद	९३
९४	अथर्ववेद	९४
९५	अथर्ववेद	९५
९६	अथर्ववेद	९६
९७	अथर्ववेद	९७
९८	अथर्ववेद	९८
९९	अथर्ववेद	९९
१००	अथर्ववेद	१००



